जनपद ललितपुर के जैन मन्दिरों का साँस्कृतिक अध्ययन–
पर्यटन विकास की दृष्टि से

बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय, झांसी की
पीएच० डी० (इतिहास) उपाधि हेतु
शोध प्रबन्ध

1993

निर्देशक :
डा० एस० पी० पाठक
एम० ए०, पीएच०डी०
अध्यक्ष
इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी (उ० प्र०)

शोध कर्त्री :
श्रीमती रुचिरा श्रीवास्तव
एम० ए० (इतिहास)
दयानन्द वैदिक महाविद्यालय
उरई (उ० प्र०)

इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय
झांसी (उ० प्र०)

†
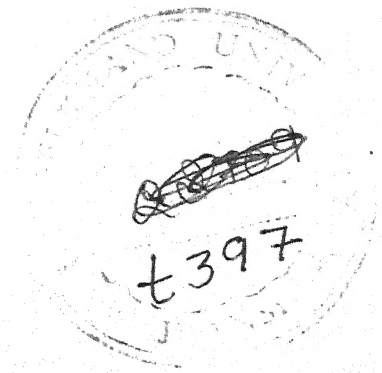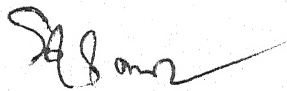
।। श्री गुरवे नमः ।।

C E R T I F I C A T E

This is to certify that the research work embodied in this thesis , submitted for the Degree of Ph.D. in History , entitled " जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों का सांस्कृतिक अध्ययन- पर्यटन विकास की दृष्टि से " is the original research work done by Smt. Ruchira Srivastava .

She has worked under my guidance and supervision for the required period .

(Dr. S.P. Pathak)

अनुक्रमणिका

=========

बुन्देलखण्ड भारतवर्ष का हृदय स्थल है । देश के इस मध्यीय भूभाग में लगभग समान प्रकार का सांस्कृतिक परिवेश देखने को मिलता है । इस क्षेत्र का महत्व सर्वविदित है । जहाँ एक ओर यहाँ की वीरता एवं राष्ट्रप्रेम की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं वहीं दूसरी ओर यहाँ का ईसा पूर्व से लेकर अधुनातन अवर्णनीय एवं अनुपम गरिमापूर्ण सुन्दर सांस्कृतिक वैभव भी प्रसिद्ध है । इसी बुन्देली वसुन्धरा में उत्तर प्रदेश का जनपद ललितपुर भी है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों का सांस्कृतिक अध्ययन और पर्यटन विकास की सम्भाव्यता का समग्र अध्ययन पहली बार प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि इसके पूर्व भी देवगढ़ , चांदपुर-दुधई और सेरोनजी की जैन कला पर कुछ शासकीय, सामाजिक तथा शोधकर्ताओं के प्रयत्न होते रहे, लेकिन सम्पूर्ण ललितपुर जनपद के जैन मंदिरों के ‖पर्यटन विकास की दृष्टि से‖ समग्र अध्ययन का इसके पूर्व अन्य कोई प्रयत्न नहीं हुआ । अतः विश्वास है कि यह प्रस्तावित शोध प्रबंध जहाँ एक ओर बुन्देलखण्ड के क्षेत्रीय इतिहास का ज्ञान उजागर करने में सहायक होगा वहीं दूसरी ओर यह उत्तर प्रदेश के पिछड़े जनपद ललितपुर में पर्यटन विकास को भी प्रोत्साहित करने में सहायक होगा ।

इस शोध कार्य की तैयारी के लिए मैंने देवगढ़, चांदपुर-जहाजपुर, दुधई, मदनपुर , बानपुर, पावागिरि, सिरौन, सेरोनजी, गिरार और ललितपुर के जैन क्षेत्रों का व्यक्तिगत सर्वेक्षण किया है । यहाँ के तथा झांसी, लखनऊ और दिल्ली के पुरातत्व संग्रहालयों का अवलोकन - अनुशीलन किया है । जनपद के जैन क्षेत्रों के प्रबंध समितियों के मान्य अधिकारियों से व्यक्तिगत साक्षात्कार भी किया है । इसके अतिरिक्त भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षणों की रिपोर्ट्स ,झांसी और लखनऊ के पर्यटन कार्यालयों के अप्रकाशित रजिस्टरों, गजेटियर्स, सरकारी रिपोर्ट्स और अन्य दूसरे तरह के प्रकाशन और समाचारपत्रों तथा सरकारी , गैर सरकारी पत्र-पत्रिकाओं का भी अध्ययन , मनन एवं चिंतन किया है । इस प्रकार प्राप्त लगभग सभी आधार-ग्रंथों का अध्ययन कर निष्पक्ष विवेचन की चेष्टा की है ।

संस्थाओं तथा पुस्तकालयों में विशेष रूप से बुन्देलखण्ड वि0वि0, झांसी , सागर वि0वि0 , इलाहाबाद विश्वविद्यालय, राजकीय संग्रहालय,

झांसी के पुस्तकालयों तथा देवगढ़ , सेरोनजी, मदनपुर ,ललितपुर जैन क्षेत्रों के प्रबंध समितियों के कार्यालयों और पब्लिक लायब्रेरी प्रयाग , राजकीय लायब्रेरी प्रयाग, उत्तर प्रदेशीय अभिलेखागार , सिविल सेक्रेट्रियेट ,लखनऊ , पुरातत्व विभाग,लखनऊ और नई दिल्ली से मुझे विशेष सहायता मिली है । इनके अधिकारियों के प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं अपना नैतिक दायित्व समझती हूं । साथ ही शोध प्रबंध की तैयारी के लिये प्रयुक्त सहायक ग्रंथों के विद्वान लेखकों व प्रकाशकों के प्रति भी आभार प्रदर्शित करती हूं ।

इसके साथ ही मैं अपने निर्देशक डा० एस० पी० पाठक , अध्यक्ष, इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी के प्रति आभार व्यक्त करती हूं जिनकी मुझ पर पूर्ण अनुकम्पा रही । उन्होंने मुझे समय समय पर आवश्यक सुझाव दिये तथा पाण्डुलिपि भी देखी ।

मैं अपने पूज्यनीय पिता जी डा० श्रीमोहनलाल श्रीवास्तव ,अध्यक्ष, इतिहास विभाग, डी०वी० कालेज,उरई की चिर ऋणी रहूंगी जिनकी प्रेरणा ने मेरे लिये संजीवनी का कार्य किया और सद्‌बुद्धि के साथ-साथ साहस भी प्रदान किया ।

मैं अपनी पूज्यनीया माता जी श्रीमती प्रेम श्रीवास्तव,प्रवक्ता इतिहास, आर्य कन्या इण्टर कालेज, उरई , ज्येष्ठ भ्राता आलोक मोहन और कनिष्ठ भ्राता आनन्द मोहन को भी आभारी हूं ,जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रोत्साहन व सहायता भी प्रदान की है ।

साथ ही मैं अपने पूज्य पतिदेव श्री योगेश श्रीवास्तव व श्वसुर श्री एस०एस० सिन्हा की भी आभारी हूं जिन्होंने समय समय पर अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया । श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव,एस०डी०आई० ललितपुर ,श्रीमती स्नेह श्रीवास्तव अध्यापिका ,राजकीय महिला विद्यालय,ललितपुर ,श्री कुन्दनलाल तिवई ,समाजसेवी,ललितपुर और डा० रामस्वरूप खरे पूर्व अध्यक्ष,हिन्दी विभाग, डी०वी०कालेज,उरई की भी मैं आभारी हूं जिन्होंने इस कार्य में मेरी अनेक प्रकार से सहायता की है ।

मैं टंकणकर्ता श्री शिवशंकर लाल सक्सेना ,तुलसीनगर, उरई के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने बड़ी लगन एवं परिश्रम के साथ इस शोध प्रबंध

को पूरा करने में सहयोग दिया ।

अन्त में प्रस्तुत प्रबंध विद्वानों के समक्ष रखते हुए क्षमा-याचना भी करना चाहती हूँ । यथा संभव सुधार और परिश्रम करने पर भी प्रबंध में त्रुटियाँ अवश्य रह गयी होंगी , क्योंकि कोई भी कार्य कभी भी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता है । ज्ञान का क्षेत्र अनन्त है और उसमें विस्तार ,मनन, तथा चिन्तन की अनन्त संभावनायें हैं , इसलिए शोधकर्त्री भी पूर्णता का दावा नहीं कर सकती,इतना ही कह सकती है कि प्रस्तुत शोध प्रबंध पर्यटन विकास की दृष्टि से जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों के समग्र सांस्कृतिक अध्ययन का एक नया प्रयास हैऔर प्रत्येक नया प्रयास विकास का सूचक होता है ।

रुचिरा श्रीवास्तव

दिनांक - 5-10-93 (श्रीमती रुचिरा श्रीवास्तव)

अध्याय - 1

प्रस्तावना -

सूक्ष्म ऐतिहासिक विवरण -

वर्तमान में ललितपुर, उत्तर प्रदेश प्रान्त का एक महत्वपूर्ण जनपद है । यह उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश सीमा पर 24^0 11 से 25^0 57 उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 25 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है ।[1] उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग में स्थित ललितपुर जनपद की सीमायें, पूर्व में टीकमगढ़ जनपद , पश्चिम में गुना तथा शिवपुरी जनपद , दक्षिण में सागर जनपद तथा उत्तर में झाँसी जनपद से जुड़ी हुई हैं । इस प्रकार उत्तर को छोड़ कर तीन दिशाओं में यह जनपद मध्य प्रदेश से घिरा हुआ है । बेतवा , धसान तथा जामनी नदियाँ इस जनपद की अधिकांश सीमा को निर्धारित करती हैं ।[2]

ललितपुर नाम का इतिहास -

ललितपुर जनपद का नाम ललितपुर , इसके प्रमुख नगर एवं मुख्यालय ललितपुर के नाम से जाना जाता है । किंवदन्तियों के अनुसार दक्षिण भारत के राजा सुमेर सिंह चर्म रोग से पीड़ित थे । वह एक बार गंगा स्नान को जा रहे थे । मार्ग में एक तालाब के निकट , जहाँ वह रुके थे , बीमार पड़ गये। रात्रि स्वप्न में उनकी रानी [ललिता] को दिखाई दिया कि अगर राजा उस तालाब में स्नान करें तो उनका चर्म रोग ठीक हो जायेगा ।प्रातः राजा ने तालाब में स्नान किया जिससे उनको

1- [अ] स्टेटिस्टिकल ,डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ एन0डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया वोलूम। बुन्देलखण्ड[ई0टी0 एटकिन्सन, 1874 पृ0 304 ।

[ब] प्रगति के पथ पर अग्रसर , ललितपुर 1986 प्रकाशक जिला सूचना विभाग, ललितपुर पृ0 3 .

2[अ] - अनुक्रमणिका ,प्रकाशक - जिला सूचना विभाग , ललितपुर , 1989, पृ0 1.

[ब] मानचित्र ललितपुर ।

चर्म रोग से मुक्ति मिल गई । राजा ने उसी तालाब के निकट एक नगर बसाया जो उनकी रानी §ललिता§ के नाम पर ललितपुर कहलाया ।[3] वह तालाब आज भी है जिसमें उनका नाम अंकित है । वह तालाब अब उन्हीं के नाम पर सुमेरा तालाब के नाम से जाना जाता है ।

जिला ललितपुर :
==============

"ललितपुर" नाम का सर्वप्रथम उल्लेख "आइने अकबरी" से प्राप्त होता है । अबुल फज़ल ने सूबा §प्रांत§ मालवा में तीन सरकारों का वर्णन किया है जिनके नाम हैं, चन्देरी, गरहा एवं रायसेन । परगना ललितपुर, चन्देरी सरकार में आता था। धनमारा एवं ललितपुर परगनों का क्षेत्रफल 10977 बीघा था । इन परगनों से 6,19,997 दाम राजस्व प्राप्त होता था । यहाँ पर मुगलों की एक चौकी भी थी । इस चौकी में 200 पैदल सैनिक तथा 80 घुड़सवार की एक टुकड़ी रहती थी । इसी तरह दोयई §दुधई§ परगने का क्षेत्रफल 3,652 बताया है जिससे 20,600 दाम का राजस्व प्राप्त होता था । यहाँ पर मुगलों की एक चौकी थी जहाँ पर राजपूत और गौंड़ों की एक टुकड़ी 20 घुड़सवार, 700 पैदल सैनिक रहते थे ।[2] चाँदपुर और देवगढ़ गरहा सरकार के परगने थे जिनसे लगभग 9,00,000 दाम का राजस्व प्राप्त होता था । यहाँ पर भी एक सेना की टुकड़ी रहती थी जिसमें 1500 घुड़सवार एवं 5000 पैदल सैनिक थे ।[3]

---

1. §अ§ स्टेटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ एन0डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया भाग । §बुन्देलखण्ड§ लि0ई0टी0 एटकिन्सन 1874 पृ0514-15 .
   §ब§ झांसी गजेटियर, ई0 बी0 जोशी 1965 पृ0 351 .
2. आइने अकबरी, अबुल फजल, द्वारा एच0एस0 जैरेट और सरकार, पृ0 210, 211, 212, 213 .
3. वही .

चेदि देश :

महाभारत युग से लेकर गुप्तकाल तक इस भू-भाग को चेदि देश अथवा चेदि राष्ट्र भी कहा गया है ।[1] उस समय गंगा और नर्मदा नदी के बीच का क्षेत्र चेदि कहलाता था ।[2] प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख मिलता है ।[3] चेदि नरेशों के समय में इस देश की बड़ी प्रसिद्धि हुई थी । शिशुपाल इस देश का महान शासक था । जिसकी राजधानी वर्तमान चन्देरी थी ।

अभिरस :

250 ई0 के लगभग इस क्षेत्र पर अभीरस अथवा अहीर शासकों का शासन रहा । इनका शासन झाँसी और विदिशा के बीच के क्षेत्रों में था । झाँसी, महोली, मड़वारा {अहिरवारा} में इन शासकों के भग्न भवन मिलते हैं ।[4] तालबेहट में एक नाला भी अहिरवारा के नाम से जाना जाता है ।[5]

गुप्त काल :

चौथी शताब्दी के मध्य में इस क्षेत्र को समुद्रगुप्त ने जीता था । चौथी शताब्दी से ही इस क्षेत्र पर गुप्त राज्य वंश की राज्यश्री का उदय हुआ, जो छठवीं शताब्दी तक चला था ।[6] गुप्त काल का बसाया हुआ नगर देवगढ़ एवं गुप्त काल की स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला के बेहतरीन नमूने देवगढ़ में आज भी विद्यमान हैं । देवगढ़ में मिले एक अभिलेख में गोविन्द गुप्त का नाम मिलता है । गोविन्द गुप्त कुमार गुप्त {प्रथम} .{375-413 ई0} का छोटा भाई था । सम्भवतः देवगढ़ के

---

1. चन्देल और उनका राजत्वकाल , मिश्रा केशव चन्द्र , पृ0 4 .
2. भारतीय इतिहास , कोष, भट्टाचार्य सच्चिदानन्द , पृ0 154 .
3. चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास , पाण्डेय, अ0प्र0, पृ0 4 .
4. चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ,पाण्डेय, अ0प्र0, पृ0 4 .
5. वही वही वही पृ0 4.
6. झाँसी गजेटियर , 1965 , ई0 बी0 जोशी , पृ0 21-22 .

मन्दिरों एवं भवनों का निर्माण गोविन्द गुप्त ने ही करवाया था ।[1] देवगढ़ प्राचीन समय में लुअच्छगिरि के नाम से जाना जाता था ।[2]

गोंड शासक :

गोंड यहाँ के प्राचीन निवासी हैं । ये यहाँ के पहाड़ी एवं आदिवासी लोग हैं ।[3] गोंड शासकों का शासन क्षेत्र मालथा तुबा रहा है । धमोनी ,बालाबेहट, देवगढ़, झाँसी, दुधई आदि स्थानों पर गोंड शासकों के शासन के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं । गोंड शासकों का प्रमुख नगर हरीपुर जो झाँसी परगना में है तथा दुधई उस समय के प्रमुख नगर थे । बाद में नवीं शताब्दी में चन्देल राजा नन्नुक [831-850ई0] ने इस क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर अपने शासन की स्थापना की थी,[4] परन्तु गोंडों से संघर्ष बराबर चलता रहा जैसे कि चन्देल राजा यशोवर्मन के शिलालेख की एक पंक्ति से आभास होता है ।

गौड़ी क्रीडालता सिन्धुलित आसक्तः कोशलः कोशलानाम् [5]
अर्थात वह [यशोवर्मन] गोंडों को काटने के लिये कृपाण था और वो [गौड़] क्रीडालता थे ।

आगे चलकर चन्देल शासकों एवं गोंडों के सम्बन्ध मधुर हो गये थे । 1545 ई0 में कालिंजर के चन्देल राजा कीरत सिंह की राजकुमारी दुर्गावती का परिणय गढ़मण्डल [गोंडवाना ,मालथा तुबा] के राजा दलपति सिंह से हुआ था जो इस क्षेत्र का शासक था ।[6] परन्तु बुन्देलों और गोंडों के सम्बन्ध अधिक समय तक मधुर नहीं रहे ,विशेषकर राजा जुझार सिंह के सम्बन्ध इतने तनावपूर्ण रहे कि 1635 ई0 में गोंडों ने विद्रोही जुझार सिंह एवं उनके पुत्र विक्रमाजीत सिंह का वध करके उनके सर मुगल बादशाह शाहजहाँ को भेज दिये थे, जब जुझार सिंह धमोनी से होकर दक्षिण की ओर भाग रहा था ।[7]

1- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , निगदा एस0 डी0 , पृ0 - 14 .
2- चन्देल और उनका राजत्वकाल , मिश्रा केशव चन्द्र , पृ0 29 .
3- झाँसी गजेटियर, ई0बी0 जोशी , पृ0 25.
4- इपिग्राफी इण्डिका, भाग-1 , पृ0 127-128 .
5- चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास , पाण्डेय अयोध्या प्रसाद, पृ0 33 .
6- जर्नल एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1881 भाग 14, पृ0 - 312 .
7- मुगल कालीन भारत , श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल ,पृ0 -309 .

चन्देल काल :

चन्देलों के शासन काल में यह भू-भाग जेजाभुक्ति अथवा जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था ।[1] यह नाम चन्देल वंश के तृतीय शासक जयशक्ति (865-885 ई०) के नाम पर पड़ा था ।[2]

जेजाख्यया अथ नृपतिः
तदभूव जेजाक भुक्तिः
पूर्वस्तदयया पृथिव्यामासीद ।[3]

पृथ्वीराज चौहान के मदनपुर शिलालेख से प्रकट होता है कि 12 वीं शताब्दी तक यह भू-भाग जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था ।

ओं अर्नोराजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सूनुना ।
जेजाक भुक्ति देशो यं पृथ्वी राजेन लुनितः ।। [4]

चन्देल काल में यह समस्त जनपद चन्देल शासकों की राज्यश्री अर्थात जेजाकभुक्ति का एक भाग था, उनके बसाये हुये नगर मदनपुर, चांदपुर, देवगढ़, दुधई एवं उनकी स्थापत्य कला एवं मूर्ति कला की कलाकृतियां एवं उनकी राज्यश्री की भग्न अवशेष आज भी समस्त जनपद में बिखरे पड़े हैं ।

चन्देल काल में इस जनपद का वैभव चरम सीमा पर था । कीर्तिवर्मन के राजघाट शिलालेख जो कि एक पत्थर की चट्टान पर कनिंघम को प्राप्त हुआ था, जो संवत 1154 (1098ई0) के अनुसार उस समय चन्देल राज्य की

---

1. चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पाण्डेय अयोध्या प्रसाद, पृ0 -7.
2. चन्देलाज आफ जेजाकभुक्ति, दीक्षित आर0के0, पृ0 -28.
3. महोबा शिलालेख इपिग्राफिक इण्डिया, भाग -1, पृ0 -220 .
4. आर्किलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग -1., ए0 कनिंघम, पृ0-98-99 .

सीमा मंडला तक पहुंच चुकी थी एवं कीर्तिवर्मन का प्रधान मंत्री वत्सराज था उसने अपने स्वामी के नाम से एक दुर्ग का निर्माण देवगढ़ की पहाड़ी पर करवाया था, जो कीर्तिगिरि-दुर्ग के नाम से जाना जाता था। सम्भवतः वर्तमान राज्य-घाट का नाम कीर्तिवर्मन के प्रधान मंत्री वत्सराज के नाम पर ही पड़ गया है।[1]

इसके अतिरिक्त इस जनपद में स्थान-स्थान पर चन्देल कालीन अथवा चन्देल शासकों के द्वारा निर्मित कई एवं सिंचाई साधन कुएं एवं सरोवर भी बनवाये गये थे जो उस समय से लेकर वर्तमान तक जलपूर्ति के काम आते हैं।[2]

धंगोल, तालबेहट, टैंगा, हरगिरि, किरौंरा, सिमोरा घाली, बालाबेहट, सिरोन खुर्द, बानपुर, नरहट, दौलतपुर, गुरहा खुर्द, सिरौंज एवं सिनोरई में चन्देल कालीन स्थापत्य कला, मूर्ति कला एवं विश्राम-गृह तथा जनपद के समस्त परगनों में सिंचाई के साधन प्राप्त होते हैं।[3]

पृथ्वीराज चौहान (1169-1192 ई0) एवं कुतुबुद्दीन ऐबक (1202-1211 ई0) के आक्रमण के बाद इस भू-भाग पर से चन्देल शासन लगभग लुप्त हो गया था। परन्तु 1203 ई0 में यह भू-भाग एक बार फिर चन्देल शासकों के आधीन हो गया था। संवत् 1261 (सन् 1204 ई0) का ताम्रपत्र गारा गाँव जिला छतरपुर प्राप्त हुआ था जिसमें ललितपुर जनपद के पेदमारा गाँव का वर्णन है, यह ताम्रपत्र चन्देल शासक त्रैलोक्य वर्मन

---

1. (अ) चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 डा0अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ078
   (ब) आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग 10, [illegible] ए0कनिंघम पृ0103.
2. चन्देल और उनका राजत्वकाल, मिश्रा केशव चन्द्र, पृ0-14.
3. आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग-10, कुक ए0कनिंघम पृ0 114-125.

(1213-1245 ई0) का है ।[1] ललितपुर जनपद के टेहरी ग्राम में मिले अभिलेख से त्रिलोक वर्मन की शासन सीमा में टेहरी (वर्तमान टेहानी बानपुर) सिरोंज खुर्द, बेदवारा और महोबरा का वर्णन है ।[2]

मुस्लिम काल (1000-1526 ई0)

इस भू-भाग में अथवा बुन्देलखण्ड में मुस्लिम शासकों का सर्वप्रथम प्रवेश 414 हिजरी (सन् 1023 ई0) के लगभग है ।[3] सुल्तान महमूद गजनवी ने चन्देल राजा गंड के राज्य पर आक्रमण करके ग्वालियर के किले को घेर लिया । बाद में ग्वालियर के हाकिम (उप-शासक), ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली । इसके बाद महमूद ने कालिंजर पर आक्रमण किया । चन्देल शासक गंड ने बाद में महमूद से संधि का प्रस्ताव रखा जिसे महमूद ने स्वीकार कर गंड को उसका शासन सौंप कर वापिस गजनी चला गया ।[4] सन् 1182-83 ई0 के लगभग पृथ्वीराज चौहान ने इस भू-भाग पर अधिकार कर ग्वालियर, सागर, ललितपुर एवं महोबा पर अपना शासन स्थापित किया । यह प्रमाण ललितपुर जनपद स्थित मदनपुर नगर से प्राप्त शिलालेख से मिलता है ।[4] पृथ्वीराज का युद्ध चन्देल शासक परिमर्दिन

1- चन्देलाज आफ जेजाकभुक्ति, दीक्षित आर0के0, पृ0 156-157.

2- वही . पृ0 - 157.

3- डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, भाग-2, पृ0-677, राय हेमचन्द्र .

4- (अ) चन्देलाज आफ जेजाकभुक्ति, दीक्षित आर0के0 पृ0 145 .

(ब) चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 डा0अयोध्याप्रसाद पाण्डेय पृ0-96-100

(स) पृथ्वीराज चौहान का मदनपुर शिलालेख

"अर्णोराजस्य पौत्रेण श्री
सोमेश्वर सुनुना जेजाक
भुक्ति देशोयं पृथ्वीराजेना
लुनितः ।। सं0 1239 "

आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग 10, ए0 कनिंघम पृ0 98-99 .

देव से हुआ §1165-1202 ई0§ था ।[1] बाद में 1202 ई0 कुतुबुद्दीन ऐबक ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर चन्देल सत्ता को लगभग समाप्त कर, इस भू-भाग पर अपना अधिकार कर लिया था ।[2] परन्तु 1204 ई0 से 1290 ई0 तक चन्देल शासक त्रिलोक वर्मन §1204-1242 ई0§, वीर वर्मन §1242-1286 ई0§ एवं भोज वर्मन §1286-1290 ई0 § अपने शासन का अस्तित्व कायम रखने के लिये मुस्लिम शासकों से बराबर संघर्ष करते रहे ।[3].

1291-92 ई0 में इस जनपद का अधिकांश भाग मालवा सूबे§प्रान्त§ के अन्तर्गत आता था जिसका शासक हरनन्द था ।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि यह हरनन्द शासक गौड़ राजा था । इस समय दिल्ली में खिलजी राज्य वंश की नींव पड़ चुकी थी तथा अलाउद्दीन खिलजी §1296-1316 ई0§ का शासन था । अलाउद्दीन खिलजी ने इस भू-भाग को जीतने के लिये अपने गवर्नर आईन-उल-मुल्क मुल्तानी को एक विशाल सेना के साथ मालवा भेजा । दिसम्बर 1305 ई0 को एक भयंकर युद्ध के बाद यह समस्त भू-भाग मालवा सूबे के अन्तर्गत जो कि उज्जैन से चन्देरी तक फैला हुआ था , खिलजी शासन के आधीन हो गया एवं मलिक तैमूर को§मुक्ता § प्रान्तीय गवर्नर नियुक्त किया ।[5]

1- आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया ,भाग -10 ए0 कनिंघम पृ0 98-99
2§अ§ भारत का इतिहास , श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल ,पृ0-37.
§ब§ चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ0 100-101
3-§अ§ हिस्ट्री आफ चन्देलाज ,बोस एन0 एस0 , पृ0 107-108 .
§ब§ चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ0-112-127.
4- भारत का इतिहास ,श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल , पृ0 -118.
5- §अ§ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया , भाग-3 ,सर वल्जी हेग पृ0-110-111.
§ब§ स्टडीज इन साउथ इण्डियन जनपद :भाग-1 काउजन्स, दि फिन इमेजेज आफ देवगढ़ पृ0 64,66 .

मुहम्मद बिन तुगलक [1325-51 ई0] के काल में समस्त बुन्देलखण्ड भू-भाग दिल्ली सुल्तान के अधीन था । ग्वालियर ,कालपी और चन्देरी इस प्रान्त में आता था ।[1] इस समय प्रसिद्ध इतिहासकार इब्नेबतूता इस प्रान्त से 1335 ई0 में चन्देरी होकर गुजरा था , उसने इस विशाल प्रान्त का हेड क्वार्टर [मुख्यालय] चन्देरी बतलाया था । उसके समय में समस्त प्रान्त का वातावरण शान्तिपूर्ण बतलाया एवं उस समय चन्देरी का सूबा अज्जुद्दीन-अल-बनटानी था ।[2] फिरोज तुगलक [1351-1388 ई0] के समय ऐरच एवं चन्देरी के साथ इस जनपद का समस्त भाग दिल्ली सल्तनत के अधीन था । 1373-74 ई0 को सुल्तान की सिन्ध वापिसी पर एरच और चन्देरी को फिरोज तुगलक ने एक सैनिक छावनी का रूप दिया जिसे मलिक मोहम्मद शाह अफगान जो कि तुगलकाबाद का गवर्नर था ,उसके अधीन कर दिया ।[3]

1388 ई0 से 1414 ई0 तुगलक वंश एवं शर्की सुल्तानों में परस्पर अपनी प्रभुता कायम रखने के लिये एक दूसरे के प्रान्तों पर आक्रमण करते रहे जिससे तुगलक शासन खण्डों में विभाजित हो गया । 1435 ई0 तक ललितपुर जनपद कभी राजपूतों और कभी दिल्ली सुल्तानों के अधीन रहा ।[4] इस बीच इस भू-भाग पर एक नये राजवंश का उदय हो चुका था । 1468 ई0 में बुन्देला राजा अर्जुनदेव की मृत्यु के बाद उसका एक मात्र पुत्र मलखान सिंह गढ़कुढ़ार की गद्दी पर बैठा ।[5]

1[अ] - द राइज एण्ड फाल आफ मोहम्मद बिन तुगलक ,आगा मेंहदी हसन पृ0-96
[ब] - स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग 1, क्राउनजुअल,दीक्षित इमेजेज आफ देवगढ़ पृ0
2[अ] - तुगलक कालीन भारत, भाग-1, रिजवी एस0ए0ए0,अलीगढ़, 1957 पृ0-270.
[ब] - स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग-1, क्राउनजुअल,दी जिन इमेजेज आफ देवगढ़ पृ0 64.
[स] - इब्नबतूताज रेहला अनुवादक मेंहदी हसन पृ0 166-167 [बड़ोदा 1953] .
3[अ]वही: भाग -1, पृ0 -244.
4- उत्तर तैमूर कालीन भारत ,भाग-1,रिजवी एस0ए0ए0,अलीगढ़,पृ0-8-10.
5- बुन्देलों का इतिहास , श्रीवास्तव भगवानदास , पृ0-14 .

उस समय बुन्देला राजाओं के शासन की सीमा ललितपुर जनपद तक थी ।[1] राजा मलखान सिंह बुन्देला ने बहलोल लोदी {1451-1489ई०} की आधीनता स्वीकार नहीं की ।[2] 1501 ई० में राजा मलखान सिंह की मृत्यु के बाद उसका बड़ा पुत्र गद्दी पर बैठा । 1512-13 ई० में सिकन्दर लोदी {1489-1517} ने ललितपुर , चन्देरी पर अपना अधिकार कर लिया ।[3]

1517 ई० में एक बार फिर चन्देरी-ललितपुर पर राजपूत अपना अधिकार करना चाहते थे , पर इक्ता {प्रान्तीय सूबेदार} हुसैन करमाली ने चन्देरी पर अपना आधिपत्य कायम रखा ।[4]

1525 ई० तक लोदी शासकों की आपसी फूट और प्रान्तीय गवर्नर के विद्रोह एवं शासकों की विलासता के कारण दिल्ली सुल्तानों की लोकप्रियता घटने लगी , तभी देश की पश्चिमी सीमा पर एक नया राजवंश आक्रमण करने के लिये आ गया । मुगल राजवंश के प्रथम शासक बाबर ने अपनी नव निर्मित सेना के साथ दिल्ली पर आक्रमण किया । 1526 ई० में पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी एवं बाबर की सेनाओं में युद्ध हुआ जिसमें बाबर विजयी हुआ । 1527 ई० में खानवा के युद्ध में राणा सांगा को पराजित कर बाबर समस्त उत्तरी भारत का शासक बन गया । 1527 ई० में ही बाबर ने चन्देरी के मेदनीराय को हरा कर उसी राज्य पर अपना अधिकार

1- बुन्देलों का इतिहास ले० श्रीवास्तव भगवान दास भाग -1 पृ० 14
2- ईस्टर्न स्टेट {बुन्देलखण्ड} गजेटियर , सी०ई० लुआर्ड, पृ०-17 .
3- {अ} हिस्ट्री आफ इण्डिया , इलियट डाउसन, कलकत्ता 1953, पृ० 123.
{ब} पूर्व मध्यकालीन भारत ले० रतिभानु सिंह नाहर, पृ०- 635 .
4- उत्तर तैमूर कालीन भारत , भाग-1 , रिजवी एस० ए० ए० पृ० 235-37.

कर लिया एवं यह जनपद मुगल शासन के अधीन हो गया ।[1]

मुगल काल §1526-1707 ई0§ :

1526 ई0 से 1530 ई0 तक बाबर ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग पर विजय प्राप्त कर ली । 1530 ई0 में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उसका उत्तराधिकारी हुआ , परन्तु वह अपने पिता के विभिन्न भू-भागों पर अधिकार न रख सका । 1542 ई0 में अफगान शासक शेरशाह ने चन्देरी एवं ललितपुर जनपद के एक बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया ।[2] कुछ समय पश्चात् बुन्देला शासक रूद्रप्रताप बुन्देला जो कि अपनी राजधानी गढ़ कुढ़ार से ओरछा ले आया था ,उसने झाँसी एवं ललितपुर जनपद के बड़े भाग पर अपना अधिकार कर लिया । इस कार्य को रूद्रप्रताप की मृत्यु के पश्चात् भारती चन्द्र ने पूर्ण किया ।[3] हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् 1556 ई0 में अकबर मुगल राजवंश का अगला शासक हुआ । अकबर के राज्यकाल में जनपद ललितपुर सूबा §प्रान्त§ मालवा के सरकार चन्देरी के अन्तर्गत आता था । तब ललितपुर एवं बन्धारा परगनों का क्षेत्रफल 10977 बीघा था जिसका राजस्व 619997 दरहम वसूल होता था ।[4]

19 अगस्त 1602 ई0 में अकबर का युवराज सलीम के कहने पर वीरसिंह बुन्देला ने अकबर के प्रधान मंत्री अबुल फजल का वध दतिया के पास आँतरी में

1- मुगल कालीन भारत , रिजवी एस0ए0ए0 ,पृ0 405

2§अ§ -द हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियन्स भाग-1, इलियट डाउसन §कलकत्ता§, पृ0-50,445-46 .

§ब§ मुगल कालीन भारत ले0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव , पृ0 95-96 .

3- द मासिर-उल-उमरा, समसु-उद-दौला शाह नवाज खान, अनुवाद वाई0एच0 बिवरेज भाग-2 , पृ0 -106 .

4- आइने अकबरी अबुल फजल , अनुवाद एच0एस0जेरट और सरकार, भाग-2, कलकत्ता 1949, पृ0 -198 .

कर दिया ।[1] 1605 ई0 में अकबर का पुत्र सलीम जहाँगीर के नाम से मुगल शासक बना । जहाँगीर के बादशाह बनने के बाद वीर सिंह बुन्देला को जहाँगीर ने ओरछा जतारा एवं समस्त बुन्देलखण्ड का अधिकार दे दिया ।[2] वीरसिंह के कहने पर चन्देरी एवं बानपुर की जागीर राम शाह को दे दी गयी ।[3] राम शाह की मृत्यु के बाद शाहजहाँ ने यह जागीर उसके पुत्र को दे दी थी ।[4] वीरसिंह देव की मृत्यु के बाद जुझार सिंह ओरछा का उत्तराधिकारी हुआ , उसने शाहजहाँ के काल में 1629 ई0 में विद्रोह किया , परन्तु वह दबा दिया गया । इस विद्रोह में जुझार सिंह की सहायता चन्देरी ,बानपुर के शासक भारत शाह ने भी नहीं की । वह शाही सेनाओं के साथ रहा ।[5] 1635 ई0 में जुझार सिंह ने फिर विद्रोह किया, परन्तु वह दबा दिया गया |अपने इस विद्रोह में सफल न हो सका | 1635 ई0 में ललितपुर जनपद के दक्षिण में धमोनी के निकट गोड़ों ने उसका वध कर दिया ।[6] जुझार सिंह की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ ने ओरछा को अस्थाई रूप में चन्देरी और बानपुर के शासक के अधिकार में दे दिया । 2 वर्ष तक देवी सिंह चन्देरी एवं बानपुर के शासक साथ-साथ ओरछा का भी शासक रहा । 1637 ई0 में ओरछा

1|अ| तुजके जहाँगीरी , भाग-1, अनुवाद रोजर्स ए0 एवं बेवरिज एच0 |लन्दन 1909| पृ0 24-25 .

|ब| मुगल कालीन भारत ले0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव पृ0 183 .

2- तुजके जहाँगीरी , भाग-1 , अनुवाद रोजर्स एएवं बेवरिज एच0 पृ0 87

3- वही : पृ0 -160 .

4- ओरछा का इतिहास, गौड़ लक्ष्मन सिंह . पृ0 54

5- बुन्देलों का इतिहास , श्रीवास्तव भगवानदास पृ0 36

6- हिस्ट्री आफ शाहजहाँ , सक्सेना बी0पी0 , दिल्ली ; पृ0 86-89 .

उसे छोड़ना पड़ा ।[1] 1641 ई0 में शाहजहाँ ने ललितपुर जनपद के आनियाघाट, तालबेहट, ओरछा एवं झाँसी जनपद का एक बड़ा भाग बुन्देला राजा पहाड़सिंह को दिया एवं उसका मनसब भी बढ़ा कर 2000 जुलूल कर दिया ।[2] 1654 ई0 में पहाड़सिंह की मृत्यु के पश्चात सुजान सिंह ओरछा का राजा हुआ, वह 1667 ई0 तक ओरछा का हाकिम रहा, उसकी मृत्यु के पश्चात उसका भाई इन्द्रमणी ओरछा का शासक रहा ।[3] 1666 ई0 में शाहजहाँ की मृत्यु हो गयी । उधर ओरछा में उसका पुत्र दुर्गासिंह चन्देरी का शासक बना ।[4] ललितपुर जनपद का बार एवं जखालीत एवं महपुरा अभी भी राजा रामशाह (वीरसिंह देव का भाई) के वंशजों के अधिकार में था एवं झाँसी और उससे लगे 58 गाँव शाहजहाँ ने मुकुन्दसिंह को दे रखे थे ।[5]

बुन्देला शासन काल :

शाहजहाँ की मृत्यु के बाद औरंगजेब मुगल सम्राट बना । उधर बुन्देलखण्ड के छत्रसाल ने सम्राट के प्रति विद्रोह कर दिया, परन्तु इस विद्रोह में चन्देरी, बार, दतिया, ओरछा के शासकों ने उसका साथ नहीं नहीं दिया ।[6] छत्रसाल ने शीघ्र ही एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली और ललितपुर जनपद के सिरोंज और

1- बुन्देलों का इतिहास, श्रीवास्तव भगवानदास, पृ0- 40
2- दी मासिर-उल-उमरा, भाग -2, समसुद्दौला शाह नवाज खान अनु0 बाई0एच0 बिवरेज, पृ0 -471.
3- ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर, सी0ई0 लुआर्ड, पृ0-27
4- वही.
5- वही.
6- बुन्देलों का इतिहास, श्रीवास्तव भगवान दास, पृ0-77

ललितपुर जनपद के दक्षिण में धमोनी क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया ।[1] वह 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद बुन्देलखण्ड का स्वतंत्र शासक बन गया ।[2] 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके पुत्र उसके विशाल साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सके इसके कारण छोटे-छोटे सूबेदारों ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया । 1722 ई0 में मुगल गवर्नर नवाब बंगश बुन्देलखण्ड-विजय अभियान पर निकला । औरछा ,चन्देरी , दतिया आदि बुन्देला राजाओं ने नवाब का साथ दिया ।[3] नवाब बंगश शीघ्र ही तेहड़ा,मेहू, मोदहा, पैलानी , अगवासी और सिमौनी दुर्गों पर अधिकार करता हुआ ललितपुर जनपद के दक्षिण में धमौनी आ पहुंचा, जहां पर बुन्देलों ने उसका सामना किया , पर बंगश के कुशल सेनापतित्व के आगे उन्हें पीछे हटना पड़ा ।[4] बंगश की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर छत्रसाल ने मराठा सरदार बाजीराव प्रथम से सहायता मांगी जो इस समय मरहा {उ0 जनपद ललितपुर} में थे ।[5] उन्होंने छत्रसाल को निम्नलिखित पद लिख कर भेजा था :-

" जो गत भई गजेन्द्र की वह गत, जानो आज ।
बाजी जात बुन्देला की , राखियो बाजी लाज ।। [6]

फरवरी 1729 ई0 को यह पत्र बाजीराव को प्राप्त हुआ था ।
पेशवा बाजीराव छत्रसाल की सहायता के लिये तुरन्त आ गये । 12 मार्च 1729 ई0 को उनकी सेना महोबा पहुंची । बंगश को कई स्थानों पर पराजित किया । जैतपुर के निक उसके पुत्र कायम खां को बुरी तरह पराजित किया ।[7] 12 मई 1731 ई0 में छत्रसाल की मृत्यु हो गई ,परन्तु इससे पूर्व पेशवा बाजीराव को बंगश के विरुद्ध सहायता देने पर

1- बुन्देलों का इतिहास , श्रीवास्तव भगवानदास ,पृ0-82

2- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन भाग 1 ले0 राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली , पृ0-112 .

3- बुन्देलों का इतिहास ,श्रीवास्तव भगवानदास पृ0 90 .

4- वही .

5- महाराज छत्रसाल बुन्देला , आगरा 1958,गुप्ता भगवानदास, पृ0-90 .

6- बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन भाग-1 ले0 राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली , पृ0 115 .

7- मराठों का नवीन इतिहास द्वितीय खण्ड ले0 गोविन्द सखाराम सरदेसाई संस्करण 1980 , पृ0 92-96 .

अपने राज्य का एक बड़ा भाग एवं अन्य धन, बाजीराव को दे गये । इससे बुन्देलखण्ड मराठों का एक उपनिवेश बन गया जिसमें झांसी, सागर, जालौन, गुरसराय आदि थे ।[1]

1732 ई0 में मराठों ने बुन्देलखण्ड में अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया । चन्देरी का शासक दुर्गासिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दुर्जन सिंह चन्देरी का शासक हुआ । 1735 ई0 में मराठों ने चन्देरी पर आक्रमण किया तथा उसके प्रसिद्ध दुर्ग भरतगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया ।[2] 1745 ई0 में दुर्जन सिंह की मृत्यु हो गई । दुर्जन सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मान सिंह गद्दी पर बैठा । मानसिंह ने मराठों के आक्रमण को रोकने के लिये ललितपुर जनपद के महरौनी स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण करवाया , परन्तु वह मराठों के आक्रमण को रोक न सका और उसे अपने राज्य का एक बड़ा भाग §समस्त दक्षिण का जनपद ललितपुर का भाग§ देना पड़ा ।[3] मानसिंह की मृत्यु के बाद मानसिंह का बड़ा पुत्र अनिरुद्ध सिंह 1760 ई0 में गद्दी पर बैठा । उसने 15 वर्ष तक राज्य किया । 1775 ई0 में अनिरुद्ध सिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रामचन्द्र 3 वर्ष का था , इस कारण राज्य का प्रबन्ध उसके काका हटेसिंह के अधिकार में आ गया । हटे सिंह ने मसोरा खुर्द में एक दुर्ग का निर्माण करवाया था ।[4] शीघ्र ही चन्देरी की राजमाता ने हटे सिंह के स्थान पर अजगढ़ के जागीरदार चौधरी कीरतसिंह को राज्य का मंत्री नियुक्त किया और हटे सिंह को मसोरा , तालबेहट और 15 गांव की जागीर दी । 1787 ई0 में मराठा सेना ने मोरोपंत §सागर§ के नेतृत्व में बुन्देलों की इस जागीर पर आक्रमण किया । इस आक्रमण का सामना सभी बुन्देला सरदार ,राव उमराव सिंह -राजधारा , दीवान छतरसिंह बाकोन

1- बाजीराव फर्स्ट द ग्रेट पेशवा , सी0के0 श्रीनिवासन, पृ0 - 72-73

2- बुन्देलों का इतिहास , श्रीवास्तव भगवानदास , पृ0-117 .

3- वही .

4- वही .

और ललितपुर एवं पनारी के जागीरदारों ने मिल कर किया ।[1] इस समय चन्देरी का शासक रामचन्द्र तीर्थ-यात्रा को चला गया । राज्य का कार्यभार अपने एक सम्बन्धी देवजू पनवई और उसकी पत्नी को सौंप गया । उसकी अनुपस्थिति में मराठों ने सोरई, दबरानी और बालाबेहट अपने अधिकार में कर लिये । 1801 ई0 में उसका पुत्र प्रजापाल राजा बना, परन्तु वह एक युद्ध में रजवारा स्थान पर मारा गया । प्रजापाल के बाद उसका छोटा भाई मोर प्रह्लाद राजा बना । 1811 ई0 में सिंधिया ने ब्रिटिश आफीसर कर्नल जोन बैपटिस्ट फ्रियोलस के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने चन्देरी व समस्त बुन्देला क्षेत्र को अपनी सीमा में मिला लिया ।[2] मोरप्रह्लाद व उसका परिवार झाँसी चले गये ।[3] 1811-1842 ई0 तक मोर प्रह्लाद बराबर मराठों और अंग्रेजों से बुन्देला सरदारों के साथ मिलकर संघर्ष करते रहे । इस समय चन्देरी सिंधिया के अधिकार में था । बाद में वह कानपुर आकर बस गये । 1842 ई0 में राजा मर्दन सिंह वहाँ के राजा हुए ।[4] दो साल बाद चन्देरी राज्य सिंधिया के अधिकार से ब्रिटिश सरकार के आधीन हो गया ।[5] ललितपुर जनपद का दक्षिण-पूर्वी भाग और धमौनी पर 1707 ई0 में छत्रसाल ने अधिकार किया था । 1731 ई0 में यह क्षेत्र छत्रसाल के बड़े पुत्र हृदय शाह को मिला था । हृदय शाह के बाद यह भाग उसके पुत्र सभा सिंह को मिला । सभा सिंह के बड़े पुत्र पृथ्वी सिंह ने सभा सिंह से अपने लिये एक स्वतंत्र भाग माँगा, परन्तु सभा सिंह ने देने से इन्कार कर दिया । पृथ्वी सिंह ने मराठों से मिल कर शाहगढ़, गढ़कोट, मड़ोरा का स्वतंत्र राज्य सभा सिंह से प्राप्त कर लिया । पृथ्वीराज मराठों की

1- बुन्देलों का इतिहास, श्रीवास्तव भगवान दास, पृ0 - 115 .
2- झाँसी गजेटियर, ईशा बसन्त जोशी, पृ0 - 52.
3- मुस्लिम म्यूजम इन उत्तर प्रदेश, भाग - 3, लेख एस0 ए0 ए0 रिजवी, पृ0 4 .
4- झाँसी गजेटियर, ईशा बसन्त जोशी, पृ0 - 53 .
5- वही वही पृ0 - 53 .

की सहायता से राजा हुआ, वह हमेशा उनका मित्र रहा । इसी वंश में अर्जुन सिंह {1810-1842 ई0} हुये, बाद में उनकी मृत्यु के बाद बखतबली सिंह शाहगढ़ के अन्तिम जागीरदार हुए ।[1]

जिला ललितपुर 1857 से 1947 ई0 तक :

1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय समस्त भारत में क्रांति की ज्वाला धधक रही थी, उस समय यह जनपद भी इस आग से वंचित न रह सका। पड़ोसी जनपद झाँसी में लक्ष्मी बाई इस क्रांति की मशाल उठाये अँग्रेजों से लोहा ले रही थीं । उसी समय जनपद ललितपुर में बुन्देला ठाकुरों एवं राजपूतों ने मिल कर अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह आरम्भ कर दिया जिसकी बागडोर राजा मर्दन सिंह सम्भाले हुये थे । 1857 ई0 के अंतिमें अप्रैल में मड़ावरा {जनपद ललितपुर} के राजा की मृत्यु हो गई । यह "सन्धि-अनुबन्ध के अनुसार उसके राज्य का तीसरा हिस्सा राजा बानपुर को दिया जाये एवं शेष भाग उसके उत्तराधिकारी को । परन्तु ब्रिटिश सरकार इस पर राजी नहीं हुई, इस कारण मड़ावरा का शासक अँग्रेजों के खिलाफ हो गया । इसी समय इस जनपद का प्रशासन जैन-उल-आबदीन के हाथ में दे दिया गया जो कुशल प्रशासनिक अधिकारी नहीं था । मई के प्रारम्भ में गनेशजू एवं उनके पिता जवाहर सिंह भी अँग्रेजों के विरुद्ध हो गये ।[2] इस प्रकार इस जनपद के हर भाग से बुन्देला राजाओं का एक बड़ा समूह अँग्रेजों के प्रति विद्रोह को उठ खड़ा हुआ जिसमें चन्देरी, ललितपुर, तालबेहट के राजा भी थे । जून 11 एवं 12, 1857 ई0 में राजा मर्दन सिंह ने मसौरा पर अपना अधिकार कर लिया और

1- झाँसी गजेटियर, ईशा बासन्ती जोशी, पृ0 - 53

2- द झाँसी गजेटियर, जोशी ई0 बी0, पृ0 - 59.

अपनी सेना में मजबूती के लिये लड़ाकू सैनिक एवं तोपचियों को भर्ती कर लिया एवं झाँसी से सम्पर्क बनाया ।[2] राजा मर्दन सिंह ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अपना विद्रोह बनाये रहे एवं अपना हेड क्वार्टर मतोरा की गढ़ी को बनाया जो कि ललितपुर नगर से 4 मील दूर था । एक विशाल जन-समुदाय एवं बुन्देला राजा उनके झंडे के नीचे आ गये ।[3] 13 जून 1857 ई0 को काफी बड़ी सेना एवं तोपों के साथ ललितपुर पर अधिकार कर लिया । जितने भी अँग्रेज अधिकारी एवं उनके परिवार वाले थे, उनको बन्दी बना कर मतोरा की गढ़ी में रक्खा गया ।[4] बाद में दो दिन बाद उन्हें बानपुर में अँग्रेजों के एजेन्ट को सौंप दिया गया जिन्हें वह ओड़छा ले गया ।[5] 18 जुलाई 1857 ई0 में झाँसी डिवीजन से इसका समाचार प्राप्त हुआ कि दिल्ली का पतन हो गया है । फरवरी 1858 ई0 में मर्दन सिंह ने चन्देरी, बानपुर के अतिरिक्त नरहट पर भी अपना अधिकार कर लिया ।[6] 3 मार्च 1858 ई0 को ब्रिटिश सेना अधिकारी ह्यूज़ रोज़ जो कि सागर में पहले से नियुक्त था, ललितपुर जनपद की ओर बढ़ा । शीघ्र ही उसने बाहगढ़,

---

2- फ्रीडम स्ट्रगल आफ यू0 पी0, वोल्युम - 3, सै0 एल0 ए0 ए0 रिज़वी, पृ0-110.

3- वही .

4- वही .

5- वही .

6- द रिवोल्ट आफ सेन्ट्रल इण्डिया 1857-59 पेज -105, [शिमला 1908]

बालाबेहट पर अपना अधिकार कर लिया ।[1] इन जनपदों में अंग्रेजों का एवं स्वतंत्रता सेनानियों का संघर्ष इस प्रकार लगभग दो वर्ष तक चलता रहा । अन्त में 1858 ई0 के अन्त तक ललितपुर जनपद की समस्त बुन्देला रियासतें ब्रिटिश सरकार के आधीन हो गयीं । स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् झांसी इस क्षेत्र का डिवीजन बनाया गया । झांसी के अतिरिक्त 3 जिले , ललितपुर, हमीरपुर व जालौन इस कमिश्नरी में शामिल किये गये ।

ललितपुर , जो कि पुराने जनपद चन्देरी एवं नरहट ताल्लुका का एक भाग एवं बानपुर व शाहगढ़ के राजाओं का पुराना कस्बा था । 1860 ई0 में ब्रिटिश सरकार के प्रशासन का एक नया जिला बना जिसके आधीन दो तहसीलें महावरा एवं बानपुर थीं । 1861 ई0 में तहसील चंदेरी का मुख्यालय भी ललितपुर बनाया गया । 1866 ई0 में महावरा एवं बानपुर तहसील समाप्त कर , महरौनी को तहसील का दर्जा दिया गया । इस प्रकार ललितपुर एवं महरौनी दो तहसीलें जनपद ललितपुर में हो गयीं । दिसम्बर 1891 ई0 में जिला ललितपुर का विलिनी-करण झांसी जनपद में हो गया ।[2] 1886 ई0 में कांग्रेस की स्थापना के बाद इस जनपद [झांसी-ललितपुर] से शिवपति घोष नामक सज्जन चुन कर आए जो इण्डिया कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में प्रतिनिधि बन कर गये थे ।[3]

1- द रिपोर्ट्स आफ सेन्ट्रल इण्डिया , 1857-59, पृ0-105, [शिमला 1908] :

2- झांसी गजेटियर , जोशी ई0 बी0 , पृ0-2

3- वही : , पृ0- 70 .

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी इस जनपद के सुदामा प्रसाद गोस्वामी ,शीतल हुसैन चमार आदि नेताओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया था ।[1]

जनता की माँग पर समुचित विकास हेतु झाँसी जनपद से ललितपुर , महरौनी तहसीलों को अलग कर नया जनपद ललितपुर दिनांक 1-3-1974 ई0 को बनाया गया । नई तहसील तालबेहट की स्थापना की गई । इस प्रकार वर्तमान में जनपद ललितपुर में तीन तहसीलें [ललितपुर, महरौनी और तालबेहट] है ।[2]

भौगोलिक स्थिति -

जनपद ललितपुर को भौगोलिक रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है।[3]

1- काली मिट्टी का मैदानी भाग ।

2- लाल मिट्टी का पठारी भाग ।

3- विंध्य श्रेणी का पहाड़ी भाग ।

काली मिट्टी का मैदानी भाग :

काली मिट्टी का मैदानी भाग ललितपुर नगर के चारों ओर तथा नगर से लेकर महरौनी तथा मड़ावरा कस्बे तक त्रिभुजाकार के रूप में फैला हुआ है। इस मैदानी भाग में छोटे-छोटे नाले जो कि पठारी भाग से बह कर आते हैं , अपने साथ उपजाऊ मिट्टी बहा कर लाते हैं । इसके अतिरिक्त इस मैदानी भाग में " सहजाद " , " सजनाम " तथा "जामनी " नदियाँ भी बहती हैं । काली मिट्टी का अन्य भू-भाग बेतवा नदी तथा धसान नदी के किनारे भी कहीं कहीं पाये जाते हैं ।[4]

लाल मिट्टी का पठारी भाग :

यह पठारी भाग दक्षिण से पश्चिम तक फैला हुआ है । सफेद पत्थरों से मिश्रित यह कंकरीली मिट्टी का ऊँची -नीची पहाड़ियों के रूप में ,दूर तक फैला हुआ भाग , कहीं कहीं पर ऊँचे टीले का रूप ले लेता है ।

1- व्यक्तिगत साक्षात्कार [सुदामा प्रसाद गोस्वामी से].
2- " प्रगति के पथ पर अग्रसर" - ललितपुर 1986 -प्रकाशक जिला सूचना विभाग, ललितपुर पृ0 - 1 .
3- झाँसी गजेटियर , जोशी,ई0 बी0, 1965, पृ0 3-4 .
4- सायल आफ इण्डिया, ले0 राम चौधरी, पृ0 331-32 .

इसमें कहीं-कहीं पर ग्रेनाइट पत्थरों की छोटी-छोटी पहाड़ियां भी मिलती हैं । इन लाल मिट्टी के टीलों को कंटीली झाड़ियों ने एवं छोटे - छोटे पेड़ों ने ढंक रक्खा है । यह झाड़ियां झरबेरी , करौंदि आदि की होती हैं तथा पेड़ अधिकतर बबूल, ढाक के होते हैं । बरसाती नालों के बहने से इन मिट्टी के टीलों के बीच गहरी घाटियां बन गई हैं ।[1]

विन्ध्य श्रेणी का पहाड़ी भाग :

दक्षिण में देवगढ़ से लेकर मदनपुर तक फैला हुआ है । ग्रेनाइट एवं दुधिया पत्थरों के यह ऊंचे पर्वत विन्ध्य श्रेणी की एक श्रृंखला है । इसमें देवगढ़ , दुधई, आलापैहट एवं मदनपुर कस्बे हैं । [2]

जलवायु :

इस जनपद की जलवायु गर्म , हल्की गर्मी और तेज सर्दी के रूप में पूरे वर्ष में पाई जाती है । वर्ष के तीन माह तेज सर्दी जो कि दिसम्बर से फरवरी तक होती है । मार्च से मध्य जून तक तेज गर्मी एवं मध्य जून से मानसून सीजन या वर्षा प्रारम्भ होती है जो अक्टूबर , नवम्बर तक चलती है ।[3]

1- सोयल आफ इण्डिया , ले० राम चौधरी पृ० 331-332 .

2- स्टेटिस्टिकल , डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ एन०डब्लू० प्राविंस आफ इण्डिया भाग-1 ले० ई०टी०एटकिन्सन पृ०- 3-4 .

3- झांसी गजेटियर , ई०बी० जोशी , पृ० 9 .

क्षेत्रफल -

जनपद ललितपुर का क्षेत्रफल 1872 ई0 के सर्वेक्षण के अनुसार 1947 वर्ग मील था । जनपद का क्षेत्रफल निम्नलिखित चार्ट के अनुसार था ।-

तहसील	परगना	क्षेत्रफल वर्ग मील
ललितपुर	तालबेहट	283
	बाँसी	149
	ललितपुर	438
	बालाबेहट	190
मेहरौनी	बानपुर	329
	मेहरौनी	153
	महावरा	405
कुल क्षेत्रफल	-	1947 वर्गमील

1951 ई0[2] में जनपद ललितपुर का भौगोलिक क्षेत्रफल 1059 वर्ग मील ,

1961 ई0[3] में 1163. 2 वर्ग मील ,

तथा 1981 ई0[4] में 5039 वर्ग किलोमीटर था ।

1991 ई0[5] में अर्थ एवं संख्याधिकारी के कार्यालय की आख्या के अनुसार इसका क्षेत्रफल 5128 वर्ग किलोमीटर था ।

1- स्टेटिस्टिकल , डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउन्ट आफ एन0डब्लू प्राविंसिज आफ इण्डिया भाग । लेo ई0टी0 एटकिन्सन, पृ0 304-305.
2- झाँसी गजेटियर ,1965, ई0बी0 जोशी , पृ0 367 .
3- वही वही पृ0 367 .
4- अनुक्रमणिका , 1989 जिला सूचना विभाग, ललितपुर पृ0 - 1
5- अर्थ एवं संख्याधिकारी , ललितपुर के कार्यालय की आख्या तालिका संख्या-1 " जनपद एक डुष्टि में " - पृ0 - 1 .

सेटिलमेंट आफिसर एच0डब्लू0 पिम ने 1903 ई0 में [1891ई0 में जनपद ललितपुर झाँसी जनपद में विलय के पश्चात्] जनपद झाँसी एवं ललितपुर सब डिवीज़न की मिट्टी का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया था :- [1]

मिट्टी का वर्गीकरण

झाँसी स्थानीय			ललितपुर सब डिवीज़न		
मिट्टी का वर्ग	क्षेत्र	कुल जोते हुए क्षेत्र का %	मिट्टी का वर्ग	क्षेत्र	कुल जोते हुए क्षेत्र का %
मार	118,718	28.17	तरेता	8,813	2.93
काबर	108,052	25.64	मोटी	72,329	24.06
पडुवा	83,206	19.74	दुमट	108,515	36.11
राकड़ मोटी	39,730	9.43	पतरी	103,914	34.57
राकड़ पतरी	68,455	16.24	तारी [एक फसली]	3,321	1.10
तारी	2,911	0.69	तारी [दो फसली]	2,416	0.80
कछार	371	0.09	तराई [दो फसली]	1,283	0.43
योग	421,463	100.00	योग	300,591	100.00

मिट्टी

इस जनपद में प्रायः दो प्रकार की मिट्टी पायी जाती है - [2]

1- लाल मिट्टी , 2- काली मिट्टी ।

1892 ई0 के सेटिलमेंट रिपोर्ट के अनुसार जनपद में दो तरह की मिट्टी का वर्णन किया गया था।पहलीउपजाऊ मिट्टी एवं दूसरी बंजर या बेकार मिट्टी ।

उपजाऊ किस्म की मिट्टियों में मार,काबर,पडुवा एवं तारी मिट्टियाँ तथा बंजर या बेकार किस्म की मिट्टी में राकड़ मिट्टी बतायी गई थी ।[3]

1-फाइनल सेटिलमेंट रिपोर्ट आन दि डिवीज़न आफ दि झाँसी डिस्ट्रिक्ट इनक्लूडिंग दि ललितपुर सब डिवीज़न, इलाहाबाद,1907: एच0डब्लू0पिम पृ0 5 .
2- सॉयल्स आफ इण्डिया ,पी0 राय चौधरी , पृ0 331-32 .
3[अ] द्वितीय सेटिलमेंट रिपोर्ट , 1892:इम्पे और मेस्टन .
[ब] झाँसी गजेटियर ,1965:ई0बी0 जोशी , पृ0 96-98 .

नदियाँ

इस जनपद की प्रमुख नदियाँ हैं - बेतवा , धसान, शहजाद , जामनी, सजनाम, नारायन, रोहिणी । इनके अतिरिक्त अन्य बरसाती नदियाँ, जो कि बड़े नालों के रूप में हैं , बाँदी, कुकी, कुज ,तरवार, बारूआ आदि हैं । बेतवा, धसान क्रमशः पूर्व ,पश्चिम एवं दक्षिणी सीमा पर बहती हैं । शहजाद, सजनाम एवं जामनी नदियाँ जनपद के मध्य में बहती हैं ।[1] भौगोलिक बनावट के आधार पर जनपद का दक्षिणी भाग उत्तर की अपेक्षा ऊँचा है, जिसके कारण सभी नदियाँ दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हैं ।[2]

बेतवा -

इस नदी का उद्गम भोपाल ताल से है एवं 400 मील की लम्बी यात्रा करके हमीरपुर जिले के पास यमुना में विलीन हो जाती है ।[3] यह नदी जिला ललितपुर में दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर विन्ध्य पर्वत की श्रेणी को काट कर देवगढ़ कस्बे से प्रवेश करती है , तदोपरान्त 60 मील तक मध्य प्रदेश और ललितपुर जनपद की सीमा पर बह कर उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ती है और तीन मील तालबेहट तहसील में बहती है । इसके बाद 8 मील झाँसी -ललितपुर सीमा पर बह कर मध्य प्रदेश में प्रवेश करती है ।[4]

धसान -

भोपाल के सिरमऊ पहाड़ों से इसका उद्गम हुआ है ।[5] यह नदी इस जनपद के दक्षिण में सागर जनपद से आकर बनगुवारा ग्राम (तहसील - महरौनी) से इस जनपद की सीमा को 25 मील तक छूती हुयी पुनः मध्य-प्रदेश में प्रवेश कर जाती है ।[6]

1- झाँसी गजेटियर , 1965, डी0 बी0 जोशी पृ0 4 - 5 .
2- (अ) अनुक्रमणिका प्रकाशन - जिला सूचना विभाग,ललितपुर, 1989, पृ01.
(ब) स्टेटिस्टिकल ,डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ दि एन0डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया ,भाग-1, ई0टी0 एटकिन्सन,पृ0309.
3- बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास,दीवान प्रतिपाल,पृ0 34 .
4- झाँसी गजेटियर , 1965,डी0बी0जोशी,पृ0 4.
5- चन्देल और उनका राजत्वकाल,के0 केशवचन्द्र मिश्र,पृ0 11.
6- झाँसी गजेटियर, 1965,डी0बी0जोशी, पृ0 4.

जामनी -

यह नदी मध्य प्रदेश से आकर मदनपुर ग्राम से इस जनपद में प्रवेश करती है और महरौनी तहसील के दक्षिणी भाग में बह कर उत्तर की ओर बहती है । जनपद ललितपुर और मध्य प्रदेश की सीमा पर बह कर बेतवा में मिल जाती है ।[1]

उपरोक्त नदियों के अतिरिक्त शहजाद एवं सजनाम नदियाँ क्रमशः महरौनी एवं ललितपुर तहसील से मध्य जामनी में मिल जाती हैं ।

पर्वत -

फ्रैंकलिन ने बुन्देलखण्ड के अपने भूगर्भ वर्णन में विन्ध्याचल की पहाड़ियों का वर्णन किया है, जो चित्रकूट, सिन्धु नदी {मध्य प्रदेश} के तटों से प्रारम्भ होकर जनपद ललितपुर होती हुयी कालिंजर तक जाती है ।[2] जनपद ललितपुर में यह श्रेणी दक्षिणी-पश्चिमी सीमा से प्रारम्भ होकर दक्षिणी-पूर्वी सीमा तक जाती है । सर्वेक्षण करने पर जनपद का अधिकतर भाग पहाड़ी ही दिखायी देता है, जो कहीं पर ग्रेनाइट पत्थरों के रूप में तथा कहीं मिट्टी के टीलों के रूप में है । सन् 1892ई० के दूसरे सेटिलमेंट रिपोर्ट में भी सेटिलमेन्ट अधिकारी इम्पे और मेस्टन ने जनपद ललितपुर के विन्ध्य श्रेणी का इसी रूप में वर्णन किया है ।[3]

1- झाँसी गजेटियर, 1965; डी० बी० जोशी, पृ० 6.

2- उत्तर प्रदेश सीमा प्रान्त, भाग-1, ले० फ्रैंकलिन, पृ० 54.

3- सर्वे रिपोर्ट आफ सेकण्ड सेटिलमेन्ट आफ झाँसी डिस्ट्रिक्ट, इलाहाबाद, 1892 : डब्लू० एच० एम० इम्पे तथा जे०एस० मेस्टन, पृ० 12.

जनसंख्या -

जनपद ललितपुर की जनसंख्या 1865 ई0[1] में 2,48,146 थी। 1892 ई0[2] में यहाँ की जनसंख्या कम होकर 2,12,828 रह गयी थी। 1941 ई0[3] में यहाँ की जनसंख्या 1,78,586, 1951 ई0[4] में 1,87,061 थी और 1961 ई0[5] में 2,21,825 थी। 1971 ई0[6] की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 4,36,920 थी। 1981 ई0[7] की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 5,77,648 थी, जिनमें से 3,10,854 पुरुष तथा 2,66,794 स्त्रियाँ थी। 1991 ई0[8] की जनगणना के अनुसार जनपद की कुल जनसंख्या 7,48,997 थी, जिनमें से 4,02,008 पुरुष और 3,46,989 स्त्रियाँ थीं। इस प्रकार जनपद की जनसंख्या में 1971 ई0 के पश्चात् लगातार वृद्धि होती रही है। जनपद ललितपुर में जैनियों की कुल जनसंख्या 1865 ई0 में 11,264 और 1872 ई0 में 6,556 थी।[9] 1991 ई0 की मतदाता सूची के अनुसार इनकी संख्या लगभग 20,000 थी।[10]

1- स्टैटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एवं हिस्टारिकल एकाउन्ट आफ दि एन0 डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया, भाग-1 (बुन्देलखण्ड): ई0टी0 एटकिन्सन, पृ0 304-305.
2- वही वही वही पृ0 304-305.
3- झाँसी गजेटियर, 1965: डी0बी0 जोशी, पृ0 367.
4- वही वही वही पृ0 367.
5- वही वही वही पृ0 367.
6- प्रगति के पथ पर जनपद ललितपुर, 1986 ई0: जिला सूचना विभाग, ललितपुर, पृ0 3.
7- वही वही वही पृ0 3.
8- 1990-91, 1991-92 उत्तर प्रदेश वार्षिकी, सम्पादक रामऔतार प्रसाद, प्रकाशक [illegible], निदेशक सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, तालिका-9, पृ0 12.
9- स्टैटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एवं हिस्टारिकल एकाउन्ट आफ एन0डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया भाग-1, ई0टी0 एटकिन्सन, पृ0 330.
10- व्यक्तिगत साक्षात्कार, 1993 - श्री कुसुमचन्द्र बाजुरिया से, ललितपुर.

भौगोलिक परिस्थितियों का सामाजिक व आर्थिक स्थिति पर असर

किसी भी स्थान का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है । मुख्य रूप से भारत देश का, जो कि मुख्य रूप से कृषि प्रधान देश है , यहाँ का आर्थिक एवं सामाजिक विकास पूर्ण रूप से वर्षा पर आधारित है । इस कारण यहाँ की कृषि जो कि पूर्ण रूप से वर्षा पर आधारित " वर्षा का जुआ " कहा जाता है ।

इसी प्रकार इस जनपद का सामाजिक एवं आर्थिक भविष्य वर्षा एवं यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है । यह जनपद कर्क रेखा के उत्तर में पड़ता है और इसका अधिकांश भाग समशीतोष्ण कटिबन्ध में पड़ता है। वर्षा का औसत 34.64" है ।

उपरोक्त भौगोलिक परिस्थितियों पर यहाँ का आर्थिक ढाँचा टिका हुआ है । यहाँ पर जो नदियाँ बहती हैं अथवा जो बरसाती नाले हैं , वह अधिकांश गर्मियों में सूख जाते हैं । बेतवा एवं धसान को छोड़ कर बाकी नदियों का जल-स्तर भी न के बराबर हो जाता है । बेतवा ,धसान भी पठारी भाग में बहने के कारण एवं ग्रीष्म ऋतु में जगह-जगह झीलों में परिवर्तित हो जाती हैं । अगर जून से वर्षा आरम्भ नहीं होती है तो यह पानी भी सूख जाता है । इस कारण उनकी फसल एवं जानवरों का चारा आदि पूर्ण रूप से दया पर निर्भर रह जाता है । इसलिये यहाँ की खेती एवं व्यापार पूर्ण रूप से दया पर ही निर्भर है ।

पठारी भाग जो कि छोटे और बड़े टीलों या पर्वत का रूप में हैं , उन पर कटीदार झाड़ियाँ तथा बबूल आदि के पेड़ भी इस वर्षा के कारण उग आते हैं जिससे जलाऊ लकड़ी एवं इमारती लकड़ी मिलती है । लाल एवं पीली मिट्टी भवन निर्माण में काम आती है । ग्रेनाइट पत्थर एवं भवन निर्माण के लिये उपयोगी पत्थर भी विन्ध्य श्रेणी एवं स्थान स्थान पर छोटी पहाड़ियों से प्राप्त होती है । इसके अतिरिक्त यहाँ के वनों से कत्था, शहद आदि भी प्राप्त होता है जो कि यहाँ की आर्थिक कड़ी है ।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यहाँ की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों से पूर्ण रूप से प्रभावित है ।

======== X =========

अध्याय - 2

जनपद ललितपुर की सामाजिक , आर्थिक दशा और जैन मंदिर निर्माण में इनकी पृष्ठभूमि ।

सामाजिक दशा -

हिन्दू समाज में अतीतकाल से जाति प्रथा की अपनी निज की विशेषता है । समस्त हिन्दू समाज चार वर्णों में विभक्त था § ब्राह्मण, क्षत्रिय , वैश्य और शूद्र § किन्तु मेगस्थनीज तथा स्ट्रेवो प्रभृति ग्रीक लेखकों तथा इब्न खुर्दाद तथाअल - इदरीस प्रभृत मुस्लिम इतिहासकारों का मत है कि हिन्दू समाज में निम्न सात वर्ग थे ।[1] §1§ सब-कुफ्रिया, §2§ ब्रह्म , §3§ कत्रिय, §4§ सुद्रिय §5§ वैसुरा , §6§ सन्दालिय §7§ लहूद । इन लेखकों द्वारा दिए गये विवरणों से स्पष्ट है कि ब्रह्म , सुद्रिय , वैसुरा , तथा सन्दालिया क्रमशः ब्राह्मण, शूद्र , वैश्य तथा चाण्डाल ही हैं ।[2] सब-कुफ्रिया का आशय संभवतः सत् क्षत्रिय से है ।[3] शासक वर्ग के लोग इस जाति में सम्मिलित थे और वे सभी शेष जातियों से श्रेष्ठ समझे जाते थे । अलबरूनी ने अपने वृतान्त में 16 जातियों का उल्लेख किया है ।[4] हिन्दू चार प्रमुख वर्णों के अतिरिक्त उसने 8 स्वर्य §धोबी, चर्मकार, बाजीगर, टुवकार, लोहार, मल्लाह, शिकारी §व्याध§ तथा कोरी§ तथा चार अस्पर्श्य §हाड़ी , डोम्ब, चाण्डाल, तथा बधतऊ§ जातियों का निर्देश किया है ।[4] किन्तु उस युग में 16 से भी अधिक जातियां थीं ,क्योंकि समाज क्रमशः प्रगतिशील था । कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में 64 जातियों का उल्लेख किया है ।[5] जातियों की यह बढ़ती हुई संख्या आश्चर्यजनक

1- हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन,भाग-1 इलियट तथा डाउसन ,पृ0 16-17, 76 .
2- वही वही वही पृ0- 76
3- दी राष्ट्रकूट्स एण्ड देयर टाइम्स ले0 ए0एस0 आल्टेकर §पूना 1934§ पृ0-319.
4- किताबुल हिन्द §§अलबरूनी§§ - अनुवाद डॉ0सी0 सचाउ ,भाग-1 §लन्दन 1914§पृ0-101.
5- राजतरंगिणी कल्हण- स्टीन द्वारा सम्पादित व अनुदित§बाम्बे संस्करण 1892§ श्लोक 2407 .

नहीं है क्यों कि हिन्दू समाज के नियम दिन प्रतिदिन कड़े होते जा रहे थे। अपने व्यवसायी वर्ग में सजातीय सहभोज तथा सजातीय विवाह ही उत्तम समझे जाते थे। इन्हीं व्यवसायिक वर्गों ने कालान्तर में उप-जातियों का रूप धारण कर लिया था। व्यापारिक श्रेणियों का निर्माण हो चुका था जिनका निर्देश जातियों अथवा उप-जातियों के रूप में होता था। चन्देल शिलालेखों में रूपकार, स्वर्णकार, लौहकार, शिल्पकार आदि का वर्णन है जिन्होंने बाद में उप-जातियों का रूप धारण कर लिया। उस युग में कायस्थ वर्ग का समाज में विशेष आदर था। चन्देल युग में अनेक कायस्थ मंत्री तथा सेनापति हुए जिनका उल्लेख शिलालेखों में भी है।[1]

निस्सन्देह हिन्दू समाज की रूढ़िवादिता के कारण अनेक उप-जातियों का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु यह सभी उप-जातियाँ चार प्रमुख वर्गों से सम्बन्धित थीं, जिन पर समस्त हिन्दू समाज अवलम्बित था।

विदेशियों द्वारा वर्णित तत्कालीन सामाजिक दशा ऐसी ही थी और निश्चय ही ललितपुर में भी अधिकांशतः उपरोक्त जातियाँ ही रहती थीं, जैसा कि चन्देल लेखों में भी उल्लेख है।[2]

मन्दिरों की भीतियों, मूर्ति खण्डों और शिला पट्टों पर अंकित सामाजिक और सांस्कृतिक दृश्यों तथा अभिलेखीय उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि जनपद ललितपुर में गुप्तकाल से ही जैन धर्म का प्रभाव अधिक था जिसके आधार पर जनपद का समाज विभिन्न धर्मों और उप-जातियों में भी विभक्त था। 1203 ई० के लगभग देवगढ़ पाली में देवपत और खेवपत नामक दो भाइयों ने एक महान जैन महोत्सव आयोजित कराया था।[3] उसी समय मुहम्मद गौरी की सेना से बचकर भागे हुए कुछ क्षत्री यहाँ आ पहुँचे। यह दिल्ली के आसपास रहने वाले "रत्नगिरे"

1- [अ] ऐपिग्राफिया इण्डिका भाग-1 पृ० - 195.
   [ब] चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ-180.
2- चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ०-175.
3- देवगढ़ की जैन कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन ले० डा० भागचन्द्र जैन पृ० -131.

क्षत्रिय थे । वे जैन धर्म स्वीकार करके उस महोत्सव में सम्मिलित हो गये । इसी अवसर पर उन्हें कठनेरा[1] के नाम से घोषित किया गया , एवं उसी समय उन्हें साढ़े बारह गोत्रों में विभाजित किया गया -

1- सिंघई आरत्या, 2- सिंघई दीपरिया, 3- सेठ पुषेरे , 4- सेठ टीकेत , 5- साह खिलौआ , 6- भण्डारी , 7- नायक , 8- चौंडर , 9- बाररथ्या, 10- सिमिया , 11- काड़ेले , 12- रखड़्या , ½ - निगोत्या । इनके वंशज आज भी विद्यमान हैं और वे अपने को श्री कुन्दकुन्दाम्नायी मूलसंघी तथा सरस्वतीगच्छ से सम्बन्धित मानते हैं ।[2]

संवत् 1481 के एक अभिलेख[3] में अगोतक वंश का उल्लेख है , जिससे वर्तमान अग्रवाल समाज अपना सम्बन्ध स्थापित करता है । इसी अभिलेख में गर्ग नामक गोत्र का भी उल्लेख है । देवगढ़ के संवत् 1493 के एक अभिलेख[4] में अष्टसाख नामक वंश का उल्लेख मिलता है । यह अष्टसाख वर्तमान जाति में प्रचलित "अठसखा" ही है । संवत् 1693 के एक अभिलेख[5] में "गोलापूर्व" नामक उप-जाति का भी उल्लेख मिला है । इस प्रकार ललितपुर का समाज विभिन्न वंशों , गोत्रों और उपजातियों का समष्टिगत रूप था ।

कालांतर में मुस्लिम शासनकाल में मुसलमान और अंग्रेजी शासनकाल में ईसाई भी यहाँ के समाज के अंग बन गये थे ।

1- इन्हें जैन संघ में सम्मिलित करते समय यह शर्त रखी गई थी कि उक्त महायज्ञ के समय उपस्थित समाज को वह लोग काष्ठ (ईंधन) के बिना भोजन तैयार कर पंक्ति भोज दें । उन लोगों ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया था और अपने बहुमूल्य वस्त्रों आदि को घी-तेल में भिगो 2 कर उन्हें जला कर भोजन तैयार कर उक्त महायज्ञ में आगत समस्त समाज को पंक्ति भोज दिया था । यह एक कठिन कार्य था । अतः उपस्थित समाज ने उनके साहस और निष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उनके कार्य के अनुरूप सभी ने उनका नाम कठनेरा निर्धारित किया ।-पुष्पांजलिकल्याणक वि[illegible] हरिकृष्ण कवि : भूमिका पृ0-3 ,7 ।
2- पुष्पांजलिकल्याणक विधान : हरिकृष्ण कवि: भूमिका पृ0-7 .
3- राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित 6 फिट 2 इंच और 2 फुट 9 इंच के एक शि[illegible] फलक पर उत्कीर्ण ,देवगढ़ से प्राप्त अभिलेख का 32वाँ अनुच्छेद- दे0 परिशिष्ट । क्रमांक -1 .
4- देवगढ़ के जैन धर्मशाला में सुरक्षित अभिलेख -परिशिष्ट । क्रमांक 2 .
5- मंदिर सं0 7 की चरण पादुका पर उत्कीर्ण अभिलेख -परिशिष्ट । क्रमांक-3.

जनपद ललितपुर के समाज का वर्गगत विभाजन प्रायः आज की ही भाँति प्राचीनकाल और मध्यकाल में भी था । यहाँ कुछ लोग उच्च वर्ग के थे और कुछ निम्न वर्ग के थे । यहाँ उच्च वर्गीय समाज अच्छी झाँकी मिलती है लेकिन निम्नवर्गीय समाज का अंकन बहुत कम हुआ है । उच्च वर्ग के लोग बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे , सोने और रत्नों के आभूषण धारण करते थे, साधुओं और तीर्थंकरों की उपासना में समय व्यतीत करते थे और संगीत तथा नृत्य में गहरी रुचि रखते थे । उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी सौन्दर्य की महत्ता समझती थीं और सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग करती थीं । इसके लिये वे दर्पण आदि की सहायता भी लेती थीं । उदाहरण के लिए देवगढ़ के मंदिर सं0 11 की दूसरी मंजिल पर महामंडप के द्वार पक्ष [बायें] पर एक दर्पणधारिणी शुचि स्मिता का आकर्षक अंकन है । [दे० चित्र सं० 96] वह अपने बायें हाथ में दर्पण लिये है और दायें से ओष्ठ को प्रसाधित करती प्रतीत होती है । यहीं के मन्दिर सं0 18 के महामंडप के प्रवेश द्वार पर दर्पण के सहारे अपनी ललाटिका को व्यवस्थित करती हुई एक सुन्दरी का सुन्दर अंकन है । [दे० चित्र सं० 97] निम्नवर्ग की स्त्रियाँ यो अपेक्षाकृत कम सुसज्जित दिखाई देती थीं, उनके साथ परिचारिकाओं आदि के रूप में रहा करती थीं । निम्न वर्ग के पुरुष भी उच्च वर्ग के पुरुषों की परिचर्या और वाहनों की व्यवस्था आदि करते थे ।[1]

<u>चतुर्विध संघ</u> - जनपद के समाज को चतुर्विध संघ [साधु ,साधुनियाँ, श्रावक, श्राविकायें] के रूप में विभाजित करना उपयुक्त होगा -

साधु - प्रथम वर्ग साधुओं का था । यह लोग पंच-परमेष्ठियों में से अन्तिम तीन परमेष्ठी माने जाते रहे हैं । प्रथम दो परमेष्ठी अरिहन्त और सिद्ध थे । आचार्य तीसरे परमेष्ठी थे । ये सम्पूर्ण साधु संघ के संचालक होते थे । चौथे परमेष्ठी उपाध्याय कहलाते थे जिनका कार्य साधुओं और साधुनियों को नियमित रूप से तथा श्रावक -श्राविकाओं को समय 2 पर शिक्षा देना था । साधुवर्ग पाँचवें परमेष्ठी थे । यह तीसरे और चौथे परमेष्ठियों की विनय आदि तो करते ही थे ,स्वाध्याय और तपश्चर्या आदि में भी संलग्न रहते थे । वे स्थान 2 पर भ्रमण करके श्रावक-श्राविकाओं को धर्मोपदेश भी देते थे ।कुछ घोर तपस्वी साधु भी रहते थे ।[2]

1- देवगढ़ की जैन कला : डा0 भागचन्द्र जैन पृ0 -129 .
2- वही वही पृ0 -130 .

साधुनियाँ - साधुनियाँ भी स्वाध्याय और तपश्चर्या में मग्न रहती थीं । वे पाठशालाओं में भी उपस्थित होती थीं । कुछ साधुनियाँ मूर्तियाँ भी बनवाती थीं । साधुनियाँ श्रावक-श्राविकाओं को उपदेश भी देती थीं तथा वरिष्ठ साधुनियाँ कनिष्ठ साधुनियों पर कड़ी नज़र भी रखती थीं । जैन धर्म के उत्थान में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का योगदान अधिक रहा था । वर्तमान काल में भी धार्मिक अभिरुचि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में ही अधिक दिखाई पड़ती है ।[1]

श्रावक-श्राविकायें - श्रावक भी कर्तव्य पालन और धर्माचरण में रत रहते थे जो श्रावक साधु अवस्था धारण करने में असमर्थ होते थे वे उत्कृष्ट श्रावक अर्थात् ऐलक का पद स्वीकार करते थे । अतिथियों का सत्कार करते थे । तीर्थंकर की मूर्तियों के समक्ष नृत्य और गीत के कार्यक्रमों में श्रावक-श्राविकायें दोनों समान रूप से भाग लेते थे । वे पाठशालाओं में जा कर शिक्षा भी ग्रहण करते थे ।[2]

धर्मपरायणता भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता रही है। अहिंसा, सत्य , अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह -परिमाण धर्म के ही विभिन्न रूप हैं। ये रूप व्यक्ति की सामर्थ्य और परिस्थितियों की अनुकूलता -प्रतिकूलता के अनुसार कभी अत्यंत सूक्ष्म और कभी अत्यंत विशाल आकार में दीख पड़ते हैं । जहाँ तक जनपद ललितपुर के समाज का प्रश्न है ,यहाँ धर्म के प्रायः सभी रूप लघुतम से महत्तम तक आकार में दिखाई पड़ते हैं । साधु की वन्दना करने वालों से लेकर सतत प्रचण्ड तपश्चर्या करने वाले साधु तक का जीवन यहाँ मन्दिरों में अंकित किया गया है । साधुओं और अतिथियों आहार आदि से सत्कार करने वाले सद्गृहस्थ तो यहाँ थे ही साथ ही साधुओं के चरण संवाहन करने वाले भक्त भी थे ।[3]

देवी-देवताओं की उपासना को हम धर्म की सीमाओं में बाँधें या न बाँधें पर उसका प्रचार जनपद ललितपुर में बहुत रहा है । सैकड़ों की संख्या में प्राप्त उनकी मूर्तियाँ प्रमाणित करती हैं कि जनपद का समाज चमत्कार को नमस्कार करता था और धीरे 2 आध्यात्मिकता से भौतिकता की ओर झुकता जा रहा था । जैन धर्म में भट्टारकों ने धर्म के नाम पर ऐहिक सुखों की प्राप्ति के सीधे सहाने सारेल निकाले । उन्होंने विभिन्न देवी-देवताओं और मंत्र-तंत्र

1- देवगढ़ की जैन कला डॉ० भागचन्द्र जैन पृ० 130 .
2- वही वही पृ० 130-131 .
3- वही वही पृ० 131-132.

आदि की कल्पित कथाओं और चमत्कारों द्वारा समाज को मोहित कर लिया । उनकी यह मोहनशक्ति गुप्तोत्तर काल से क्षुद्र से क्षुद्रतर होती गयी और मुगल काल के समाप्त होते होते क्षीण हो चली । यहां भट्टारकों की एक सशक्त परम्परा शताब्दियों तक विद्यमान रही जिसने यहां के समाज की तथा कथित धर्म-परायणता को अक्षुण्ण बनाये रखने में सराहनीय योगदान दिया ।[1]

स्त्रियों की दशा - चन्देल युग में स्त्रियों को वे सभी सुविधायें प्राप्त न थी जो उन्हें पूर्ववर्तीकाल में प्राप्त थीं । फिर भी उनकी दशा अच्छी थी । कुछ प्रतिबन्धों तथा कुप्रथाओं का प्रचार प्रारंभ हो गया था।

[अ] बाल विवाह - बाल विवाह की प्रथा चल पड़ी थी । इसकी पुष्टि अलबरूनी से भी मिलती है उनका कथन है कि छोटी आयु होने के कारण वैवाहिक संबंध बच्चों के पिता तथा अभिभावक तय करते है ।[2] कोई ब्राह्मण द्वादश वर्ष से अधिक आयु वाली कन्या से विवाह न कर सकता था ।[3] इस प्रकार रजस्वला पूर्व विवाह की प्रथा कम से कम ब्राह्मणों में चल पड़ी थी, यद्यपि रजस्वलोत्तर विवाह भी समाज में पाये जाते है ।

[ब] अन्तर्जातीय विवाह - इसका समादर नहीं होता था । सवर्ण विवाहों की ही सर्वत्र प्रतिष्ठा थी । अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह भी होते है किन्तु उनका समाज में आदर न था ।[4]

[स] विधवापन तथा सती - निष्ठावान आर्य महिला की समस्त आशाओं का केन्द्र बिन्दु उसका पति ही माना जाता था । पति की मृत्यु हो जाने पर विधवाओं का जीवन बड़ा कठोर हो जाता था । उन्हें जीवन के सभी साज श्रृंगार तथा सुखों से विरक्त होना पड़ता था और सदा ही सांसारिक सुखों की उपेक्षा करनी पड़ती थी ।[5]

1- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 132 .
2- हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स : भाग 2
ले0 इलियट तथा डाउसन पृ0 154 ,
3- वही वही वही पृ0 131 .
4- चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास ले0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय पृ0-180 .
5- वही वही वही पृ0-184 .

सुलेमान सौदागर के वृत्तान्त से प्रतीत होता है कि सम्भवतः सती प्रथा का विशेष प्रचार न था । उसका कथन है कि कभी 2 राजा की चिता में उसकी रानियाँ कूद कर अपने प्राण विसर्जित करती थीं , किन्तु ऐसा करना अथवा न करना उनकी इच्छा पर निर्भर था ।[1] अलबरूनी इस कथन का खण्डन करता है उसका कथन है कि रानियाँ चाहें अथवा न चाहें उन्हें सती होना पड़ता था ।[2] डा० अल्तेकर का कहना है कि सती प्रथा केवल राजवंशों तक ही सीमित थी , उसका प्रचार जन साधारण में न था ।[3] इससे स्पष्ट है कि सती प्रथा का विशेष प्रचार उस युग में न था ।

[द] <u>पर्दा प्रथा</u> - हर्ष के समय कोई पर्दा न था ।[4] किन्तु थोड़े दिनों पश्चात पर्दा प्रथा का प्रारंभ हुआ । यह प्रथा केवल कुछ राजवंशों तक ही सीमित रही । हिन्दू सामंत तथा सरदार अपने रनिवास में भी इस प्रथा का पालन करने लगे ।[5]

मुस्लिम शासनकाल में स्त्रियों की स्थिति हीन से हीनतर हो गयी थी । कन्या जन्म ही अशुभ माना जाने लगा था । उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गयी थी उन्हें अविवाहित रूप में पिता के , विवाहित रूप में पति के और विधवा के रूप में ज्येष्ठ पुत्र के कठिन नियंत्रण में रहना पड़ता था । उनकी शिक्षा के लिए भी कोई सर्वमान्य सार्वजनिक व्यवस्था नहीं थी । बाल विवाह , बहु विवाह , विधवा विवाह का प्रचलन न होना , उत्तराधिकार प्राप्त न होना , सती प्रथा, पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाओं का काफी विकास हो गया था ।[6]

<u>दास प्रथा</u> - मुस्लिम शासनकाल में दास प्रथा का भी काफी विकास हुआ था । लेकिन उनकी स्थिति पाश्चात्य देशों से काफी अच्छी थी । [7]

1- हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाई ओन हिस्टोरियन भाग-1 ले० इलियट तथा डाउसन , पृ० -1[illegible] .
2- वही वही वही भाग-2 पृ०-155 .
3- दि राष्ट्रकूटस एण्ड देयर टाइम्स ले० ए०एस० अल्तेकर, पृ०-344 .
4- हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन भाग-1 ले० इलियट तथा डाउसन, पृ०-11 .
5- दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन,ले०ए०एस०अल्तेकर,पृ०-203-206.
6- भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास,ले० बी०एन०लूनिया, पृ०-276 .
7- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास,ले० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ०-432 .

खान-पान - साधारणतया ब्राह्मण किसी भी पशु का मांस न खाते थे, यद्यपि ऐसा कोई प्रतिबंध न था। ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य सभी के लिए श्राद्ध तथा यज्ञों के अतिरिक्त पशु वध तथा मांस सेवन का निषेध था। वैष्णव धर्म के प्रचार से लोगों ने मांस सेवन बंद कर दिया था। शूद्रों में भी कुछ लोग थे जो मांस का स्पर्श तक न करते थे और मांस त्याग को धार्मिक विशेषता समझते थे।[1]

ब्राह्मणों ने सभी प्रकार के मादक पेयों का परित्याग कर दिया था, अधिकांशतः क्षत्रिय और विशेषतः राज वंश के लोग मदिरा पान नहीं करते थे। सम्भवतः बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण वैश्य भी अधिक मद्यपान नहीं करते थे, किन्तु शूद्रों के लिए ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं था।[2]

मुस्लिम शासन काल में उपरोक्त मान्यतायें समाप्त हो गयीं। मांसाहार तथा मादक पेयों का प्रचार-प्रभाव बढ़ गया था।[3] शराब, भांग, अफीम और तम्बाकू (जहांगीर के शासनकाल से) आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग होता था।[4]

वस्त्र - आभूषण -

1- साधु संस्था के वस्त्राभूषण -

(अ) दिगम्बर साधु - दिगम्बर साधु कोई वस्त्र नहीं पहनते थे। "दिक्" (दिशायें) ही उनके "अम्बर" (वस्त्र) होते थे[5], इसलिये उन्हें दिगम्बर[6] साधु कहा जाता था। जैन साधुओं के दिगम्बर रहने की ~~xxxxx~~ प्रथा हजारों वर्ष प्राचीन है और आज भी विद्यमान है। दिगम्बर साधु जीवों की रक्षा के लिये पीछी (मोरपंखी) रखते थे। मल-मूत्र त्याग के पश्चात् शुद्धि के लिए जल रखने को वे कमण्डलु भी रखते थे। यह साधु उक्त दो उपकरणों के अतिरिक्त रंच मात्र भी परिग्रह नहीं रखते थे। यहां तक कि वे अपने भोजन के प्रति भी चिंतित नहीं होते थे।

1- चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, ले० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, पृ०-181.
~~2~~- हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र : भाग-3, ले० आर०वी० काणे, पृ० 780.
2- चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, ले०अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, पृ०-181.
3- भारतीय संस्कृति, सभ्यता का इतिहास ले०लूनिया, पृ० 307.
4- मुगलकालीन भारत, ले० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ० 534.
5- बृहद् जैन शब्दार्णव : द्वितीय खण्ड, ले० ब्र० शीतलप्रसाद, पृ० 492-93.
6- 'नग्नो वासा दिगम्बरे' अमरकोष, 3-1-39.

{ब} भट्टारक - भट्टारक मुनियों का एक रूपान्तर ही थे । ये दो वस्त्र पहनते थे । एक अधोवस्त्र {धोती} और दूसरा उत्तरीय {दुपट्टा }।उनके गले में एक माला भी पड़ी रहती थी जिससे वे जप-माला का काम लेते होंगे ।[1]

{स} ऐलक - ऐलक केवल कोपीन {लंगोटी} पहनते थे[2] और साधु की भाँति पीछी और कमण्डलु रखते थे ।[3]

{क्षुल्लक- क्षुल्लक कोपीन के अतिरिक्त खण्ड-वस्त्र {उत्तरीय} भी पहनते थे । वे पीछी -कमण्डलु भी रखते थे ।[4]

{य} आर्यिका - आर्यिकाओं की वेष-भूषा संयत और सामान्य थी । साड़ी और उपरि-वस्त्र के अतिरिक्त पीछी-कमण्डलु भी रखती थीं ।[5]

{2} गृहस्थ-संस्था के वस्त्राभूषण -

{अ} पुरुष - हिन्दू पुरुष वर्ग धोती पहनता था तथा कन्धे पर सफेद चादर रखता था । धनी वर्ग के लोग शरीर को ढकने के लिए जामा, पेशवाज, अंगरखे ,कबड़ी और दगला का प्रयोग करते थे । मुसलमान सलवार या पायजामा और कमीज़ पहनते थे । वे कन्धों पर शाल रखते थे । कुछ ब्रह्मचारी तनीदार दोहरी छाती की अंगरखी पहनते थे । कुछ पुरुष सिर पर पगड़ी बाँधते थे और कुछ तुर्की टोपी लगाते थे ।[6]

जनेऊ {यज्ञोपवीत} पहनने का रिवाज था । कुछ मुल्लों जैसी दाढ़ी रखते थे । पुरुष प्रायः वे ही आभूषण धारण करते थे जो स्त्रियाँ धारण करती थीं । कानों में बाली ,कुण्डल, कर्णोत्पल, कर्णिका तथा गले में विभिन्न

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 135 .
2- वृहद जैनशब्दार्णव - द्वितीय खण्ड ,ले0 ब्र0शीतल प्रसाद ,पृ0 -407 .
3- वसुनन्दि श्रावकाचार्य , ले0 आचार्य वसुनन्दि ,भूमिका ,पृ0- 63-64 तथा गाथा - 311 .
4- {अ} वृहद जैनशब्दार्णव द्वितीय खण्ड ,ले0 ब्र0शीतलप्रसाद ,पृ0-434 .
{ब} वसुनन्दि श्रावकाचार्य ,ले0 आचार्य वसुनन्दि भूमिका पृ0-62-63,गाथा302-10
5- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 135 .
6- वही वही पृ0 135-36 .

प्रकार के हार पहनते थे , कमर में सोने या चाँदी की जंजीर ,हाथों में कंगन भी पहनते थे । ललाट पर तिलक लगाने का प्रचलन था । देव तथा संभ्रान्त वर्ग के लोग मस्तक पर मुकुट बांधते थे ।[1]

§ब§ स्त्री-वर्ग - यहाँ स्त्रियाँ अधोवस्त्र के रूप में साड़ी पहनती थीं ,कुछ स्त्रियाँ साड़ी के छोर से सिर ढकती थीं ,लेकिन कुछ उसे एक विशेष ढंग से कमर के नीचे ही लपेटती थीं । स्त्रियाँ लंहगा,धोती और अँगिया पहनती थीं । उत्तरीय प्रायः सभी स्त्रियाँ रखाती थीं जिसका उद्देश्य कमर से ऊपर का भाग ढंकने का रहा होगा ।[2] मुस्लिम स्त्रियाँ पायजामा और कुर्ता पहनती थीं ।[3] कुछ स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति अपने सिर पर टोपियाँ लगाती थीं । यह टोपियाँ दो प्रकार की थीं पहली तुर्की टोपी के समान और दूसरी वर्तमान सैनिक टोपी के समान । कुछ स्त्रियाँ अपने ललाट पर तिलक भी लगाती थीं ।[4]

स्त्रियाँ केश सज्जा में बहुत निपुण थीं । उनके जूड़े अनेक आकर्षक शैलियों में बंधे होते थे । चोटी गूंथने के लिये दर्पण का प्रयोग करती थीं । सिन्दूर के अतिरिक्त पुष्पों से भी स्त्रियाँ अपने बालों का श्रृंगार करती थीं । देवगढ़ के कुछ उत्तरवर्ती मूर्तियों के सीमान्त में मारवाड़ी बोरला -जैसा कोई आभूषण यदा-कदा दिखा जाता है । कभी-कभी ललाटिका भी पहनी जाती थी । साम्राज्ञी ,देवी जैसी महत्त्वपूर्ण स्त्रियाँ मुकुट बाँधती थीं । कानों में कुण्डल और कर्णफूल पहने जाते थे । हार और अर्द्ध-हार पहने जाते थे । कुछ स्त्रियाँ कण्ठी §हंसुली§ भी पहनती थीं । स्तनहार पहनने की परम्परा भी थी। इसके मध्य से मोतियों की एक लड़ी स्तनों के बीच से होती हुई नाभि पर्यन्त लटकती थी । मोहनमाला का यहाँ पर्याप्त प्रचार था । बाजूबन्द §केयूर§ प्रायः सभी स्त्रियाँ पहनती थीं । हाथों में चूड़ियाँ एक-दो से लेकर बीस-बीस तक पहनी जाती थीं । कंगन भी पहने जाते थे । कमर के घुंघरू , गोखरू ,झबुआ

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन , पृ० -136 .
2- वही वही पृ०-136 .
3- मुगलकालीन भारत ,ले० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव , पृ०-535 .
4- देवगढ़ की जैन कला ले० भाग चन्द्र जैन , पृ० - 136 .

आदि पहनने का पर्याप्त प्रचलन था । आरसी और अंगुठियाँ पहनने का भी प्रचार बहुत अधिक था । यहाँ की सभी स्त्रियाँ कटि-सूत्र तथा मेखला धारण करती थीं । ये कभी-कभी बहुत चौड़ी होती थीं तथा इनमें झालर और घुंघरू भी लटके होते थे । पैरों में पायजेब और पायल पहने जाते थे । पाँव-पोश पहनने की भी प्रथा थी ।[1]

मनोरंजन -

जनपद ललितपुर के सामाजिक प्राणी खेल-कूद के बहुत शौकीन थे । शतरंज, चौपड़, शिकार, घुड़ दौड़, पशु-पक्षी युद्ध, कुश्ती, जादूगर के खेल, नौका विहार आदि मुख्य मनोरंजन के साधन थे । मुगल-काल से ताश का खेल भी प्रचलित हुआ ।[2]

सार्वजनिक मेले तथा उत्सवों में मित्र तथा संबंधी परस्पर मिल-जुल कर दैनिक जीवन की नीरसता को भुला कर आनन्दोत्सव मनाते थे । हिन्दुओं के मुख्य त्योहार- रक्षाबन्धन, दशहरा, दीवाली और होली, जन्माष्टमी, बसन्त पंचमी, मनोरंजन के अच्छे साधन थे । मुस्लिम शासनकाल से मुस्लिम त्योहार-ईद, शब-ए-रात, बारा-वफात भी मनोरंजन के साधन बन गए ।[3] समय समय पर आयोजित धार्मिक अनुष्ठान और सामाजिक समारोह मनोरंजन की अच्छी सामग्री जुटा देते थे ।[4] ऐसे धार्मिक अनुष्ठान और समारोह देवगढ़, चाँदपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सेरोन जी, ललितपुर आदि स्थानों पर मंदिर प्रतिष्ठायें और पंचकल्याणक महोत्सव, गजरथ महोत्सव मेला चातुर्मास आदि पर्वों में आयोजित होते रहे हैं ।

संगीत, नृत्य और गायन-वादन में यहाँ के समाज की विशेष अभिरुचि थी । शिलापट्टों, तोरणों, द्वारपक्षों और स्तम्भों आदि पर अनेक मण्डलियों के दृश्य अंकित हुए हैं । इनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि संगीत कला का उपयोग न केवल आमोद-प्रमोद के लिये ही होता था अपितु भक्ति प्रदर्शन और हर्षोल्लास के अवसरों पर भी इसका सफल आयोजन किया जाता था ।

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0-136-37.
2- मुगल कालीन भारत, ले0 आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, पृ0-534-35.
3- वही वही पृ0 535.
4- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 137-38.

संगीत मण्डलियों में पुरुष और स्त्रियां समान रूप से भाग लेती थीं । कभी स्त्रियां नृत्य करती थीं तो पुरुष साथ देते थे और कभी पुरुष नृत्य करते थे तो स्त्रियां उनका साथ देती थीं । संगीत की लय में डोले हुये स्त्री-पुरुष निश्चित ही दर्शकों को मन्त्र-मुग्ध बना देते थे । नृत्यकार पैरों में घुंघरू बांधते थे और हाथों को विभिन्न मुद्राओं में संचालित करते थे । झांझ,मंजीरा, मृदंग, ढोलक, बेणु, वीणा ,एकतारा, मुरली ,तमोरा ,घंटा, शंख आदि मुख्य वाद्य होते थे । कुछ स्त्रियां और पुरुष हाथ से भी ताल देते थे ।[1]

शिक्षा - प्राचीन भारत में ऐहिक चिन्तन की अपेक्षा तत्व ज्ञान तथा पारलौकिक चिन्तन की ओर अधिक प्रवृत्ति थी । वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों की व्यवस्था कर प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्रयत्न किया था कि जीवन का अधिकांश उच्च तत्व-ज्ञान के चिन्तन में व्यतीत हो । इसके लिये प्रकृति के क्रीडा-स्थल,वन-उपवन चुने गये । इन स्थानों पर ऋषि-मुनियों के आश्रमों की स्थापना हुई जो शिक्षा तथा धर्म के केन्द्र बने । आश्रमों की स्थापना वन-उपवनों के अतिरिक्त नदियों के किनारे और नगरों के निकट भी होने लगी थी । यह तपोवन या आश्रम धीरे 2 शिक्षा के केन्द्र बने । वैदिक आश्रमों के अनुरूप जैनों ने भी अपने विहार ,मठ और मंदिर बनवाये जिन में उन्होंने अपने धर्मों की शिक्षा की व्यवस्था की ।[2] कुछ पाठ-शालायें वृक्षों के नीचे भी लगती थीं । प्रकृति के निश्छल गोद में अध्ययनरत छात्र और अध्यापन में मग्न आचार्य के अंकन गुरुकुल पद्धति का सुखद स्मरण कराते हैं।[3] मुस्लिम शासनकाल में जहां मस्जिद और मकतब भी शिक्षा के केन्द्र थे ,अंग्रेजी शासनकाल में स्कूल-कालेज शिक्षा के केन्द्र बने लेकिन 1861 ई0 तक केवल तहसील स्तर तक अर्थात ललितपुर ,मेहरौनी और महावरा में केवल प्राइमरी स्तर तक ही स्कूल थे ।[4]

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0-138 .
2- प्राचीन भारत के तपोवन, ले0 कृष्णदत्त वाजपेयी : काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका ,वि0 संवत् 2005, वर्ष 53 , अंक 3-4 , पृ0 -236 .
3- देवगढ़ की जैन कला ,ले0भाग चन्द्र जैन, पृ0-132-33 .
4- झांसी गजेटियर ,1909: डी0एल0 ड्रेक ब्रोकमेन ,पृ0 174 .

जनपद ललितपुर में देवगढ़, चाँदपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सेरोनजी, और ललितपुर में शिक्षा का प्रसार अधिक था, यहाँ शिक्षा का कार्य प्रायः साधु वर्ग द्वारा सम्पन्न होता था। उनकी कुछ कक्षाओं में केवल साधु, कुछ में साधु और साधुनियाँ तथा कुछ में साधु साधुनियों के साथ श्रावक-श्राविकायें भी सम्मिलित होतीं थीं। अल्पायु के बालक तो शिक्षा पाते ही थे वयोवृद्ध ब्रह्मचारी और पंडित भी कक्षाओं में सम्मिलित होते थे, छात्राओं को शिक्षा देने का कार्य विदुषी महिलाओं द्वारा सम्पन्न होता था।[1] प्राचीन भारत में उन्हें उपाध्यायिनी, और उपाध्याया कहा जाता था।[2] शिक्षा देने वाले उपाध्याय परिमेष्ठी ही होते थे वे सैद्धान्तिक पक्ष को भी व्यवहारिक पक्ष की भाँति सरलता से समझा लेते थे।[3]

शिक्षा के विषयों में अध्यात्म, धर्म, साहित्य और योगशास्त्र आदि के अतिरिक्त नृत्य, गीत, भवन निर्माण और मूर्ति निर्माण आदि कलायें भी सम्मिलित थीं। व्यवहारिक ज्ञान के लिये मानचित्रों और वाद्यों का प्रयोग होता था।[4]

आर्थिक दशा -

अर्थ व्यवस्था के मुख्य तीन स्रोत होते हैं - कृषि, उद्योग और व्यापार।

कृषि - जनपद ललितपुर का मुख्य आर्थिक आधार कृषि रहा है, इस जनपद में दो प्रकार की मिट्टी पायी जाती है - काली मिट्टी और लाल मिट्टी या उपजाऊ मिट्टी और बंजर या बेकार मिट्टी। उपजाऊ किस्म की मिट्टियों में मार, काबर, पडुवा एवं तारी बताई गई है। राकड़ बंजर और बेकार मिट्टी बतायी गयी है।[5]

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ०-133.
2- प्राचीन भारत के शिक्षा केन्द्र, ले० कृष्णदत्त वाजपेयी: विक्रम स्मृति ग्रंथ संवत 2001, ग्वालियर 1944 ई०, पृ० 729.
3- देवगढ़ की जैनकला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ०-133.
4- वही वही पृ०-133.
5- झाँसी गजेटियर, 1965: ई०बी० जोशी, पृ०- 96-98.

यहाँ के किसान कृषि के लिये मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर रहते थे । समय से वर्षा न होने या कम या अधिक होने पर फसलें क्षतिग्रस्त हो जाती थीं । ये कुँओं ,तालाबों तथा नदियों से सिंचाई भी करते थे ।[1] आधुनिक काल में नहरें भी सिंचाई के साधन के रूप में विकसित हो गयी हैं ।

इस जनपद में रबी की फसल में गेहूँ ,चना आदि अधिक मात्रा में नहीं होता था ,खरीफ की फसल में निम्न स्तर के अनाज - कोदों, सांवा एवं कुटकी अधिक उपजाया जाता था ।[2] जनपद की अच्छी प्रकार की काली मिट्टी में उच्च किस्म की कपास पैदा होती थी । यह जनपद तथा बुन्देलखण्ड के वस्त्र उद्योग के लिये मुख्य फसल थी । लेकिन अंग्रेजी शासन नीति के कारण इसका उत्पादन कम होता गया । 1874 में एटकिन्सन ने लिखा था कि ललितपुर में कपास का जितना उत्पादन होता है वह अत्यंत कम है।इससे स्थानीय आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं होती ,आसपास के जिलों से भी जनपद में कपास मँगानी पड़ती है ।[3]

जनपद ललितपुर के क्षेत्रों में तिलहन§सरसों ,तिल और अलसी§ का भी अच्छा उत्पादन होता था । इसमें मुख्यतः तिल का उत्पादन उच्च स्तर पर किया जाता था ।[4] किन्तु कालांतर में अधिक लागत तथा कम लाभ के कारण तिलहन के उत्पादन में भी किसानों की अभिरुचि कम होती चली गयी ।

यहाँ आल नामक पौधे की खेती की जाती थी । अच्छी किस्म की मार भूमि में इस पौधे की खेती की जाती थी । लगभग एक एकड़ भूमि में इस पौधे की दस मन जड़ का उत्पादन हो जाता था ।[5] इस पौधे की जड़ को खोद कर तथा उसे भट्टियों में पका कर विभिन्न प्रकार के रंगों का निर्माण किया

1- झांसी गजेटियर, 1965, ले० ई०बी० जोशी , पृ०-103 .
2- स्टेटिस्टिकल ,डेस्क्रिप्टिव, हिस्टारिकल एकाउण्ट्स आफ एन०डब्लू० प्राविन्सेज आफ इण्डिया : भाग-1 §बुन्देलखण्ड§: ई०टी० एटकिन्सन, पृ० - 258.
3- वही वही वही पृ० -316 .
4- वही वही वही पृ०- 250-51, 316 .
5- वही वही वही पृ०- 252 .

जाता था जिसका उपयोग वस्त्रों के रंगने के कार्य में होता था ।[1] लेकिन 1892 तक इसकी खेती काफी कम हो गयी ।

अंग्रेजी शासन नीति, 1857 ई0 की क्रान्ति से व्याप्त अस्थिरता और अशांति से जनपद की कृषि पर काफी बुरा असर पड़ा । 1868-69, 1895-96, एवं 1896-97 के अकालों तथा अभाव के समय उगी अनावश्यक घास कांस ने भी जनपद के किसानों की आर्थिक स्थिति को तोड़ कर रख दिया ।[2]

<u>उद्योग -</u> एक विशाल आबादी वाले एवं प्राकृतिक सुविधाओं §लोहा, तांबा एवं अन्य कच्चा माल§से परिपूर्ण क्षेत्र को देखते हुए इस जनपद में उद्योगों की स्थिति नगण्य थी । जनपद ललितपुर में कोई ऐसा बड़ा उद्योग स्थापित नहीं हो पाया जिससे यहाँ के लोगों को धंधा या नौकरी मिल सके ।[3] फिर भी निम्न लघु तथा घरेलू उद्योग धीरे 2 काम करते रहे :-

ललितपुर को तिलहन और घी की एक बड़ी मण्डी माना जाता था ।[4] परन्तु तेल पिरोने§निकालने का§ कार्य पुरानी कोल्हू रीति से किया जाता था । 1940 में सर्वप्रथम मोहन आयल मिल्स नाम का तेल स्पेलर लगाया गया ।[5]

वस्त्र उद्योग भी यहाँ का प्रमुख उद्योग था । कच्चा वस्त्रों का उद्योग जनपद के कई भागों में लघु उद्योग के रूप में विकसित था । इसकी रंगाई भी होती थी । यहाँ के कुछ बुन्देला सरदारों ने कारीगरों को संरक्षण दिया जिससे

1- झाँसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, ले0 डा0एस0पी0पाठक, पृ0 - 57.
2- §अ§ बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, ले0 गोरेलाल तिवारी, पृ0-101.
§ब§ स्टेटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव, हिस्टारिकल एकाउन्टस आफ एन0डब्लू0प्राविन्सेज आफ इण्डिया : भाग-1§बुन्देलखण्ड§ ई0टी0एटकिन्सन, पृ0 320.
3- ललितपुर जिले का सामाजिक आर्थिक इतिहास, 1866-1947 ई0:शोध प्रबंध:एम0एम0 अवस्थी, पृ0 -116.
4- वही वही वही पृ0-117.
5- झाँसी गजेटियर : 1965: ई0बी0जोशी, पृ0-148.

बाहर के व्यापारी इस क्षेत्र में आकर अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान खोलने प्रारंभ किये इसके अतिरिक्त जनपद में सूती व ऊनी वस्त्रों की बुनाई भी होती थी ।[1] साड़ी निर्माण का कार्य भी होता था। जनपद में चन्देरी साड़ियों जैसी अच्छी प्रकार की साड़ी का कुटीर उद्योग चलाने के लिए कुछ जुलाहे बाहर से आकर यहाँ बस गये थे । लेकिन 1865 ई० में हैजा के फैल जाने के कारण उनमें से अधिकांश जुलाहे मर गए तथा कुछ बाहर चले गए जिससे इस उद्योग को भारी क्षति हुयी ।[2] ललितपुर नगर के समीप के गाँव में मुसलमान कलात्मक चुनरी बनाते थे ।[3]

जनपद में सूती और ऊनी कालीन बनाने का भी उद्योग था जो कालांतर में अंग्रेजी शासन की नीति के कारण नष्ट हो गया ।[4]

तालबेहट परगने में केवल बुनाई उद्योग विकसित था ।[5] जनपद के कुछ स्थानों पर कारीगर दरी का निर्माण हाथों से करते थे ।[6] दरी, कालीन, साड़ियों तथा वस्त्रों को रंगने के लिए अल घास की जड़ से रंग तैयार करने का उद्योग भी विकसित था ।[7] यहाँ कारीगर टाट, बोरियों व चटाइयों की बुनाई भी हाथ से करते थे ।[8] घोड़ों पर बैठने के लिये चमड़े की ज़ीन एवं पेटें भी यहाँ बनाये जाते थे ।[9] अमेरिकन मिशनरियों ने जूट की छाल से मैट बनाने का कार्य भी प्रारंभ किया था ।[10]

1- ललितपुर ज़िले का सामाजिक, आर्थिक इतिहास 1866-1947ई0 :शोध प्रबंध एम0एम0 अलवी, पृ0-125-27 .
2- स्टेटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव, हिस्टारिकल एकाउण्ट्स आफ एन0डब्लू0प्राविंस आफ इण्डिया :भाग-1 [बुन्देलखण्ड]: ई0टी0 एटकिन्सन, पृ0-343 .
3- झाँसी सेटिलमेंट रिपोर्ट, 1892:डब्लू0एच0एल0इम्पे एण्ड पी0एस0मेस्टन, पृ0-23 .
4- ललितपुर ज़िले का सामाजिक-आर्थिक इतिहास, 1866-1947ई0:शोध प्रबंध: एम0एम0 अलवी, पृ0-117, 126 .
5- वही वही पृ0-116, 126, 177 .
6- वही वही पृ0 124-25 .
7- वही वही पृ0 121-23 .
8- वही वही पृ0 124, 127 .
9- वही वही पृ0 116, 177 .
10- झाँसी गजेटियर, 1909 : डी0एल0ड्रेक ब्रोकमैन, पृ0 75 .

महावरा और मदनपुर में पीतल व तांबे के बर्तन बनाने का कार्य होता था । यहाँ पीतल व लोहे के अनेक कलात्मक वस्तुएँ भी बनायी जाती थीं ।[1] जगह जगह पर सोने व चाँदी की अच्छे किस्म के आभूषण बनाये जाते थे ।[2]

जनपद में पत्थर उद्योग भी काफी विकसित था । चट्टानों को खदानों से निकालने, कटाई, छंटाई व उन पर पालिश करने का कार्य भी होता था ।[3] चट्टानों की लम्बी चादरें भवन निर्माण के कार्य में आती थीं । बेतवा नदी की तलहटी में जो छोटे 2 किस्म के पत्थर पानी की रगड़ से मुलायम और चिकने हो जाते थे उन्हें यहाँ के कारीगर पालिश करके अच्छे किस्म के चमकीले पत्थरों के रूप में कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करते थे । इन पत्थरों को लकड़ी के टुकड़ों पर मढ़ कर अच्छी हस्तनिर्मित चीजें बनायी जाती थीं । इनके लिए यहाँ के कारीगरों को देश के विभिन्न प्रदर्शिनियों में प्रस्तुत भी किया गया था ।[4] लेकिन अंग्रेजी शासन काल में निषेधात्मक तरीके अपना कर इन्हें हतोत्साहित किया गया था ।

पत्थरों से मूर्ति निर्माण का कार्य भी यहाँ बहुत अधिक होता था । जनपद में देवगढ़[5] और सेरोनजी[6] इसके मुख्य केन्द्र थे । देवगढ़ की कला तो अनिन्द्य है । देवगढ़ और सेरोनजी की मूर्तिकला में साम्य है । देवगढ़ की मूर्ति कला का बहुत बड़ा भाग जिस समय निष्पन्न हो रहा था उसी काल में सेरोनजी में कलाकारों के छैनी हथौड़े मूर्तियाँ गढ़ रहे थे । निर्मित मूर्तियों में जैन तीर्थंकरों देव-देवियों, साधु-साध्वियों, तीर्थंकर माता एवं श्रावक-श्राविकाओं आदि की तथा हिन्दू देवताओं की जैसे सूर्य, शिव, वाराह और विष्णु आदि मूर्तियों का बाहुल्य था ।[7]

1- झाँसी गजेटियर, 1909 : डी0एल0 ड्रेक ब्रोकमैन, पृ0 -75 .
2- वही वही पृ0-75 .
3- वही वही पृ0-76-77 .
4- वही वही पृ0-76-77 .
5- देवगढ़ की जैनकला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 65 .
6- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, भाग-1 : लेखन, सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0-196-97.
7- वही वही पृ0 191-97 .
8-

व्यापार - जनपद ललितपुर की कृषि और उद्योग की सामग्रियों से जनपद की आवश्यकता की पूर्ति तो होती ही थी साथ ही साथ कुछ सामान ज़िलों और प्रान्तों को भी भेजा जाता था । यहाँ पर कुछ ऐसे व्यापारी थे जो गल्ला, तम्बाकू तथा अन्न के लेन-देन का व्यापार करते थे । इस ज़िले से मोटा अनाज -दाल, तिलहन, सूती वस्त्र , कालीन, बरतन और आभूषण अन्य ज़िलों को भेजा जाता था ।[1]

देवगढ़ से मूर्तियों का व्यापार भी होता था । यहाँ से मूर्तियाँ न केवल समीपवर्ती तीर्थ क्षेत्रों - दुबई, चांदपुर, बानपुर, ललितपुर, मदनपुर ,सिरार, पावागिरि और सिरोन को ही भेजी जाती थीं बल्कि दूर दराज़ के क्षेत्रों में भी भेजी जाती थीं ।[2] जनपद से पत्थर की लम्बी चादरों तथा चमकीले पत्थरों की हस्त-निर्मित कलात्मक वस्तुओं का व्यापार भी होता था ।[3]

लेकिन अंग्रेज़ी शासनकाल में उनकी आर्थिक शोषण की नीति से भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति जनपद ललितपुर की व्यापार को गहरा धक्का लगा इससे यहाँ की जनता का पिछड़ापन और बढ़ गया और वे अत्यधिक गरीब हो गये । परिणामस्वरूप नागरिकों में ब्रिटिश राज्य के प्रति घृणा फैल गयी।[4]

निष्कर्ष -

जनपद ललितपुर की सामाजिक और आर्थिक दशा के सूक्ष्म अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जैन मंदिरों के निर्माण काल में यहाँ का समाज सभ्य ,सरल और शान्त था । धार्मिक दृष्टि से उदार और निष्ठावान था । आर्थिक दृष्टि से जनपद समृद्ध और सम्पन्न था । लेकिन समाज में अर्थ का समान वितरण नहीं था । इस दृष्टि से समाज उच्च और निम्न वर्ग में विभाजित था । मंदिरों और मूर्तियों की विपुलता ,मूर्तियों में चित्रित वेश-भूषा ,

---

1- ललितपुर ज़िले का सामाजिक,आर्थिक इतिहास 1866 से 1947 ई० : शोध प्रबंध : एम०एम० अवस्थी ,पृ० 123-24 .

2- देवगढ़ की जैन कला डॉ० भागचन्द्र जैन ,पृ० 138 .

3- ललितपुर ज़िले का आर्थिक सामाजिक इतिहास 1866-1947ई० :शोध प्रबंध : एम०एम० अवस्थी , पृ० 127-28 .

4- वही वही पृ० 118-20 ,245-46 .

नृत्य और संगीत की मण्डलियाँ तथा समय समय पर आयोजित होने वाले प्रतिष्ठा आदि समारोह उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं ।

जैन मन्दिर निर्माण में सामाजिक -आर्थिक पृष्ठभूमि -

किसी भी देश या स्थान की सांस्कृतिक स्थिति वहाँ की कला एवं स्थापत्य की नियामक होती है । कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषय वस्तु -एवं निर्माण विधा में समाज की धारणाओं एवं तकनीकों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती हैं । ये धारणायें एवं तकनीकी संस्कृति का अंग होती हैं । भारतीय स्थापत्य कला के प्रेरक एवं पोषक तत्वों के रूप में भी इन पक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है । समर्थ प्रतिभाशाली शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य की नयी शैलियाँ अस्तित्व में आती हैं , पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है । राजा की धार्मिक आस्था अथवा अभिरुचि ने भी धर्म-प्रधान भारतीय कला के इतिहास को प्रभावित किया है ।[1]

भारतीय कला लोगों की धार्मिक मान्यताओं का मूर्त रूप रही है । सामाजिक और आर्थिक स्थिति में विभिन्न संदर्भों एवं रूपों में भारतीय स्थापत्य कला की धारा को प्रभावित किया है । एक निश्चित अर्थ एवं उद्देश्य से युक्त समस्त भारतीय कला पूर्व परम्पराओं के निश्चित निर्वाह के साथ ही साथ सामाजिक धारणाओं में हुए परिवर्तनों से भी सदैव प्रभावित होती रही है ।[2] भारतीय कला सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति रही है । अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों में ही कला की अबाध अभिव्यक्ति और फलतः उसका सम्यक विकास सम्भव होता है । यजमान एवं कलाकार के अर्थ एवं कल्पना की साकारता कलाकार की क्षमता से पूर्व यजमान के आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है , यजमान चाहे राजा हो या साधारण व्यक्ति । भारतीय कला को राजा से अधिक सामान्य लोगों से प्रश्रय मिला है । यह तथ्य जैन स्थापत्य कला के विकास के सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है ।[3]

1- जैन प्रतिमा विज्ञान ,ले० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी,पृ० 13 .
2- इन्ट्रोडक्शन टु इण्डियन आर्ट, ले० ए०के० कुमार स्वामी , पृ० प्रस्तावना .
3- जैन प्रतिमा विज्ञान ,ले० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, पृ० 13 .

जैन मंदिर स्थापत्य के विकास के कारण से सातवीं शती के अन्त तक लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत एक सूत्र में बंधा था । अतः अन्य धर्मों एवं उनसे सम्बद्ध कलाओं के साथ ही जैन धर्म तथा कला का विकास इस क्षेत्र में समरूप रहा। किन्तु आठवीं से बारहवीं शती के मध्य तथा उसके पश्चात् भी उत्तर भारत के राजनीतिक मंच पर विभिन्न राजवंशों का उदय हुआ , जिनके सीमित राज्यों में विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक धार्मिक सन्दर्भों में जैन धर्म और जैन स्थापत्य कला के विकास की स्वतंत्र जनपदीय या क्षेत्रीय धारायें उद्भूत एवं विकसित हुई ।[1]

जनपद ललितपुर में जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ प्रमाण देवगढ़ से प्राप्त होते हैं । देवगढ़ के मंदिर संख्या 12 के अर्द्धमण्डप के एक स्तम्भ लेख [संवत् 919] में प्रतिहार शासक भोजदेव के शासनकाल और लुअच्छगिरि [देवगढ़] के शासक महासामंत विष्णुराम का उल्लेख है । लेख में गोष्ठीक- गगोक का भी नाम है जो मंदिर की व्यवस्थापक समिति का सदस्य था ।[2]

देवगढ़ के विभिन्न लेखों से स्पष्ट है कि वहां के अधिकतर मंदिर एवं मूर्तियां लोगों के दान एवं सहयोग के प्रतिफल हैं ।[3] देवगढ़ का समाज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था । इसकी गणना पवाया[पद्मावती] ,एरन[ऐरिकिण] और विदिशा जैसे कला समृद्ध नगरों में की जाती थी क्यों कि यह एक बड़े राजमार्ग पर स्थित था और गुप्त काल में इसका सम्बन्ध उत्तर में पवाया से ,दक्षिण में एरन, विदिशा, उदयगिरि और सांची से ,पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम में उज्जैन और बाघ से तथा झांसी और कानपुर होकर प्रयाग, काशी और पाटलिपुत्र से था ।[4] इसकी समृद्धि का एक कारण और भी था वह यह कि यहां बड़े पैमाने पर मूर्तियों का निर्माण और व्यापार भी होता था ।[5]

1- जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी , पृ0 - 13-14 .
2- ऐप0ि ग्रेफिया इण्डिका ,खण्ड 4 पृ0 309-10-देo परिशिष्ट 1 पृ0 4 .
3- जैन प्रतिमा विज्ञान ,ले0 मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी , पृ0-26 .
4- दि गुप्ता टेम्पिल एट देवगढ़ ,माधवस्वरूप वत्स [मिम्वायर्स आफ दि आर्कोलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया]सं0 70 § पृ0-1
5- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 138 .

चाँदपुर चन्देल काल में प्रसिद्ध और समृद्धशाली नगर था । यहाँ के लोगों ने मंदिर निर्माण में अपना अमूल्य सहयोग दिया था ।[1]

दुधई चन्देल काल में एक प्रान्त के रूप में था , जिसके अन्तर्गत 3-4 परगने थे इसका व्यापारिक क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत था । चारों दिशाओं को इस स्थान से व्यापारिक मार्ग जाया करते थे ।[2] निश्चित ही यह समृद्धशाली नगर था ।

मदनपुर उद्योग और व्यापार की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण नगर था ।[3]

बानपुर भी उद्योग और व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण केन्द्र था । यहाँ पर जैनियों का प्रभाव भी बहुत अधिक था । जैन शासन के अनुसार यहाँ चन्द्र-कुमार नाम का नृप था जो जैन धर्म का अनन्य भक्त था ।[4]

पावागिरि प्राचीनकाल में प्रान्तीय शासक की राजधानी के रूप में एक समृद्धशाली नगर था । यहाँ की जनता बहुत ही धर्म प्रिय और कला प्रिय थी । अतः उन लोगों ने आर्थिक सहयोग के द्वारा अनेक मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण कराया था ।[5]

सेरोनजी नवीं दसवीं शताब्दी में मुख्य मार्ग पर स्थित था तथा बहुत बड़ा प्रशासनिक एवं व्यापारिक केन्द्र था । यहाँ के व्यापारियों ने धार्मिक कार्यों के लिये बहुत अधिक दान दिये थे जिससे अनेक मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ था ।[6]

गिरार की आर्थिकस्थिति सामान्य थी लेकिन यहाँ चन्देल काल में जैनियों की बहुत बड़ी आबादी थी ।[7]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर, दुधई का योगदान ,ले0 महेन्द्रकुमार वर्मा , पृ0-67 .

2- वही वही पृ0 - 67 .

3- झाँसी गजेटियर, 1909: डी0एल0 ड्रेक ब्रोकमैन, पृ0 - 75

4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर ,ले0 कैलाश मड़बैया, पृ0-19.

5- वही :-पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0कमलेश कुमार , पृ0 51-52 .

6- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ,ले0 एस0डी0 त्रिवेदी, पृ0-84 .

7- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : संकलन-सम्पादन- बलभद्र जैन , पृ0 195 .

ललितपुर नगर प्राचीन काल से ही बहुत प्रसिद्ध नगर और प्रमुख औद्योगिक, व्यापारिक केन्द्र रहा है । यह मध्य रेलवे लाइन झाँसी-बीना के बीच का स्टेशन है तथा मुख्य मार्ग द्वारा सभी प्रमुख नगरों से जुड़ा हुआ है । यहाँ जैनियों की आबादी भी बहुत अधिक है । यह नगर जैन तीर्थ क्षेत्रों का संगम है क्योंकि इसके चारों ओर मामूली दूरी पर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र हैं ।[1]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि प्रमुख जैन स्थल सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से विकसित थे । इन्हीं विकसित सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण ही यहाँ जैन स्थापत्य कला का सम्यक विकास संभव हो सका था तथा अनेक जैन मंदिरों का निर्माण हो सका था । साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि जैन मंदिरों के निर्माण में राजकीय संरक्षण व प्रश्रय से अधिक इन स्थानों के लोगों का संरक्षण व प्रश्रय मिला था ।

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : संकलन-सम्पादन - बलभद्र जैन, पृ० - 199.

=====

अध्याय - 3

जैन मंदिरों के विकास का इतिहास और जनपद ललितपुर .

जैन धर्म - साधारणतया यह समझा जाता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर थे । लेकिन जैन अनुश्रुतियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारंभ छठी सदी ई०पू० के लगभग हुए सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों के काल में वर्द्धमान महावीर द्वारा नहीं हुआ । वे अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं । उनके अनुसार वर्द्धमान महावीर 24 वें और अन्तिम तीर्थंकर थे जिनके पहले 23 तीर्थंकर (ऋषभदेव या आदिनाथ , अजितनाथ, सम्भवनाथ ,अभिनन्दन नाथ, सुमति नाथ ,सुपद्मनाथ ,सुपार्श्वनाथ ,चन्द्रप्रभु , सुविधिनाथ या पुष्पदन्त, शीतलनाथ,श्रेयान्सनाथ,वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ ,अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ ,नमिनाथ, अरिष्टनेमिनाथ और पार्श्वनाथ) हो चुके थे । जैन धर्म एक प्राचीन धर्म है जिसके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनका उल्लेख वेद और पुराणों में भी मिलता है। ये जम्बू द्वीप के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे ।[1] जैन परम्पराओं के अनुसार 22 वें तीर्थंकर अरिष्ट-नेमिनाथ का सम्बन्ध महाभारत के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण से था ।[2] 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ[3] का समय (877 ई०पू० - 777 ई०पू०) महावीर स्वामी के प्रादुर्भाव से लगभग 250 वर्ष पूर्व था । ये बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे । 30 वर्ष की आयु में इन्हें वैराग्य हुआ । 83 दिन तक घोर तपस्या की 84वें दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ । 70 वर्ष तक उन्होंने निरंतर धर्म का प्रचार किया । 100 वर्ष की आयु में 777 ई०पू० में एक पर्वत की चोटी ,जो पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है, पर निर्वाण प्राप्त किया । पार्श्वनाथ के अनुसार जैन

1- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास,ले० सत्यकेतु विद्यालंकार,पृ० -133.
2- (अ) स्टडीज इन जैन आर्ट ,के भाग-1, ले० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह,पृ०3-4.
(ब) जैन श्राइंस इन इण्डिया,ले० ओ०पी०टण्डन,पृ०-3 .
3- (अ) जैन श्राइंस इन इण्डिया ,ले० ओ०पी०टण्डन, पृ०- 3 .
(ब) भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास,ले० सत्यकेतु विद्यालंकार,पृ०-133-35.

भिक्षु के लिये निम्नलिखित चार व्रत लेने आवश्यक थे – 1– मैं जीवित प्राणियों की हिंसा नहीं करूँगा । 2– मैं सदा सत्य भाषण करूँगा । 3– मैं चोरी नहीं करूँगा और [illegible] मैं कोई सम्पत्ति नहीं रखूँगा । इनके अनुसार भिक्षु लोग वस्त्र धारण कर सकते थे ।

जैन धर्म के क्षेत्र में महावीर स्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इनका जन्म वैशाली के समीप कुण्डग्राम नामक स्थान पर ज्ञात्रिक जाति के क्षत्रिय सिद्धार्थ के घर 599 ई0पू0 में हुआ था । कतिपय विद्वानों ने इनका जन्म 540 ई0पू0 माना है । 30 वर्ष की आयु में इन्होंने घर-बार छोड़ कर तपस्या प्रारंभ की । बारह वर्ष तक कठोर तप किया । तेरहवें वर्ष जृम्भिका ग्राम के समीप ऋजुपालिका नदी तट पर साल वृक्ष के नीचे इन्हें ज्ञान की उपलब्धि हुई और उन्होंने कैवलिन पद प्राप्त किया । अब इन्हें वीर, महावीर, जिन, अर्हत आदि सम्मान सूचक नामों से सम्बोधित किया गया । इसके पश्चात् इन्होंने बारह वर्ष के तपस्या काल में जो सत्य ज्ञान प्राप्त किया था उसका प्रचार करना प्रारंभ किया । इसमें इनके कुछ प्रमुख शिष्यों आनन्द, कामदेव, चुलानिपिया, सुरदेव, चुल्लसयग, कुण्डकोलिय, सद्दालपुत्त, महासयग, नन्दिनीपिया और सालिहीपिया ने काफी सहयोग दिया । महावीर की ख्याति शीघ्र ही दूर दूर तक पहुँच गयी । अनेक लोग इनके शिष्य होने लगे । महावीर ने इस समय जिस नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की उसे निर्ग्रन्थ नाम से जाना जाता है, जिसका अभिप्राय बन्धनों से मुक्त लोगों के सम्प्रदाय से है । महावीर के शिष्य भिक्षु लोग निर्ग्रन्थवा निःग्रन्थ कहलाते थे । इन्हें जैन भी कहा जाता था क्योंकि ये जिन के अनुयायी होते थे । महावीर का धर्म-प्रचार का कार्य 30 वर्ष तक चला । अन्त में 72 वर्ष की आयु में राजगृह के निकट पावा नामक स्थान पर उन्होंने 527 ई0पू0 में निर्वाण पद प्राप्त किया । जैन परम्परा के अनुसार उनके 14000 श्रमण, 36000 श्रमणियाँ, 1,59,000 श्रावक और 3,18,000 श्राविकायें थीं ।[1]

<u>जैन धर्म के सिद्धान्त</u> – महावीर केवल एक बहुत बड़े दार्शनिक ही नहीं थे वरन उन्होंने दर्शन को जीवन की व्यवहारिकता की कसौटी पर कसकर ही किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था । उनके सिद्धान्त अधिकांशतः प्रायोगिक हैं पर कुछ विशुद्ध दार्शनिक हैं जिनकी मौलिकता में संदेह होना स्वाभाविक है ।

1–[अ] भारत भूमि का इतिहास, ले0 शिवनारायण सिंह राणा, पृ0 54–56 .
[ब] भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, ले0 सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ0–135–137.

परवर्ती भारतीय दर्शन पर इन दार्शनिक सिद्धान्तों का काफी प्रभाव पड़ता है । जैन धर्म के कुछ दार्शनिक सिद्धान्त निम्न प्रकार के हैं -

(1) आत्मा - जैन धर्म आत्मा पर विश्वास करता है, ईश्वर में उसका कोई विश्वास नहीं है । जब संसार अनादि और अनन्त है तो जीव भी अनादि और अनन्त हैं । सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र आत्मा या जीव के तीन स्वाभाविक गुण हैं । पर समस्त आत्माओं में ये तीनों गुण अपने स्वाभाविक रूप में इसलिये नहीं मिल पाते हैं क्योंकि कर्मों का आवरण उन्हें ढके रहता है । जो जीव समस्त स्वाभाविक गुणों से युक्त रहते हैं वे शुद्ध जीव हैं और उन्हीं मोक्ष प्राप्त हो चुका है । जो जीव कुछ शुद्ध और कुछ विकृत हैं , वे मिश्र जीव हैं । पर जिनमें स्वाभाविक गुण बिल्कुल ही विकृत हो चुके हैं वे अशुद्ध जीव हैं । इससे स्पष्ट है कि जैन धर्म वाले आत्मा को विकृत भी मानते हैं पर उसका विकार सम्यक ज्ञान व सम्यक् दर्शन से सम्यक् चरित्र की प्राप्ति के आधार पर दूर किया जा सकता है ।

(2) तत्व - जैनियों के सात प्रकार के तत्व बताये गये हैं - जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध , संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ।

(अ) जीव - इसके सम्बन्ध में उपर्युक्त आत्मा का संदर्भ अंकित है ।

(ब) अजीव - अजीव के पाँच भेद होते हैं -पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ।

पुद्गल - स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्णयुक्त द्रव्य पुद्गल कहलाता है ।

धर्म - यह अमूर्तिक और सर्वव्यापी है । यह जीव तथा पुद्गल की गति में सहायता प्राप्त करता है ।

अधर्म - यह अमूर्तिक और सर्वव्यापी है तथा जीव और पुद्गल की गति में ठहराव लाता है ।

आकाश - यह सब पदार्थों को अवकाश देता है ।

काल - समस्त द्रव्यों के परिवर्तन में योग देता है ।

(स) आस्रव - जैनियों का यह मत है कि राग और द्वेष के कारण शरीर मन या वचन से जो क्रियायें की जाती हैं उनसे कर्म परमाणु आत्मा के पास खिंच जाता है । यही आस्रव कहलाता है ।

(द) बन्धत्व - राग द्वेष आदि से प्रभावित कर्म से आस्रव को अर्थात क्रिया के फल अनुसार कर्म रूपी द्रव्य का आत्मा संलग्न हो जाने को बन्धत्व क

§य§ संवर - राग द्वेष आदि के प्रभाव से कर्म के आस्रव को रोकने को कहा जाता है ।

§र§ निर्जरा- जो कर्म हमारी आत्मा से बद्ध हैं उनको तप, योगादि से दूर करने को निर्जरा कहते हैं ।

§ल§ मोक्ष - सांसारिक बन्धन § भले बुरे हर प्रकार के कर्म§ से मुक्ति पाने को मोक्ष कहते हैं । [1]

धर्मोपदेश - महावीर स्वामी ने प्रायोगिक रूप में समझ कर अपने धर्मोपदेशों को दो भागों में विभक्त किया था । एक तो सन्यासियों के लिए और दूसरा गृहस्थों के लिए । [2]

उन्होंने गृहस्थों या श्रावकों के लिये पाँच प्रकार के अणुव्रत बताये हैं-

1- अहिंसा अणुव्रत - जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि अहिंसा व्रत का पालन करे । परन्तु सांसारिक मनुष्यों के लिये पूर्ण अहिंसा व्रत धारण करना कठिन है, इसलिये इनके लिये स्थूल अहिंसा का विधान किया गया । स्थूल अहिंसा का अभिप्राय यह है कि निरपराधियों की हिंसा नहीं की जावे ।

2- सत्याणुव्रत - मनुष्यों में असत्य भाषण करने की प्रवृत्ति अनेक कारणों से होती है । द्वेष, स्नेह, तथा मोह का उद्वेग इसमें प्रधान कारण हैं । इन सब प्रवृत्तियों को दबा कर सर्वदा सत्य बोलना सत्याणुव्रत कहलाता है ।

3- अचौर्याणुव्रत - किसी भी प्रकार से दूसरों की चोरी न करना, गिरी हुई, पड़ी हुई, रखी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण न कर उसे उसके स्वामी को दे देना अचौर्याणु-व्रत कहलाता है ।

4- ब्रह्मचर्याणुव्रत - मन वचन तथा कर्म द्वारा पर स्त्री का समागम न कर, अपनी पत्नी में ही सन्तोष, तथा स्त्री के लिये मन, वचन व कर्म द्वारा पर पुरुष का समागम न कर अपने पति में ही सन्तोष रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है ।

5- परिग्रह - परिमाण- अणुव्रत - आवश्यकता के बिना बहुत से धन-धान्य को संग्रह न करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत कहलाता है । गृहस्थों के लिये यह तो

1- जैन साइंस इन इण्डिया, ले० ओ०पी० टण्डन, पृ० 3.

2- [अ] कुन्दकुन्द तीर्थंकर विशेषांक : जैन धर्म का साहित्य एवं उसके सिद्धान्त, ले० सच्चिदानन्द शर्मा, पृ० 106-7.
[ब] भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, ले० सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ० 139-145.

आवश्यक है कि धन का उपार्जन करें पर उसी में लिप्त हो जाना और अर्थ संग्रह के पीछे भागना पाप है ।

तीन गुण व्रत - उपरोक्त अणुव्रतों का पालन तो गृहस्थों को सदा करना ही चाहिये पर इनके अतिरिक्त समय समय पर अधिक कठोर व्रतों का पालन करना भी उपयोगी है । सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थों को चाहिये कि कभी कभी अधिक कठोर व्रतों की दीक्षा लें । यह कठोर व्रत जैन धर्म ग्रन्थों में गुण व्रत के नाम से कहे गए हैं । ये निम्न प्रकार से हैं -

1- दिग्विरति - गृहस्थ को चाहिये कि कभी कभी यह व्रत ले लें कि मैं इस दिशा में इससे दूर नहीं जाऊँगा । यह व्रत लेकर निश्चित किये गये प्रदेश में ही निवास करें , कभी उस परिमाण का उल्लंघन न करें ।

2- अनर्थ दण्ड विरति - मनुष्य बहुत से ऐसे कार्य करता है जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता है , ऐसे कार्यों से सर्वथा बचना चाहिए ।

3- उपभोग परिभोग परिमाण - गृहस्थों को यह व्रत ले लेना चाहिये कि मैं परिमाण में इतना भोजन करूँगा , भोजन में इतने से अधिक वस्तुयें नहीं खाऊँगा, इससे अधिक भोग नहीं करूँगा-इत्यादि । इस प्रकार के व्रत लेने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों का संयम बहुत सुगमता से कर सकता है ।

चार शिक्षा व्रत - उपरोक्त तीन गुण व्रतों के अतिरिक्त चार शिक्षा व्रत हैं जिनका पालन भी गृहस्थों को करना चाहिये -

1- देशविरति - एक देश व क्षेत्र निश्चित कर लेना जिससे आगे गृहस्थ न जाये और न अपना व्यवहार करे ।

2- सामयिक व्रत - निश्चित समय पर {यह निश्चित समय जैन धर्म के अनुसार प्रातः , सायं और मध्यान्ह हैं } सब सांसारिक कृत्यों से विरत होकर सब राग-द्वेष छोड़ साम्य भाव धारण कर शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होने की क्रिया को सामयिक व्रत कहते हैं ।

3- पौषधोपवास व्रत - प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी के दिन सांसारिक कार्यों का परित्याग कर मुनियों के समान जीवन व्यतीत करने के प्रयत्न को पौषधोपवास व्रत कहते हैं । इस दिन गृहस्थ को सब प्रकार का भोजन त्याग कर धर्म कथा श्रवण करने में ही अपना समय व्यतीत करना चाहिये ।

४- अतिथि - संविभाग व्रत - विद्वान अतिथियों का और विशेषतया मुनियों का सम्मानपूर्वक स्वागत करना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है ।

इन गुण व्रतों और शिक्षा व्रतों का पालन गृहस्थों के लिए बहुत आवश्यक है । इन्हें इनसे अपना जीवन उन्नत कर मुनि बनने के लिए उचित तैयारी करनी चाहिए । प्रत्येक मनुष्य मुनि नहीं बन सकता । संसार का व्यवहार चलाने के लिये गृहस्थ धर्म का पालन करना भी आवश्यक है । अतः जैन धर्म के अनुसार गृहस्थ जीवन को व्यतीत करना बुरी बात नहीं है । पर गृहस्थ होते हुए भी मनुष्य को अपना जीवन इस ढंग से व्यतीत करना चाहिये कि पाप लिप्त न हो । मोक्ष साधनों में तत्पर रहें ।

पाँच महा व्रत - जैन मुनियों के लिये आवश्यक है कि वे पाँच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन करें । मुनि लोगों के लिए जो कि मोक्ष पद प्राप्त करने के लिए संसार त्याग कर साधना में तत्पर हुए हैं , पापों का सर्वथा त्याग अनिवार्य है । इसलिए उन्हें निम्न पाँच महाव्रतों का पालन करना चाहिए -

1- अहिंसा महाव्रत - जैन मुनि के लिए अहिंसा व्रत बहुत ही महत्व रखता है । किसी भी प्रकार के प्राणी की जानबूझ कर या बिना जाने बूझे हिंसा करना महापाप है । अहिंसा व्रत का सम्यक् पालन करने के लिए निम्न व्रत उपयोगी माने जाते हैं :-

{अ} ईर्यासमिति - चलते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कहीं हिंसा न हो जाये । इसके लिए उन्हीं स्थानों पर चलना चाहिये जहाँ भली-भाँति अच्छे मार्ग बने हों क्यों कि वहाँ जीव-जन्तुओं के पैर से कुचले जाने की संभावना बहुत कम होगी ।

{ब} भाषा-समिति - भाषण करते हुए सदा मधुर तथा प्रिय भाषा बोलनी चाहिये । कठोर वाणी से वाचिक हिंसा होती है और साथ ही इस बात की भी संभावना रहती है कि शारीरिक लड़ाई न हो जाये ।

{स} एषणा समिति - भिक्षा ग्रहण करते हुए मुनि को यह ध्यान रखना चाहिए कि भोजन में किसी प्राणी की हिंसा तो नहीं की गयी है अथवा भोजन में किसी प्रकार के कृमि तो नहीं हैं ।

{द} आदान क्षेपणा समिति - मुनि को अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने

के लिये जिन वस्तुओं को अपने पास रखना आवश्यक है उसमें यह निरंतर देखते रहना चाहिये कि कहीं कीड़े तो नहीं हैं ।

[य] व्युत्सर्ग समिति – पेशाब और मल त्याग करते समय भी यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस स्थान पर वे यह कार्य कर रहे हैं वहाँ कोई जीव-जन्तु तो नहीं है ।

जैन मुनि के लिए अहिंसा व्रत का पालन करना अत्यंत आवश्यक है ।

2- असत्य त्याग महाव्रत – सत्य परन्तु प्रिय भाषण करना असत्य त्याग महाव्रत कहलाता है । यदि कोई बात सत्य भी हो परन्तु कटु हो तो उसे नहीं बोलना चाहिए । इस व्रत के पालन में पांच भावनायें बहुत उपयोगी हैं – अनुविम भाषी– भली-भाँति विचार किये बिना भाषण नहीं करना चाहिए , क्रोध परिज्ञानाति– जब क्रोध व अहंकार का वेग हो तो भाषण नहीं करना चाहिये ,लोभ परिज्ञानाति– लोभ का भाव जब प्रबल हो तो भाषण नहीं करना चाहिए , भय परिज्ञानाति– डर के कारण असत्य भाषण नहीं करना चाहिए और हास्य परिज्ञानाति– हंसी में भी असत्य भाषण नहीं करना चाहिये ।

3- अस्तेय महाव्रत – किसी दूसरे की किसी भी वस्तु को बिना उसकी अनुमति के ग्रहण न करना तथा जो वस्तु अपने को नहीं दी गयी है उसको ग्रहण न करना तथा ग्रहण करने की इच्छा भी न करना अस्तेय महाव्रत कहलाता है ।

इस महाव्रत का पालन करने के लिए मुनि लोगों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए – [अ] जैन मुनि को किसी घर में तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिये– जब तक कि गृहपति की अनुमति न ले ली जाये । [ब] भिक्षा में जो भी भोजन प्राप्त हो उसे तब तक न ग्रहण करे जब तक कि गुरु को दिखाकर उनसे अनुमति न ले ली जावे । [स] जब मुनि को किसी घर में निवास करने की आवश्यकता हो तो पहले गृहपति से अनुमति ले ले और यह निश्चित रूप से पूछ ले कि घर के कितने हिस्से में और कितने समय तक वह रह सकता है । [द] गृहपति की अनुमति के बिना घर में विद्यमान किसी आसन, शैया व अन्य वस्तु का उपयोग न करे । [य] जब कोई मुनि किसी घर में निवास कर रहा हो तो दूसरा मुनि भी उस घर में गृहपति की अनुमति के बिना निवास न करे ।

4- ब्रह्मचर्य महाव्रत - जैन मुनियों के लिये ब्रह्मचर्य महाव्रत का भी बहुत महत्व है । अपने विपरीत लिंग के व्यक्ति से किसी प्रकार का संसर्ग रखना मुनियों के लिये निषिद्ध है । ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करने के लिये निम्न भावनाओं का विधान किया गया है - [अ] किसी स्त्री से वार्तालाप न किया जाय, [ब] किसी स्त्री की तरफ दृष्टिपात भी न किया जाए , [स] गृहस्थ जीवन में स्त्री संसर्ग से जो सुख प्राप्त होता था उसका मन में भी चिन्तन न किया जाए, [द] अधिक भोजन न किया जाए । मसाले, कामोत्तेजक पदार्थ आदि ब्रह्मचर्य नाशक आदि भोजनों का परित्याग किया जाये और वह जिस घर में कोई स्त्री रहती हो वहाँ निवास न किया जाये ।

साध्वियों के लिए नियम इनसे सर्वथा विपरीत हैं । किसी पुरुष के साथ बातचीत करना , पुरुष का अवलोकन करना और पुरुष का चिन्तन करना उनके लिये निषिद्ध है ।

5- अपरिग्रह महाव्रत - किसी भी वस्तु , रस व व्यक्ति के साथ अपना संबंध न रखना तथा सबसे निर्लेप रह कर जीवन व्यतीत करना अपरिग्रह महाव्रत का पालन कहलाता है । जैन मुनियों के लिये अपरिग्रह महाव्रत का अभिप्राय बहुत विस्तृत तथा गम्भीर है - सम्पत्ति का संचय न करना तो साधारण बात है पर किसी भी वस्तु के साथ किसी प्रकार का ममत्व न रखना जैन मुनियों के लिए आवश्यक है । मनुष्य इन्द्रियों द्वारा रूप , रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द का जो अनुभव प्राप्त करता है उन सबसे विरत हो जाना अपरिग्रह महाव्रत के पालन के लिए आवश्यक है । इस व्रत के सम्यक प्रकार पालन से मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य बनता है । सब विषयों तथा वस्तुओं से निर्लिप्त तथा विरक्त होकर वह इस जीवन में ही सिद्ध अथवा केवलीय बन जाता है ।

साधु का आदर्श - जैन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर साधु का आदर्श वर्णित है। कुछ श्लोकों का अनुवाद निम्न है -

"जिन वस्तुओं के साथ तुम्हारा पहले स्नेह रहा हो उनसे स्नेह तोड़ दो ।अब नई वस्तु से स्नेह न करो । जो तुम से स्नेह करते हैं उनसे भी स्नेह न करो । तभी तुम पाप और घृणा से मुक्त हो सकोगे । "

" साधु को चाहिये कि आत्मा के सब बन्धनों को काट दे । किसी वस्तु से घृणा न करे । किसी से स्नेह न करे । किसी प्रकार की मौज में अपने को न लगावे । "

" जीवन के आनन्दों पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है । निर्बल लोग उन्हें सुगमता से नहीं छोड़ सकते । पर जिस प्रकार व्यापारी लोग दुर्गम समुद्र पार उतर जाते हैं उसी प्रकार साधुजन संसार के पार हो जाते हैं ।"

" स्थावर व जंगम किसी भी प्राणी को मन , वचन व कर्म से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचानी चाहिये । "

" साधु को केवल अपनी जीवन निर्वाह की यात्रा के लिये भोजन की भिक्षा मांगनी चाहिए । उनका भोजन सु-स्वाद नहीं होना चाहिये । "

" यदि सारी पृथ्वी भी किसी एक आदमी की हो जावे तो भी उसे सन्तोष प्राप्त नहीं हो सकता । सन्तोष प्राप्त कर सकना तो बहुत कठिन है । जितना तुम प्राप्त करोगे उतनी ही तुम्हारी कामना बढ़ती जावेगी । तुम्हारी सम्पत्ति के साथ तुम्हारी आकांक्षायें भी बढ़ती जावेंगी । तुम्हारी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए दो माश ही काफी है पर सन्तोष तो तुम्हारा एक करोड़ से भी नहीं हो सकता ।"

<u>जैन-सम्प्रदाय</u> - ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी के अंत में जैनियों में दो सम्प्रदाय हो गये ।[1] ऐसे जैनी जो अब भी वस्त्रहीन रह कर महावीर के सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे वे दिगम्बर कहलाये लेकिन जो श्वेत वस्त्र धारण कर महावीर के सिद्धान्तों से दूर हो गए वे श्वेताम्बर कहलाये । जनपद ललितपुर में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का प्रभाव व प्रचार प्रारंभ से ही रहा है ।[2]

1- {अ} भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास ,ले० बी०एन० लुनिया,पृ०-93.
   {ब} भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास ,ले० सत्यकेतु विद्यालंकार,पृ०-138.
2- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 84-85 .

जैन मंदिरों के विकास का इतिहास -

तीर्थ[1]- प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में तीर्थों का प्रचलन है । हर सम्प्रदाय के अपने तीर्थ है जो उनके किसी महापुरुष एवं उनकी किसी महत्वपूर्ण घटना के स्मारक होते हैं । प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने तीर्थों की यात्रा और वन्दना के लिए बड़े भक्ति-भाव से जाते हैं और आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं । तीर्थ स्थान पवित्रता ,शान्ति और कल्याण के धाम माने जाते हैं । जैन धर्म में भी तीर्थ क्षेत्र का विशेष महत्व रहा है । जैन अनुश्रुतियों के अनुसार तीर्थ क्षेत्र ही पूजा स्थल और मंदिर होते हैं । [2] जैन धर्म के अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा भाव से अपने तीर्थों की यात्रा करते हैं । उनका विश्वास है कि तीर्थ यात्रा से पुण्य संचय होता है और परम्परा से यह मुक्ति लाभ का कारण होती है ।

तीर्थ शब्द तृ धातु से निष्पन्न हुआ है । तृ धातु के साथ थक् प्रत्यय लगा कर तीर्थ शब्द की निष्पत्ति होती है । इसका अर्थ है - जिसके द्वारा अथवा जिसके आधार से तरा जाये ।

जैन शास्त्रों में भी तीर्थ शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है ।

यथा - संसाराब्धेरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते ।

चेष्टितं जिननाथानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा ।। [3]

अर्थात जो इस अपार संसार समुद्र से पार करे उसे तीर्थ कहते हैं । ऐसा तीर्थ जिनेन्द्र भगवान का चरित्र ही हो सकता है । अतः उनके कथन करने को तीर्थाख्यान कहते हैं ।

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : संकलन-सम्पादन - बलभद्र जैन प्राक्कथन पृ0 7-8.

2- जैन श्राइंस इन इण्डिया , के0 ओ0पी0 टण्डन , पृ0 5 .

3- आदि पुराण : जिन सेन 4/8 .

पुष्पदन्त -भूतबलि प्रणीत षट्खण्डागम [भाग 8 पृ0 91] में तीर्थंकर को धर्म तीर्थ का कर्ता बताया है । आदिपुराण में श्रेयान्सकुमार को दानतीर्थ का कर्ता बताया है । आदिपुराण में [2/39] मोक्ष प्राप्ति के उपाययुत सम्यग्दर्शन , सम्यग्ज्ञान , सम्यक् चरित्र को तीर्थ बताया है ।

आवश्यक निर्युक्ति में चातुर्वर्ण्य अर्थात मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ अथवा चातुर्वर्ण्य को तीर्थ माना है । इनमें भी गणधरों और उनमें भी मुख्य गणधर को मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थंकरों के सूत्र रूप उपदेश को विस्तार देकर भव्यजनों को समझाते हैं , , जिससे वे अपना कल्याण करते हैं । कल्पसूत्र में इसका समर्थन किया गया है ।

<u>तीर्थ और क्षेत्र मंगल -</u> कुछ प्राचीन जैन आचार्यों ने तीर्थ के स्थान पर "क्षेत्रमंगल" शब्द का प्रयोग किया है ।

गुणपरिणत - आसन क्षेत्र अर्थात जहाँ पर योगासन, वीरासन इत्यादि अनेक आसनों से तदनुकूल अनेक प्रकार के योगाभ्यास , जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये हों ऐसा क्षेत्र , परिनिष्क्रमण क्षेत्र , केवल ज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदि को क्षेत्र मंगल कहते हैं । इसके उदाहरण ऊर्जयन्त [गिरनार] , चम्पा , पावा आदि नगर क्षेत्र हैं । अथवा साढ़े तीन हाथ से लेकरपांच सौ पच्चीस धनुष तक के शरीर में स्थित और केवल ज्ञानादि को व्याप्त आकाश प्रदेशों को क्षेत्र मंगल कहते हैं । अथवा लोक प्रमाण आत्मप्रदेशों से लोकपूरणसमुद्घात दशा में व्याप्त किये गये समस्त लोक के प्रदेशों को क्षेत्र-मंगल कहते हैं ।[1]

आचार्य यति वृषभ ने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थ में कल्याणक क्षेत्रों को क्षेत्र मंगल की संज्ञा दी है ।[2]

<u>तीर्थों की संरचना के कारण -</u> तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र मंगल के अर्थ में बहुप्रचलित एवं रूढ़ है । तीर्थ क्षेत्र न कह कर केवल तीर्थ शब्द कहा जाये तो उससे भी प्रायः तीर्थ क्षेत्र या तीर्थ स्थान का आशय लिया जाता है । जिन स्थलों पर तीर्थंकरों

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ0 8 .
2- वही वही प्राक्कथन पृ0 8 .

के गर्भ , जन्म, अभिनिष्क्रमण , केवल-ज्ञान और निर्वाण कल्याणकों में से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनि को कैवल्य ज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो , वह स्थान उन वीतराग महर्षियों के संसर्ग से पवित्र हो जाता है । इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है ।[1] वादीभ सिंह सूरि ने क्षत्र चूड़ामणि §6/4-5§ में इस बात को बड़े ही बुद्धिगम्य तरीके से बताया है । वे कहते हैं -

> पावनानि हि जायन्ते स्थानान्यपि सदाश्रयात् ।।
> सद्भिरध्युषिता धात्री संपूज्येति किमद्भुतम ।
> कालायसं हि कल्याणं कल्पते रसयोगतः ।।

अर्थात महापुरुषों के संसर्ग से स्थान भी पवित्र हो जाते हैं । फिर जहाँ महापुरुष रह रहे हों वह भूमि पूज्य होगी ही इसमें आश्चर्य की क्या बात है । जैसे रस अथवा पारस के स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है ।

मूलतः पृथ्वी पूज्य -अपूज्य नहीं होती । उसमें पूज्यता महापुरुषों के संसर्ग के कारण आती है । पूज्य तो वस्तुतः महापुरुषों के गुण होते हैं किन्तु ये गुण §आत्मा§ जिस शरीर में रहते हैं , वह शरीर भी पूज्य बन जाता है । संसार उस शरीर की पूजा करके ही गुणों की पूजा करता है । महापुरुष के शरीर की पूजा भक्त का शरीर करता है और महापुरुष की आत्मा में रहने वाले गुणों की पूजा भक्त की आत्मा अथवा उसका अंतःकरण करता है । इसी प्रकार महापुरुष , वीतराग तीर्थंकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्ड पर रहें , वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन जाता है । वस्तुतः पूज्य तो वे वीतराग तीर्थंकर या मुनिराज हैं । किन्तु वे वीतराग जिस भूमिखण्ड पर रहें उस भूमिखण्ड की भी पूजा होने लगती है । उस भूमिखण्ड की पूजा भक्त का शरीर करता है , उस महापुरुष की कथा-वार्ता , स्तुति स्तोत्र और गुण संकीर्तन भक्त की वाणी करती है और उन गुणों का चिन्तन भक्त की आत्मा करती है । क्योंकि गुण आत्मा में रहते हैं , उनका ध्यान ,अनुचिन्तन और अनुभव

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ0 - 9 ।

आत्मा में ही किया जा सकता है ।[1]

वीतराग तीर्थंकरों और महर्षियों ने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यान के द्वारा जन्म-जरा मरण से मुक्त होने की साधना की और संसार के प्राणियों को संसार के दुखों से मुक्त होने का उपाय बताया । जिस मिथ्या मार्ग पर चल कर प्राणी अनादि काल से नाना प्रकार के भौतिक और आत्मिक दुख उठा रहे हैं, उस मिथ्या मार्ग को ही इन दुखों का कारण मात्र बता कर प्राणियों को सम्यक् मार्ग बताया । अतः वे महापुरुष संसार के प्राणियों के अकारण बन्धु हैं, उपकारक हैं । इसी लिये उन्हें मोक्ष मार्ग का नेता माना जाता है । उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि खण्ड पर घटित घटना की सतत स्मृति बनाये रखने और उन सबके माध्यम से उन वीतराग देवों और गुरुओं के गुणों का अनुभव करने के लिए उस भूमि पर उन महापुरुषों का कोई स्मारक बना देते हैं । संसार के सम्पूर्ण तीर्थ भूमियों या तीर्थ क्षेत्रों की संरचना में भक्तों की महापुरुषों के प्रति यह कृतज्ञता की भावना ही मूल कारण है ।[2]

<u>तीर्थों के भेद –</u> दिगम्बर जैन परम्परा में संस्कृत निर्वाण भक्ति और प्राकृत निर्वाण काण्ड प्रचलित है । अनुश्रुति के अनुसार ऐसा मानते हैं कि प्राकृत निर्वाण काण्ड आचार्य कुन्द कुन्द की रचना है । तथा संस्कृत निर्वाण भक्ति आचार्य पूज्यपाद द्वारा रचित कही जाती है । इस अनुश्रुति का आधार सम्भवतः क्रिया कलाप के टीकाकार प्रभाचन्द्राचार्य हैं । उन्होंने लिखा है कि संस्कृत भक्ति पात्र पादपूज्य स्वामी विरचित है । प्राकृत निर्वाण भक्ति के दो काण्ड हैं – एक निर्वाण काण्ड और दूसरा निर्वाणेत्तर काण्ड । निर्वाण काण्ड में 19 निर्वाण क्षेत्रों का विवरण प्रस्तुत करके शेष मुनियों के जो निर्वाण क्षेत्र हैं उनके नाम उल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है । निर्वाणेत्तर काण्ड में कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण भक्ति में

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन प्राक्कथन पृष्ठ – 9.

2– वही वही प्राक्कथन पृष्ठ –10.

तीर्थ भूमियों की इस भेद कल्पना से ही दिगम्बर समाज में तीन प्रकार के तीर्थ क्षेत्र प्रचलित हो गये - सिद्ध क्षेत्र §निर्वाण क्षेत्र§ , कल्याण क्षेत्र ,और अतिशय क्षेत्र ।[1]

निर्वाण क्षेत्र - वे क्षेत्र कहलाते हैं जहाँ तीर्थंकरों या किसी तपस्वी मुनिराज का निर्वाण हुआ हो । तीर्थंकरों के निर्वाण क्षेत्र कुल पाँच है - कैलाश ,चम्पा, पावा, उर्जयन्त और सम्मेद शिखर । पूर्व के क्षेत्रों में क्रमशः ऋषभदेव ,वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए शेष बीस तीर्थंकरों ने सम्मेद शिखर में मुक्ति प्राप्त की ।[2]

कल्याणक क्षेत्र - वे क्षेत्र हैं जहाँ किसी तीर्थंकर का गर्भ - जन्म - दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक हुआ है । जैसे - हस्तिनापुर, शौरीपुर , अहिच्छत्र , वाराणसी ,काकन्दी ,कुण्ड ग्राम आदि ।[3]

अतिशय क्षेत्र - जहाँ किसी मंदिर में या मूर्ति में कोई चमत्कार दिखाई दे तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है । जैसे श्री महावीर जी , देवगढ़ , हुम्मच, पद्मावती आदि । अतिशय क्षेत्रों के प्रति जन साधारण का आकर्षण भौतिक या सांसारिक होता है आध्यात्मिक नहीं होता है । लोग या तो ऐहिक कामनावश वहाँ जाते हैं अथवा उनके मन में अद्भुत कुतूहल होता है ।[4]

तीर्थ क्षेत्रों की स्थापना के मूल में जिस आध्यात्मिक भावना का विकास हुआ था , वह भावना थी आत्मिक शान्ति लाभ और उस क्षेत्र से संबंधित वीतराग तीर्थंकर या महर्षियों के आदर्श से अनुप्राणित होकर आत्म कल्याण की। किन्तु अतिशय क्षेत्रों में भौतिक प्रयोजन ही आकर्षण के केन्द्र बिन्दु होते हैं । यह भट्टारक परम्परा की देन है । अतिशय क्षेत्र प्रायः आठवीं नवीं शताब्दी के बाद के हैं ।[5]

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ :प्रथम भाग:संकलन-संपादन-बलभद्रजैन,प्राक्कथन पृ010
2- वही वही प्राक्कथन पृ0 10
3- वही वही प्राक्कथन पृ0 11
4- वही वही प्राक्कथन पृ0 11
5- वही वही प्राक्कथन पृ0 11

तीर्थों का महात्म्य - संसार में प्रत्येक क्षेत्र एक समान है, किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रभाव हर स्थान को दूसरे स्थान से पृथक कर देता है । द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिवर्तन हम नित्य देखते हैं । इससे भी अधिक व्यक्ति के भावों और विचारों का चारों ओर के वातावरण पर प्रभाव पड़ता है । जिसके आत्मा में विशुद्ध या शुभ भावों की स्फुरणा होती है, उनमें से शुभ परमाणुओं की तरंगें निकल कर आस पास के सम्पूर्ण वातावरण को व्याप्त कर लेती हैं । उस वातावरण में शुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है । वह तरंगें जितने वातावरण को घेरती हैं, उसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावों में उस व्यक्ति की शुचिता आदि में जितनी प्रबलता और वेग होगा, उतने वातावरण में वे तरंगें फैल जाती है ।[1]

प्रायः सर्वस्व त्यागी और आत्म कल्याण के मार्ग के राही एकान्त शान्ति की इच्छा से वनों में, गिरि कन्दराओं में, सुरम्य नदी तटों पर आत्म ध्यान लगाया करते थे । ऐसे तपस्वी जनों के शुभ परमाणु उस सारे वातावरण में फैल कर उसे पवित्र कर देते थे ।[2]

तीर्थों में जाने पर मनुष्यों की प्रवृत्ति संसार की चिन्ताओं से मुक्त होकर उस महापुरुष की भक्ति से आत्म कल्याण की ओर होती है । घर पर मनुष्य को नाना प्रकार की सांसारिक चिन्तायें और आकुलतायें रहती हैं । उसे घर पर आत्म कल्याण के लिए बिल्कुल अवकाश नहीं मिल पाता । तीर्थ स्थान प्रशान्त स्थानों पर होते हैं । प्रायः तो वे पर्वतों पर या एकान्त वनों में नगरों के कोलाहल से दूर होते हैं । फिर वहां के वातावरण में भी प्रेरणा के बीज बिखरे होते हैं । अतः मनुष्य का मन वहां शान्त, निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान की भक्ति और आत्म साधना में लगता है और उसे आत्म सिद्धि होने में विलम्ब नहीं लगता । तीर्थ भूमि के मार्ग की रज इतनी पवित्र होती है कि उसके आश्रय से मनुष्य कर्म मल रहित हो जाता है । तीर्थों पर भ्रमण करने

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग) संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ0-11.

2- वही वही प्राक्कथन पृ0 9 11.

से संसार का भ्रमण छूट जाता है । तीर्थ पर धन व्यय करने से अविनाशी सम्पदा मिलती है और जो तीर्थ पर जाकर भगवान की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात भगवान के मार्ग को जीवन में उतार लेते हैं वे जगत-पूज्य हो जाते हैं ।[1]

<u>मंदिर -</u> भारत धर्म प्रधान देश है । भारत में सभ्यता के आदिकाल से ही धार्मिक भावनायें किसी न किसी रूप में विद्यमान रही हैं । धार्मिक भावना-ओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए मंदिर होते हैं । जैन धर्म में मंदिर दो प्रकार के बताये गये हैं - अकृत्रिम और कृत्रिम । अकृत्रिम चैत्यालय नन्दीश्वर द्वीप, सुमेरु, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षार गिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकर गिरि, रुचक गिरि, कुण्डल गिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकार गिरि, अंजन गिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवन वासियों के पाताल लोक में पाये जाते हैं । इनकी कुल संख्या 85697481 बताई गई है ।

<u>मंदिरवास्तु का उद्भव -</u> कालांतर में मंदिर निर्मित करवाये गये । ये कृत्रिम मंदिर कहलाये ।

सुमेरु : मंदिर स्थापत्य का आधार स्रोत - धार्मिक तुष्टि के लिये अपनाये गये साधनों में अपने उपास्य देव के निवास की कल्पना की थी । सुमेरु के नाम से एक ऐसे पर्वत की कल्पना की गयी, जो लौकिक पर्वतों से आकार-प्रकार में सर्वथा भिन्न था । सुमेरु पर स्वर्गीय सुविधायें और वातावरण था । उसके बीच अभिष्ट देव का निवास था । परन्तु भक्त अपने वर्तमान जन्म में वहाँ तक पहुँच नहीं सकता था जब कि उसे अपने उपास्य का दर्शन क्षण-क्षण अनिवार्य प्रतीत होता गया । अतः उसने स्वयं सुमेरु की रचना करने की ठानी जिस पर अवतीर्ण होकर उसका उपास्य विराजमान होता । सुमेरु की कल्पना के साथ ही मंदिर स्थापत्य का उपक्रम हुआ ।[2] सुमेरु एक ऐसा विशिष्ट पर्वत है जहाँ से पर्वत श्रेणियाँ निकल कर चारों दिशाओं में फैलती हैं। अनेक विद्वानों ने इसे पामीर पर्वत माना है । अनेक ने इसका अभिज्ञान हिमालय से किया है । किन्तु आर0पी0 [illegible] इसकी

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन प्राक्कथन पृ0 - 12-13.
2- देवगढ़ की जैन कला, डॉ0 भागचन्द्र जैन, पृ0 - 48.

स्थिति अल्ताई पर्वत के क्षेत्र में मानते हैं ।[1] डा० बलदेव उपाध्याय पश्चिमी साइबेरिया में स्थित अल्ताई पर्वत को सुमेरु मानते हैं ।[2] प्रो० सैय्यद मुजफ्फर अली पामीर को सुमेरु प्रमाणित करते हैं । [3]

कैलाश : शिखर संरचना का प्रेरक :- भक्त मानते थे कि उनका उपास्य देव कैलाश पर भी निवास करता है । उस तक पहुँचने में असमर्थ भक्तों ने कैलाश की भी रचना का सूत्रपात किया । यह परिकल्पना भी मंदिर स्थापत्य का सूत्रपात कही जा सकती है ।[4]

सुमेरु और कैलाश की अनुकृतियों का एक मुख्य अंग शिखर भी माना गया । प्राचीन भारत में इसे विशेष मान्यता दी गयी ।

मुद्राओं पर अंकित मंदिर आकृतियाँ - ई0 पू0 पाँचवीं - चौथी शती के सिक्कों पर भी शिखराकृतियाँ अंकित मिलती हैं ।[5] कुछ आहत मुद्राओं पर मंदिरों का प्रारंभिक रूप देखने को मिलता है । ई0 पू0 द्वितीय तथा प्रथम शती की मुद्राओं के अतिरिक्त अनेक मूर्तियों पर भी मंदिर आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी थीं ।

वेदिकाओं पर अंकित मंदिर आकृतियाँ - मथुरा की वेदिकाओं पर अंकित मंदिराकृतियों से उत्तर भारत के मंदिरों के प्रारंभिक रूप का ज्ञान होता है ।[6]

प्राचीन मंदिर स्थापत्य की दो विशेषतायें - ई0पू0 द्वितीय - प्रथम शताब्दी के मन्दिरों की दो विशेषतायें वेदिका और शिखर हैं । वेदिका जिसे बेष्टनी [बाड़] भी कहते हैं, प्रारंभ में पवित्र वृक्षों के चारों ओर बनायी जाती थी । ग्रामों और नगरों की रक्षा भी बेष्टनी द्वारा की जाती थी जिसकी संज्ञा प्राचीर हुई । महावीर का जिन यक्षायतनों में रुकने का उल्लेख मिलता है वे किसी वृक्ष के नीचे होते थे । [7] और उन्हें बेष्टनी द्वारा परिवेष्ठित कर दिया

1- मेक होमलैण्ड आफ दि आर्यन्स :विवेकानन्द भारतभारती [होशियारपुर 1974] पृष्ठ संख्या 109 .
2- पुराण विमर्श, ले0 बलदेव उपाध्याय, पृ0 320 .
3- दि ज्योग्रेफी आफ दि पुराणास् ले0 सैयद मुजफ्फर अली, पृ047-52 .
4- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 48 .
5- कैटलाग आफ क्वाइन्स आफ एन्शिएन्ट इण्डिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम:एलन भूमिका तथा पृ0 297-306 .
6- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 - 48 .
7- सन्मति सन्देश [दिल्ली], मई, 1961: भारतीय कला में [illegible] भगवान महावीर, ले0 दत्त बाजपेयी, पृ0 36 .

जाता था । मंदिरों की छत पर सादे शिखर का निर्माण करके सुमेरु और कैलाश की भाँति उच्चता, उज्ज्वलता और शान्ति की अपूर्व सृष्टि की जाती थी ।[1]

मंदिर स्थापत्य का विकास : ऐतिहासिक दृष्टि -

स्थापत्य के रूप में मंदिरों का निर्माण कदाचित उत्तर भारत में सर्व प्रथम हुआ । साहित्य में अनेक प्राचीन [ई०पू० 600 से भी पहले के] मंदिरों के उल्लेख मिले हैं । मथुरा, काम्पिल्य आदि में पार्श्वनाथ, महावीर आदि के मंदिर निर्मित हुए थे, ऐसा अनुमानकतिपय साहित्यिक उल्लेखों से होता है। महावीर से 100 वर्ष पूर्व मथुरा के कंकाली टीले पर किसी कुबेरा देवी ने पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया था ।[2] यह पहले सोने का था[3], बाद में प्रस्तर खण्डों और ईंटों से आवेष्टित कर दिया गया ।[4]

मौर्य - शुंग काल - मौर्य शुंग काल की मुद्राओं आदि से प्रबल प्रमाण मिलते हैं कि उस समय मंदिरों का निर्माण बड़ी संख्या में होता था । इनमें बौद्ध मंदिर बहुत कम होते थे । जैन तथा वैदिक अपेक्षाकृत अधिक । इस समय के मन्दिरों के साथ वाटिका का भी निर्माण होता था । मंदिर का निर्माण एक ऊँचे अधिष्ठान पर निर्मित स्तम्भों पर आधारित छत बना कर होता था । छत प्रायः गोलाकार होती थी । गोल आकार क्रमशः अंडाकार में परिणित होता गया । छत के आकार का यह परिवर्तन तत्कालीन जैन गुफाओं में भी परिलक्षित होता है । बराबर की लोमश ऋषि की गुफा[5] और उदयगिरि [उड़ीसा] की हाथी गुम्फा[6] तथा उड़ीसा की अनेक गुफाओं[7] के छत अंडाकार ही हैं । विदिशा में की गई खुदाई से ई०पू० 200 में

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 49.
2- विविध तीर्थ कल्प: मथुरापुरी कल्प: जिन-प्रभ सूरि, 917.
3- वही वही वही वही .
4- अहिंसा वाणी [वर्ष 13 अंक 8-9, 1963]: भारतीय पुरातत्व में तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ : कृष्णदत्त बाजपेयी, पृ० 287.
5- दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया जिल्द 1, ले० हेनरिच जिम्मर, पृ० 247 तथा आकृति ए और बी.
6- वही वही वही फलक 58 आकृति ब.
7- वही वही वही फलक 46, 52, 56, 57 तथा 58.

निर्मित विष्णु मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं ।[1] इस मंदिर के सामने यूनानी राजा अंतलिखित के राजदूत हेलियोदर ने गरुड़ध्वज की स्थापना करवायी ।

शक-सातवाहन काल – इस काल में मंदिरों का निर्माण और भी अधिक संख्या में हुआ । इस समय औदुम्बर, कुणिन्द और आर्जुनायन गणों की मुद्राओं पर जिस प्रकार देवों का विशेष चिन्ह बनाया जाता था[2] उसी प्रकार का चिन्ह मंदिरों, उनके स्तम्भों तथा ध्वजाओं पर भी बनाया जाने लगा । उदाहरण के लिए जैन मंदिरों में तीर्थंकर की मूर्ति और शैव मंदिरों में त्रिशूल और परशु के चिन्ह उत्कीर्ण हुए । इस काल में प्रदक्षिणा पथ का निर्माण विशेष रूप से प्रचलित हुआ । प्रदक्षिणा पथ प्रायः काष्ठ निर्मित वेष्टनी के रूप में होते थे, जिन्हें कुषाण शासकों ने पाषाण से निर्मित कर प्रशस्त रूप दिया ।

कुषाण काल – कुषाण शासकों ने मंदिरों के साथ ही साथ देवकुलों को भी बहुत महत्व दिया ।[3] देवकुल वह भवन होता था, जिसमें मृत राजा की मूर्ति प्रतिस्थापित होती थी । इस प्रकार एक ही देवकुल में अनेक परंपरागत राजाओं की मूर्तियाँ स्थापित हो जाया करती थीं । कुषाण काल में मथुरा, अहिच्छत्रा, कौशाम्बी, काम्पिल्य और हस्तिनापुर को अच्छा जैन केन्द्र माना जाता था । उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में भी जैन धर्म के प्रारंभिक केन्द्र थे । यहाँ अनेक जैन मंदिर निर्मित हुए थे ।[4]

गुप्त काल – गुप्तकालीन मंदिर भीतरगांव, एरण, नचना, भूमरा, अथहरा, तिगवाँ, मढ़िया, साँची आदि स्थानों में उपलब्ध हुए हैं ।[5]

गुर्जर प्रतिहार काल – इस समय के मंदिर यथा सागर, गढ़ोरा और कन्नौज आदि में हैं ।[6]

1- भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान – ले० के०डी० बाजपेयी, पृ० 124
2- प्राचीन भारतीय संस्कृति, ले० बी०एन०लूनिया, पृ० 565 .
3- कला का इतिहास, ले० कृष्णदत्त बाजपेयी: हिन्दी साहित्य, जिल्द 2, प्रयाग 1962, पृ० 228 .
4- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 50 .
5- प्राचीन भारतीय संस्कृति, ले० बी०एन०लूनिया, पृ० 642 .
6- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 51 .

<u>कलचुरि काल -</u> इस समय के मंदिर गौरैया, पिनैका, त्रिपुरी, अमरकण्टक, गुडागपुर, तिंहपुर, रतनपुर, जाजगीर, बारौद, ग्यारसपुर, कारीतलाई, बिलहरी, पठारी, बडागांव, खजुराहो आदि स्थानों में हैं ।[1]

<u>चन्देल काल -</u> इस काल के मंदिर खजुराहो, भेड़ाघाट, त्रिपुरी, चन्देरी, गुर्गी, जादगीर और उदयपुर आदि में प्राप्त हैं ।[2]

<u>ललितपुर के जैन मंदिरों के विभिन्न रूप -</u> स्मारकों, अभिलेखों और अन्य स्रोतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जनपद ललितपुर में जैन, वैष्णव तथा शैव धर्म समान रूप से विकास पाते रहे । जैन धर्म का प्रभाव यहाँ बहुत प्राचीन काल से प्रारंभ होकर अब तक चल रहा है । जैनों में पर्वत की सुरंग अधित्यका को तो अपनी निर्माण स्थली बनाया ही उपत्यका पर भी कुछ मंदिरों का निर्माण कराया ।[3]

जैन धर्म का प्रचार जनपद ललितपुर में पर्याप्त रहा यह तो उपलब्ध स्रोतों से भलीभांति प्रकट होता है पर इनसे यह प्रकट नहीं होता कि यह प्रचार किस रूप में रहा । स्मारकों की विशालता और विपुलता, मूर्तियों की कलात्मकता और अधिकता तथा अभिलेखों की बड़ी संख्या से धार्मिक प्रभावना की अधिकता का बोध तो होता है पर उनसे यह नहीं मालूम पड़ता कि यह प्रभावना समाज में किन विभिन्न रूपों में स्थान पाती थी । मूर्तियों में तीर्थंकरों तथा यक्ष-यक्षियों की मूर्तियों का बहुत बड़ा अनुपात है पर यहाँ जन जीवन के विभिन्न पक्षों का अंकन बहुत कम है । इसी प्रकार अभिलेखों में भी मंदिरों के निर्माण और मूर्तियों की स्थापना के अतिरिक्त किसी अन्य अनुष्ठान या धार्मिक प्रभावना आदि की चर्चा नगण्य है । अतः विभिन्न युगों में जनपद ललितपुर में जैन धर्म किस गति से और किस रूप में विकसित हुआ यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता ।[4]

यहाँ का साधुवर्ग श्रावकों पर अच्छा प्रभाव रखता था । स्थान स्थान पर श्रावक श्राविकाओं को साधु-साध्वियों की विनय या उपासना

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 51 .
2- सागर विश्वविद्यालय पुरातत्व पत्रिका सं० 1, 1967: मध्यप्रदेश का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक अनुशीलन, ले० कृष्णदत्त बाजपेयी, पृ० 87 .
3- देवगढ़ की जैनकला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 118 :
4- वही वही पृ० 118 :

करते हुए दिखाया गया है । साधुवर्ग स्वयं भी प्रबुद्ध था । यहाँ भट्टारकों का प्रचार और प्रभाव भी बहुत अधिक था । भट्टारकों के कारण एक ओर जैन धर्म को सुरक्षा और प्रभावना का वरदान मिला तो दूसरी ओर आडम्बरप्रियता और भौतिकता का अभिशाप भी मिला ।[1] निवृत्ति प्रधान जैन धर्म में मुक्ति के साधक, शुद्ध त्यागी, तपस्वी, श्रमण साधुओं की परंपरा प्राचीन काल से है इसके मूल संघ में ऐसे मुनियों का समुदाय था जो शास्त्रोक्त मुनि चरित्र का पालन करता था । तत्पश्चात् काल दोष से मूल संघ में श्रेष्ठ मुनि विरले रह गए और उनके साथ शिथिलाचारी, मठवासी, नाम मात्र के नग्न साधुओं की परंपरा चल पड़ी ।[2] कालान्तर में यह लोग मठों और मंदिरों में निवास करने लगे, जागीरें रखने लगे, राज सभाओं में जाने लगे । किन्तु अपने आप को मूल संघी ही प्रदर्शित करते रहे । कालांतर में दिगम्बर परंपरा ने साधुओं में वस्त्र धारण की प्रथा प्रारंभ हो गयी ।[3] ये वस्त्र धारण करके भी मुनि कहलाते थे तथा स्वयं को मूल संघी कहते थे । इस प्रकार दिगम्बर परंपरा में मुनियों के तीन रूप या प्रतिरूप सामने आये : यथा शास्त्र मुनि, शिथिलाचारी नग्न मुनि, भट्टारक। भट्टारकों से सम्बद्ध विभिन्न उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दिगम्बर जैन धर्म में मूल संघ में भट्टारकों की दो परंपरायें रही हैं – पहला सेनगण की और दूसरा बलात्कार गण की ।[4] सेनगण वाले भट्टारक अपने को पुष्करगच्छ का कहते हैं और वृषभसेनान्वय लिख कर अपना मूल वृषभसेन (ऋषभदेव के गणधर) से प्रारंभ करते हैं दूसरी परंपरा के बलात्कारगण वाले भट्टारक अपने को सरस्वतीगच्छ का कहते हैं तथा कुंदकुंदान्वय लिख कर अपना मूल कुंदकुंदाचार्य से आरंभ करते हैं । इन्होंने बड़ी मात्रा में जैन साहित्य का सृजन किया । साथ ही अनेक जैन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें भी कीं । उत्तर प्रदेश की शाखाओं के मूल आधार भट्टारक पद्मनन्दी थे ।[5]

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 118-19.
2- दर्शनसार : देवसेन सूरि: संपादक नाथूराम प्रेमी, पृ० 24-28.
3- योगेन्द्र देव: परमात्म प्रकाश: ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका, पं०मनोहरलाल शास्त्री द्वारा संपादित गाथा 216 की टीका, पृ० 231-32.
4- भट्टारक संप्रदाय, ले० विद्याधर जोहरापुरकर, प्रस्तावना पृ० 4 और आगे.
5- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 121

जनपद ललितपुर में जैन धर्म के प्रभाव के परिणाम स्वरूप यहाँ के विभिन्न स्थानों में जैन मंदिरों का निर्माण भिन्न भिन्न समयों में हुआ। यहाँ के मंदिर अतिशय क्षेत्र कहे जाते हैं। गुप्त काल से लेकर 19वीं शताब्दी तक यहाँ जैन मन्दिरों का निर्माण होता रहा था। ये मंदिर देवगढ़, चाँदपुर-जहाजपुर, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोंन, सेरोंजी, गिरार, और ललितपुर आदि स्थानों में निर्मित हुए थे। इनके निर्माण पर गुप्त काल, गुर्जर प्रतिहार काल, कलचुरि काल, चन्देल काल, बुन्देला काल और मुगल काल की शैलियों का प्रभाव पड़ा है।[1]

मंदिरों के विकास में सहायक तत्व व प्रश्रयदाता - इतनी उत्कृष्ट और विपुल कृतियों के विकास में जनपद की जनता का सहयोग, शासक वर्ग का प्रोत्साहन व संरक्षण, कलाकारों के स्थानीय होने से सरलता से उपलब्धि और निर्माण स्थल पर ही पाषाण की प्राप्ति बहुत सहायक सिद्ध हुयी।[2]

जनपद ललितपुर में प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि यहाँ अनेक मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण आर्यिकाओं और साधुओं की प्रेरणा या उपदेश द्वारा हुआ। आर्यिकाओं में इन्दुआ, गणी, धर्मश्री, नवासी और मदन आदि का नाम मिलता है जिन्होंने मूर्तियों के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रेरणा दी या प्रतिष्ठा करायी। इसी प्रकार साधुओं में लोकनन्दी के शिष्य गुणनन्द, कमलसेनाचार्य और उनके शिष्य श्रीदेव, त्रिभुवनकीर्ति, जयकीर्ति, भावनन्दी, चन्द्रकीर्ति, यशःकीर्ति, आचार्य नागसेनाचार्य, कनकचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, हेमचन्द्र, धर्मचन्द्र, रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दी, शुभचन्द, देवेन्द्रकीर्ति आदि ने यहाँ मंदिर निर्माण की प्रेरणा दी अथवा प्रतिष्ठा करायी।[3]

1- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन,पृ0 50-53.

2- वही वही पृ0 53

3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0 193.

जनपद में जैन मंदिरों के विकास में निम्नलिखित का योगदान विशेषरूप से सराहनीय है ।- देवपत और खेवपत । 12वीं शताब्दी के अंत और तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में देवगढ़ में देवपत और खेवपत नाम के दो भाई निवास करते थे । किंवदन्ती के अनुसार उन्हें पारस पत्थर उपलब्ध था जिसके कारण वे अत्यंत वैभव सम्पन्न हो गये थे । अपनी अपार धनराशि का उपयोग इन दोनों ने यहाँ जैन धर्म के विकास , भव्य जैन देवालय बनवाने, नगर एवं दुर्ग के सौन्दर्य बढ़ाने में किया । उन्होंने सन् 1203 ई0 के लगभग देवगढ़ पाली में एक महान जैन महोत्सव कराया था ।[1] परंपरा से देवगढ़ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि इस स्थान के निर्माता उक्त देवपत के कारण ही यह स्थान देवगढ़ कहलाता है । हालाँकि यह विचार सही नहीं माना जाता है[2], पर यह सही है कि उन्होंने यहाँ कई मंदिरों का निर्माण कराया था । जैसे सात भोयरे {गुफा} मंदिर } का निर्माण ये सात भोयरे देवगढ़ ,सेरोनजी , करगुंवा, चन्देरी, थूबौन, पपौरा, और पावागिरि में निर्मित करवाये गये थे।[3] देवगढ़ और दुधई के कुछ विशाल मंदिरों के निर्माता भी यही दोनों भ्राता थे।[4] किंवदन्ती के अनुसार दुधई के पश्चिमी समूह - मंदिरों - बड़ी बारात और छोटी बारात नामक जैन मंदिरों का निर्माण इन्हीं जैन बनिया बन्धु देवपत और खेवपत ने कराया था ।[5]

850 से 969 संवत् में देवगढ़ के गुर्जर प्रतिहार वंशी शासकों में विशेष रूप में श्रीभोज ने संवत् 919 में मंदिर निर्माण व विकास में महान योग-दान दिया था ।[6] संवत् 1121 तक गुर्जर प्रतिहार शासक राजपाल द्वारा देवगढ़ मंदिर संख्या 18 का निर्माण कराया गया था ।[7] संवत् 1210 में महासामंत

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन ,पृ0 131 .
2- वही वही वही पृ0- 7
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, लेखक कमलेश कुमार , पृ0 52 .
4- वही वही वही पृ0 52.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थक्षेत्र विशेषांक/ जैन धर्म के उत्कर्ष में पांवपुर, दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र कुमार वर्मा , पृ0 70 . .
6- दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौजः भारतीय विद्या भवनःजिल्द 4 पृ0 83 .
7- बुलेटिन आफ दि डेक्कन कालेज रिसर्च इन्सटीट्यूट , जिल्द 1 ,अंक 2-4: जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज ,एच0डी0 सांकलिया, पृ0 162.

उदयपाल ने मूर्तियों के निर्माण में आर्थिक सहयोग दिया था ।[1] चन्देल वंशीय शासकों ने भी देवगढ़ में मंदिर निर्माण कार्य में सहयोग दिया था ।[2]

इन्द्राणी बहू - सेरोनजी में जैन मंदिरों के निर्माण में बोज वंश और चन्देल वंश के शासकों ने महान योगदान दिया था । यहाँ मान स्तम्भ व एक मढ़िया का निर्माण बांसी [ललितपुर] में निवास करने वाली इन्द्राणी बहू ने करवाया था ।[3]

देवपाल - इन्होंने बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय बनवाया था ।[4]

उदयपाल - चांदपुर में जैन मंदिरों का निर्माण महा सामंत उदयपाल ने करवाया था ।[5]

इन्हीं सबके महत्वपूर्ण योगदानों के परिणामस्वरूप जनपद ललितपुर में जैन मंदिरों का विकास हो सका था जिससे यह जनपद दिगम्बर जैन धर्मावलंबियों का पवित्र तीर्थ स्थल बन सका है ।

1- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट 1916: एच0 हरग्रीव्स , पृ0 5 तथा परिशिष्ट अ

2- देवगढ़ की जैन कला , ले0 भाग चन्द्र जैन , पृ0 10 .

3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी , ले0 लाल चन्द्र जैन , राकेश पृ0 37 , 39 .

4- [अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन , बलभद्र जैन , पृ0 203 .

[ब] क्षेत्रपाल क्षेत्र पर शान्तिनाथ के पादपीठ में उत्कीर्ण लेख-

" गृहपति-वंश-सरोरुह-सहस्त्ररश्मिः सहस्त्रकूटं यः ।
बाणपुरे व्यधितासीत श्री मानतिह देवपाल इति ।।

5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष एवं चांदपुर-दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्रकुमार वर्मा , पृ0 68 .

अध्याय - 4

जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों का इतिहास

भारत देश के हृदय बुन्देलखण्ड क्षेत्र का महत्व सर्व विदित है। इतिहास के पन्ने और संस्कृति इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसी क्षेत्र में उत्तर प्रदेश का जनपद ललितपुर भी है। इस क्षेत्र के महत्व, महिमा और प्रतिष्ठा के अनेक कारण रहे हैं पर उनमें जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण परिलक्षित होता है वह है यहाँ की अत्यंत प्राचीन और धनी संस्कृति व संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग प्राचीन धार्मिक केन्द्र जो इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह क्षेत्र प्रारंभ से ही श्रद्धा - परायण, आचारवान और विचारवान धर्मात्माओं का केन्द्र रहा। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और यह क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। इस क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति इस बात की ओर संकेत करती है कि यह क्षेत्र पूर्व में देश का सम्पन्न, उन्नत व विकसित क्षेत्र रह चुका है। पर हमारा यह दुर्भाग्य ही है कि आज हम इस मूल्यवान निधि प्राचीन संस्कृति की रक्षा के प्रति उदासीन हैं और इसी-लिये यह अत्यंत मूल्यवान निधि शनैः शनैः नष्ट होती जा रही है और यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह सम्पूर्ण निधि अनायास ही काल के गाल में समा जायेगी।

सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पर्यटन व पुरातत्व की दृष्टि से धनी ललितपुर जनपद में सभी हिन्दू सम्प्रदाय के प्राचीन धर्म-स्थल हैं पर बहुलता व कलात्मक दृष्टि से जैन धर्म-स्थल का महत्व अधिक है। यहाँ के हिन्दू धर्म और जैन धर्म से संबंधित मंदिरों के निर्माण में तत्कालीन शासकों की धार्मिक सहिष्णुता तो प्रदर्शित होती ही है पर साथ ही साथ कुशल कलाकारों के हृदय में व्याप्त अप्रत्यक्ष कला का अनोखा सौन्दर्य भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इतना ही नहीं इन मंदिरों के निर्माण में जहाँ एक ओर कलाप्रिय शासकों ने अपनी कलाप्रियता का प्रदर्शन किया है वहाँ दूसरी ओर उस काल की जनता ने भी अपने असीम धार्मिक भावनाओं का प्रदर्शन अनेक मंदिरों के निर्माण द्वारा कराया।

जनपद ललितपुर के विभिन्न स्थानों में अनेक जैन मंदिर जो आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद हैं । ये स्थान हैं - §अ§ देवगढ़, §ब§ चाँदपुर-जहाजपुर, §स§ दुधई , §द§ मदनपुर , §य§ बानपुर , §र§पावा गिरि §पवाजी§ , §ल§ सिरौन, §व§ सिरोनजी §सिरोन खुर्द§ , §श§गिरार, §ष§ ललितपुर । इन स्थानों में प्राप्त जैन मंदिर धार्मिक और कलात्मक महत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं । यहाँ प्राप्त जैन मंदिरों का विवरण इस प्रकार है-

§अ§ देवगढ़ -

देवगढ़ एक महत्वपूर्ण पुरातात्त्विक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है । इस स्थान का गरिमापूर्ण इतिवृत्त है जो भारत के ऐतिहासिक ,पुरातात्त्विक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक पटल पर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।[1] यह उत्तर प्रदेश के ललितपुर जनपद में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर बेतवा के किनारे , 24° 32′ उत्तरी अक्षांश और 78° 15′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है ।[2] यह स्थल मध्य रेलवे के दिल्ली - बम्बई मार्ग के ललितपुर स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम में 33 किलोमीटर की एक पक्की सड़क से जुड़ा है तथा उसी रेलवे के जाखलौन स्टेशन से इसकी दूरी 13 किलोमीटर है ।[3]

देवगढ़ विंध्याचल की पश्चिमी उपत्यका में स्थित नैसर्गिक छटा से भरपूर छोटा सा गांव है । यह बेतवा के मुहाने पर निचाई पर बसा हुआ है । देवगढ़ का प्राचीन दुर्ग किला पर्वत पर है वह उत्तर दक्षिण में लगभग एक मील लम्बा और पूर्व पश्चिम में लगभग छः फर्लांग चौड़ा है । इसके नीचे एक आधुनिक दिगम्बर जैन मंदिर , विशाल जैन धर्मशाला , साहू जैन संग्रहालय और शासकीय वन विश्राम गृह भी है । ग्राम के उत्तर में प्रसिद्ध दशावतार मंदिर तथा शासकी संग्रहालय है । पूर्व में पहाड़ी पर उसके दक्षिण पश्चिमी कोने में एक विशाल प्राचीर है । जिसके पश्चिम में कुंज द्वार और पूर्व में हाथी दरवाजा है । इसके मध्य एक और प्राचीर से घिरा दूसरा कोट कहते हैं इसी के मध्य वर्तमान जैन मंदिर और अन्य जैन स्मारक हैं ।[4]

1- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ,ले० एस०डी०त्रिवेदी , पृ० 76 .
2- देवगढ़ की जैन कला ,ले०भागचन्द्र जैन , पृ० 4 .
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-प्रकाशन, बलभद्र जैन, पृ०179.
4- देवगढ़ की जैन कला , ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 5 .

इस स्थान का नाम देवगढ़ कब से पड़ा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । यहां प्राप्त अभिलेखों से देवगढ़ के विभिन्न नामों का पता -चलता है : गुर्जर प्रतिहार नरेश के शासन कालीन विक्रम संवत् 919 के शिला-लेख के अनुसार पहले इस स्थान का नाम लुअच्छगिरि था ।[1] 12 वीं शताब्दी में चन्देलवंशी राजा कीर्ति वर्मा के मंत्री वत्सराज ने इस स्थान पर एक नवीन दुर्ग का निर्माण कराया और अपने स्वामी के नाम पर इसका नाम कीर्तिगिरि रखा । इसी कारण इस स्थान का कीर्तिगिरि पड़ा ।[2]

संभवतः 12 वीं शताब्दी के अंत में या 13 वीं शताब्दी के प्रारंभ में इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया । देवगढ़ नाम पड़ने के कारण के सम्बन्ध में ऐकमत्य नहीं है । श्री पूर्ण चन्द्र मुकर्जी के मतानुसार सन् 850 से 969 ई0 तक इस स्थान पर देव वंश का शासन था । इसलिए इस गढ़ को देवगढ़ कहा जाने लगा ।[3] किन्तु यह मत इतिहास सम्मत नहीं है क्योंकि इस काल में यहां गुर्जर प्रतिहार वंशीय राजाओं का राज्य था ।[4] मंदिर संख्या 12 के अर्द्धमण्डप के दक्षिण-पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण संवत् 919 के अभिलेख के अनुसार उस स्तम्भ के प्रतिष्ठापक आचार्य कमलदेव के शिष्य श्रीदेव बड़े प्रभाव-शाली थे उन्होंने यहां पर भट्टारक गद्दी की स्थापना की थी । अतः यह सम्भावना है कि आचार्य श्रीदेव के नाम पर उनके भक्तों और अनुयायियों ने इस स्थान को देवगढ़ नाम से प्रसिद्ध किया हो ।[5] तीसरा मत जो अधिक बुद्धिगम्य प्रतीत होता है यह है कि यहां दुर्ग के अंदर देवमूर्तियों की प्रचुरता होने के कारण इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ा ।[6] एक बहु प्रचलित किंवदन्ती के अनुसार इस स्थान

1- मंदिर संख्या 12 के अर्द्ध मण्डप के दक्षिण-पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण विक्रम संवत 919 का अभिलेख - देखिए परिशिष्ट । क्रमांक 4.

2- देवगढ़ दुर्ग के दक्षिण-पश्चिम में राजघाटी के किनारे कीर्ति वर्मा के मंत्री वत्सराज द्वारा संवत 1154 में उत्कीर्ण अभिलेख देखिए परिशिष्ट क्रमांक 6.

3- रिपोर्ट ऑन दि एन्टीक्विटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर भाग-1 : ज्योति प्रसाद जैन वीर विशेषांक, 1956, पृ0 42.

4- दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज : भारतीय विद्या भवन, जिल्द 4 पृ0 83.

5- मंदिर सं0 12 के अर्द्ध मण्डप के दक्षिण-पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण संवत 919 का अभिलेख देखिए परिशिष्ट । क्रमांक 4.

6- देवगढ़ की जैन कला, डा0 भागचन्द्र जैन, पृ0 7.

में देवपत और खेवपत नामक दो भाई रहते थे । उनके पास पारस मणि थी जिससे वे वैभव सम्पन्न हो गये थे । अपनी सम्पत्ति का उपयोग उन्हों-ने भव्य देवालय बनवाने में किया । सम्भवतः उसी देवपत के नाम पर इसका नाम देवगढ़ पड़ गया।[1] दूसरी किंवदन्ती के अनुसार इस स्थान की रचना देवों द्वारा की गयी थी तथा उनकी सूक्ष्म कला की स्मृति के रूप में इसे देवगढ़ कहा जाता है ।[2]

निष्कर्ष रूप में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यहाँ उपलब्ध सहस्त्रों देव प्रतिमाओं और देवायतनों के कारण ही यह स्थान देवगढ़ के नाम से विख्यात हुआ ।

इस क्षेत्र के चमत्कार के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं । कुछ लोगों का विश्वास है कि क्षेत्र पर रात्रि के समय देव लोग पूजन के लिये आते हैं । वे आकर नृत्यगान पूर्वक पूजन करते हैं । कुछ ऐसे प्रत्यक्षदर्शी भक्त लोग हैं जिन्होंने रात्रि के समय मंदिरों से नृत्य और गान की ध्वनि आती सुनी है। शान्तिनाथ भगवान मनोकामना पूर्ण करते हैं ऐसा लोगों का विश्वास है । इसीलिये यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहा जाता है ।[3]

<u>देवगढ़ के जैन मंदिर –</u> देवगढ़ के सभी जैन मंदिरों का सूक्ष्म सर्वेक्षण किया गया है । जो मंदिर ध्वस्त हो चुके हैं उनकी मौलिकता का अनुमान बिखरे हुए अवशेषों, श्री ए० कनिंघम, डा० फ्यूहरर, सर जान मार्शल तथा दयाराम साहिनी आदि के विवरणों, चित्रों और विशेषताओं के आधार पर किया गया है। मंदिरों के क्रमांक, सुविधा की दृष्टि से मैंने वही स्वीकार किये हैं जो श्री साहनी द्वारा, उनके स्थित क्रम से निर्धारित किये गये थे और वह कालांतर में शिलाओं पर उत्कीर्ण कराये जाकर मंदिरों से संलग्न कर दिये गये थे । परन्तु वर्तमान में श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी ललितपुर ने पूर्व क्रमांक बदल कर नये क्रमांक संलग्न कर दिये हैं ।[4]

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 7,
2- वही वही पृ० 7,
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग 1 संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ० 194.
4- नये क्रमांक के लिए परिशिष्ट 2 देखिए .

यहाँ पर 31 बड़े जैन मंदिर[1] और 9 छोटे जैन मंदिर हैं ।[2] इस प्रकार यहाँ कुल 40 जैन मंदिर हैं । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है :-

[अ] बड़े मंदिर -

मंदिर संख्या 1 -[दे० चित्र सं० 1]

माप-
अधिष्ठान की लम्बाई [पूर्व-पश्चिम] 33फी. 3इंच
अधिष्ठान की चौड़ाई [उत्तर-दक्षिण] 31फी. 6इंच
अधिष्ठान की ऊँचाई [3फी. 10इंच
मण्डप की लम्बाई [उत्तर-दक्षिण] 20फी. 1, 1/2इंच
मण्डप की चौड़ाई [पूर्व-पश्चिम] 7फी. 4 इंच
लम्बाई में एक स्तम्भ से दूसरे स्तम्भ का अंतर- 5फी. 1इंच
चौड़ाई में एक स्तम्भ से दूसरे स्तम्भ का अंतर- 5फी. 6इंच
स्तम्भ की कुर्सी समचतुष्कोण- 1 फी. 1, 1/2 इंच
मण्डप की ऊँचाई - [अधिष्ठान से] 9फी. 3इंच

विवरण - ऊपर जाते समय सीधे हाथ की ओर यह मंदिर है । इस मंदिर का उल्लेख श्री कनिंघम[3] और श्री साहनी[4] ने मंदिर संख्या 2 के रूप में किया है । उन्होंने मंदिर संख्या 1 के रूप में किसी मंदिर का उल्लेख नहीं किया है ।

यह पूर्वाभिमुख मंदिर जो कभी 20 स्तम्भों पर आधारित रहा होगा[5], अब 4-4 स्तम्भों की दो पंक्तियों पर आधारित है । स्तम्भों पर एक सादा मण्डप है जिसका पुनर्निर्माण बाद में हुआ प्रतीत होता है । मध्य के चार स्तम्भ इसके मौलिक अंश हैं , जब कि शेष चार किसी अन्य स्थान से । स्तम्भों की प्रथम पंक्ति के मध्य भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा मोतियाँ जड़ दी गयी हैं । इनमें खड्गासन और पद्मासन दोनों ही अवस्थाओं की मूर्तियाँ हैं । पश्चिम की

1- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट , ए०एस०आई० [1917-18]: दयाराम साहनी पृ० 6.
2- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ / प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ०180, 185-86 .
3- आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट्स [कलकत्ता 1880]:ए०कनिंघम, जिल्द-10 पृ० 104 .
4- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ दि सुपरिन्टेन्डेन्ट , हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट मोनुमेन्ट्स, नार्दन सर्किल , 1918: दयाराम साहनी , पृ० 9 .
5- आ०स०इ०रि० :ए०कनिंघम, जिल्द 10, पृ० 104 .

दीवार पर पंच-परमेष्ठियों की मूर्तियां भिन्न 2 अवस्था में उकेरी हुई हैं ।[1]

मंदिर संख्या - 2 [दे० चित्र सं० 2]

माप - अधिष्ठान की लं० [पूर्व-पश्चिम] 24फी. 7इंच
अधिष्ठान की चौ० [उत्तर-दक्षिण] 23फी. 2इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई - समतल
मण्डप की चौ० 7 फीट
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई - 8 फीट
गुमटी का अधिष्ठान समचतुष्कोण 8फी. 4इंच
अधिष्ठान से गुमटी के आधार की ऊंचाई 7फी. 10इंच
गुमटी की [उसके आधार से] ऊंचाई -7फी. 6इंच
गुमटी की परिधि - 17फी.

विवरण - सादी बनावट और गर्भ गृह आदि के अभाव से इस मंदिर को उक्त युग का माना जा सकता है ।[2] मूलरूप में यह चार-चार स्तम्भों की चार पंक्तियों पर आधारित था लेकिन आज पूर्व के चारों स्तम्भ नहीं हैं । इनमें से दो की चौकी आज भी है । बाहरी स्तम्भों का अन्तर शिलाखण्डों द्वारा बन्द है। अतः मंदिर के मध्य में केवल दो स्तम्भ ही रह गए हैं, शेष सब दीवार के अंग बन गए हैं ।[3]

इस पूर्वाभिमुख मंदिर के पश्चिम में भी एक द्वार है जो पत्थर की जाली से बन्द कर दिया गया है ।[4] इस मंदिर से लगा हुआ कोई मण्डप भी रहा होगा जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं ।[5]

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 12.
[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर : भाग 1: दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रुन, पृ0 32.
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 12.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 181.
4- वही वही पृ0 181
5 [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 12.
[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर : भाग 1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रुन, पृ0 33.

मंदिर में स्थायी रूप से मूर्तियों को स्थापित करने के लिये कोई वेदी नहीं है, इस कारण तथा पूर्व और पश्चिम की ओर के दो बरामदों या मण्डपों की सम्भावना से प्रतीत होता है कि यह भवन प्रारंभ में मंदिर के रूप में नहीं बल्कि साधुओं या भट्टारकों आदि के निवास के रूप में उपयोग में लाया जाता रहा होगा। इस समय इसमें दस मूर्तियाँ स्थापित हैं।

मंदिर संख्या -3 [दे० चित्र सं० 3]

माप - अधिष्ठान की लं० [पूर्व-पश्चिम] 40 फी. 8 इंच
अधिष्ठान की चौ० [उत्तर-दक्षिण] 37 फी. 9 इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई - 1 फी. 6 इंच
मण्डप की चौ० - 7फी. 4 इंच
मण्डप के आगे के खुले चबूतरे की चौ० 5 फी. 1 इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई - 9 फी. 2 इंच

विवरण - यह उत्तराभिमुख है। यह पूर्व-पश्चिम की आठ-आठ स्तम्भों की तीन और सात स्तम्भों की दो पंक्तियों पर आधारित है। प्रथम और द्वितीय स्तम्भ पंक्ति पर खुला मण्डप और द्वितीय से पाँचवीं स्तम्भ पंक्ति पर मंदिर आधारित है। इसमें पूर्व की ओर दो द्वार हैं। यह सम्पूर्ण मंदिर चौथे और पाँचवें स्तम्भ के मध्य [उत्तर-दक्षिण] 8 इंच चौड़ी एक दीवार द्वारा दो भागों में विभाजित था। परन्तु अब दीवार तोड़ कर एक दूसरे को संबंधित कर दिया गया है। इसके उत्तरार्द्ध की छत सपाट थी लेकिन पूर्वार्द्ध पर दूसरी मंजिल भी थी। दूसरी मंजिल गिर जाने से अब यह एक ही मंजिल का रह गया है।[1]

पूर्वार्द्ध में 11 अंकित मूर्तियाँ हैं जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति अत्यन्त भव्य है। उत्तरार्द्ध में 26 शिला फलक विद्यमान हैं जिन पर विभिन्न मूर्तियाँ अंकित हैं।[2]

1-[अ]- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 181.
[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग-1: दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रुन, पृ0 33.

2- [अ] वही वही पृ0 181.
[ब] वही वही पृ0 33.

मंदिर संख्या 4 [दे० चित्र सं० 4]

माप - अधिष्ठान की लं० [उत्तर-दक्षिण] 28फी. 6इंच
अधिष्ठान की चौ० [पूर्व-पश्चिम] 24फी. 8इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई 1 फी. 6इंच
मण्डप की लं० [पूर्व-पश्चिम] 7 फी. 3 इंच
मण्डप की चौ० [उत्तर-दक्षिण] 4 फी. 11 इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 10 फी. 3 इंच
छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई 10 इंच
गुमटी का अधिष्ठान समचतुष्कोण 6 फी.
गुमटी की परिधि 17 फी.
गुमटी की उसके अधिष्ठान से ऊंचाई 5 फी. 10इंच

विवरण - यह दक्षिणाभिमुख है । 18 स्तम्भों पर आधारित है। आगे को निकले हुए दो स्तम्भ मण्डप का निर्माण करते हैं , जिसके ऊपर चार स्तम्भों पर आधारित एक सादी गुमटी है ,दायां स्तम्भ एक अतिरिक्त चतुष्कोण चौकी पर स्थित है । उसके चारों ओर विभिन्न देवियों का अंकन है । इसके ऊपर यह अष्टकोण हो जाता है । चारों कोनों पर एक फिट तीन इंच लम्बी साकलों से घंटियां लटक रही हैं । चतुष्कोण शीर्ष के चारों ओर तीर्थंकरों और उपाध्यायों की पद्मासन मूर्तियां अंकित हैं ।[1]

प्रवेश द्वार अलंकृत है । मंदिर के अठारह स्तम्भों में से दो स्तम्भ मंडप के अन्तर्गत हैं , बारह को दीवार में चुन दिया गया है और शेष चार मंदिर के बीच में स्थित हैं । चारों स्तम्भ एक अतिरिक्त चतुष्कोण चौकी पर स्थित हैं । दीवारों के भीतर अनेक मूर्तियां जड़ी हुयी हैं ।[2]

इसका दो बार जीर्णोद्धार हुआ है प्रथम बार बारहवीं शती में , जिसका संकेत प्रवेश द्वारा के दांये पक्ष में उत्कीर्ण एक लेख में मिलता है और दूसरी बार 1917-18 में ।[3]

मंदिर संख्या - 5 - [सहस्त्रकूट चैत्यालय] [दे० चित्र सं० 5-8]

माप- प्रथम अधिष्ठान समचतुष्कोण 18 फी. 2 इंच
प्रथम अधिष्ठान की ऊंचाई 2 फी. 6 इंच
द्वितीय अधिष्ठान समचतुष्कोण 11 फी. 7,1/2 इंच
द्वितीय अधिष्ठान की ऊंचाई प्रथम अधिष्ठान से 2फी. 1इंच
प्रथम अधिष्ठान से शिखर के अधिष्ठान की ऊंचाई12फी4,1/2
शिखर के अधिष्ठान से शिखर की प्रथम मेखला 4फी. 3इंच
शिखर के अधिष्ठान से शिखर की अनुमानित ऊंचाई 13फी.

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 14 :
2- वही वही पृ० 14 :
3-ए०प्रो० रि०भाग-2 , [illegible] 1919 , पृ० [illegible]

विवरण - इस मंदिर का नाम सहस्त्रकूट चैत्यालय पूर्णतः सार्थक है । एक सहस्त्र चैत्यों [प्रतिमाओं] का आलय [स्थान] जहाँ हो उसे सहस्त्रकूट चैत्यालय नाम देना उचित ही है । पूर्वी द्वारके भीतर की ओर ऊपर जड़े हुए एक शिलालेख के आठवीं पंक्ति से इसकी पुष्टि होती है । श्री कनिंघम ने किसी स्थानीय व्यक्ति के कहने से इसे लक्षापुतली का मंदिर कहा है । [1]

यह पूर्वाभिमुख है । पूर्व और पश्चिम की ओर दो द्वार हैं । इन पर सुन्दर अलंकरण है । उत्तर और दक्षिण में द्वार की आकृति का कटाव है और उसमें एक-एक कपाट की बनावट में शिलाफलक संयोजित किया गया है । इससे दोनों दिशाओं में एक एक बन्द दरवाज़े का आभास होता है । चैत्यालय में 1008 मूर्तियाँ बनी हुयी हैं । मंदिर के द्वार पर चंवरधारी यक्ष -यक्षिणी और द्वारपाल की मूर्तियाँ बनी हुई हैं । [2]

मंदिर संख्या - 6 [दे० चित्र सं० 9]

माप - अधिष्ठान की लं० [उत्तर-दक्षिण] 35 फी. 8इं०

अधिष्ठान की चौ०[पूर्व-पश्चिम] 24 फी. 5 इं०

अधिष्ठान की ऊंचाई 1 फी. 6 इं०

मंदिर की लं० [पूर्व-पश्चिम] 13 फी. 4 इं०

मंदिर की चौ०[उत्तर-दक्षिण] 8 फी. 7, 1/2 इं०

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 9 फी. 3 इं०

छत से शिखर के अधिष्ठान की ऊंचाई 1 फी. 4, 1/2इं०

छत से शिखर की ऊंचाई - 6 फीट

शिखर अठपहलू

विवरण - यह मंदिर पूर्वाभिमुख है तथा चार स्तम्भों पर बना हुआ है । इसमें सात तीर्थंकर मूर्तियाँ दीवार में जड़ी हुयी हैं ।

1- ए०एस०आई०आर० ,जिल्द 10: कनिंघम ,पृ० 104 .

2- [अ] देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 15 .

[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन-संपादन ,बलभद्र जैन पृ० 181 .

[स] स्टडीज़ इन साउथ एशियन कल्चर भाग 1 ,दि जिन इमेजेज़ आफ देवगढ़, ले० क्लाउज़ ब्रुन , पृ० 34 .

[द] "देवगढ़ दर्शन", ले० उत्तमचन्द्र राकेश शास्त्री , पृ० 7 .

इस मंदिर में एक मूर्ति भगवान पार्श्वनाथ की है जिसके सिर पर सर्प-फण नहीं है किन्तु दोनों ओर दो विशाल सर्प बने हैं। कहा जाता है कि पुरानी रीति यही है।[1]

मंदिर संख्या 7 - [दे0 चित्र सं0 12]

माप - प्रथम अधिष्ठान समचतुष्कोण 12फी. 4, 1/2 इं0

द्वितीय अधिष्ठान समचतुष्कोण 8फी. 1, 1/2 इं0

प्रथम अधिष्ठान की ऊंचाई 2फी. 9इं0

द्वितीय अधिष्ठान की ऊंचाई प्रथम अधिष्ठान से 9 इं0

प्रथम अधिष्ठान से शिखर के अधिष्ठान की ऊंचाई 10फी. 3इं0

शिखर के अधिष्ठान से शिखर की ऊंचाई 6फी. 9इं0

शिखर की परिधि 16 फी.

चरणपादुका की वेदी की ऊंचाई 3 इं0

चरण पादुका का शिलापट समचतुष्कोण 2 फी. 5 इं0

विवरण - यह पूर्वाभिमुख मंदिर चार स्तम्भों पर आधारित है तथा चारों ओर से खुला है इसमें प्रवेश के लिये सीढ़ियां उत्तर और दक्षिण में हैं। इसकी छत का अन्तर्भाग अलंकृत है। इसमें चरणपादुकाओं के दो शिलाफलक विद्यमान हैं।[2]

मंदिर संख्या 8 -[दे0 चित्र सं0 13]

माप - अधिष्ठान की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 21फी. 11इं0

अधिष्ठान की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 20 फी.

अधिष्ठान की ऊंचाई 5 इं0

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 8फी. 6इं0

मंदिर की लं0 17फी. 11 इं0

मंदिर की चौ0 9फी. 1 इं0

1[अ]- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागःसंकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 181.

[ब] देवगढ़ दर्शन ले0 उत्तमचन्द्र राकेश शास्त्री, पृ0 8.

2[अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0भागचन्द्र जैन, पृ0 16.

[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग-1: दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रुन, पृ0 34.

विवरण - आठ स्तम्भों पर आधारित लम्बाकार मण्डप और तीन द्वारों वाला यह पूर्वाभिमुख मंदिर किसी भी लक्षण से मंदिर सिद्ध नहीं होता । डा० भागचन्द्र जैन के अनुसार इसमें साधु या कोई अन्य व्यक्ति निवास करता रहा होगा । बांयी ओर के द्वार की चौखट के ऊपर तीर्थंकर की मूर्ति अंकित है ।[1] परन्तु यह द्वार का हिस्सा कभी जीर्णोद्धार के संदर्भ में बदला गया होगा ।[2]

मंदिर संख्या 9 -

माप - अधिष्ठान की ऊंचाई 8इं०

मण्डप की लं० {उत्तर-दक्षिण} 22फी. 11इं०

मण्डप की चौ० {पूर्व-पश्चिम} 20 फी. 2 इं०

इसके पश्चात् आकार कम होकर निम्नमात्र रह जाता है।

गर्भ गृह की लं० {उत्तर-दक्षिण} 19फी. 10इं०

गर्भ गृह की चौ० {पूर्व-पश्चिम} 8फी.

विवरण - इस पूर्वाभिमुख मंदिर के अग्र भाग {पूर्व} में एक चबूतरा है जिस पर कदाचित पहले अतिरिक्त मण्डप रहा होगा , जैसा कि इस पर बांयी ओर विद्यमान अर्द्ध खण्डित दीवार तथा उष्णीष रखने के स्थानों से अनुमान होता है । इस चबूतरे की लं० {पूर्व-पश्चिम} 11 फी. 9इं० है और अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 10 फी. 3 इं० है । छत सपाट है ।

मंदिर का प्रवेश द्वार अलंकृत है । द्वार पर गंगा-यमुना तथा अन्य देवी-देवताओं का अंकन है । इस मंदिर के गर्भ गृहमें 6इंच ऊंची , 1 फी. 10 इं० चौ० तथा 7 फी. 8 इं० लम्बी एक वेदी है जिस पर 12 शिलाफलकों पर विभिन्न मूर्तियां विद्यमान हैं ।[3]

1- {अ} भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भागः संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ०181.
{ब} स्टडीज़ इन साउथ इंडियन कल्चर, भाग 1 ;दि जिन इमेजेज़ आफ देवगढ़, ले० क्लाउस ब्रुन , पृ० 34 .

2- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 17 .

3- {अ} देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 17 .
{ब} भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भागःसंकलन-संपादन , बलभद्र जैन ,पृ०181-82
{स} स्टडीज़ इन साउथ इंडियन कल्चर ,भाग-1;दि जिन इमेजेज़ ऑफ देवगढ़ , ले० क्लाउस ब्रुन , पृ० 34 .

मंदिर संख्या 10 - [दे० चित्र सं० 14-15]

माप - अधिष्ठान समचतुष्कोण 12 फी. 2, 1/2 इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई 1 फी. 2 इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 8 फी. 10 इंच
शिखर के अधिष्ठान से शिखर की ऊंचाई 4 फी. 8 इंच

विवरण - यह मंदिर चार अठपहलू स्तम्भों पर आधारित साधारण से गुमटीदार मण्डप के रूप में है । इसके मध्य में उत्तर से दक्षिण एक पंक्ति में तीन चतुष्कोण स्तम्भ स्थित है । इसमें प्रत्येक की गुमटी खण्डित है । स्तम्भ 6 फीट ऊँचे हैं । जीर्णोद्धार के समय दो में दो ताम्र पत्र मिले थे जिनसे सम्वत् 1100 का आभास होता था । इन तीनों स्तम्भों के चारों ओर देवकुलिकाओं में तीर्थंकर, साधु, साध्वी और उदासीन श्रावकों की मूर्तियाँ अंकित हैं और कई अभिलेख उत्कीर्ण हैं । [1]

मंदिर संख्या - 11 . [दे० चित्र सं० 16]

माप - मंदिर की लं० §उत्तर-दक्षिण§ 40फी. 4 इंच
मंदिर की चौ० §पूर्व-पश्चिम§ 30फी.
अधिष्ठान समतल एवं मंदिराकार
अधिष्ठान से पहले खण्ड की ऊंचाई 8फी. 1 इंच
पहले खण्ड की छत से दूसरे खण्ड की छत की ऊंचाई 9फी. 3इं
ऊपर की गुमटी की ऊंचाई 3फी. 9इंच
ऊपर की गुमटी की परिधि 5फी. 1 इंच

विवरण - यह उत्तराभिमुख दो मंजिल का पंचायतन शैली का मंदिर है । इसके बहिर्भाग पर सादी पंक्तियाँ हैं । 8 स्तम्भों पर इसका मण्डप बना हुआ है प्रवेश द्वार सुन्दर एवं अलंकृत है । इसमें एक महामण्डप है । महामण्डप में, भित्तियों में चुने हुए बारह स्तम्भों के अतिरिक्त चार मध्यवर्ती स्तम्भ हैं । गर्भ गृह में तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं, जिनमें से एक दूसरे खण्ड से लाकर रखी गयी है।

1§अ§ - देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 17-18 .
§ब§ - स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर, भाग-1: दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले० क्लाउस ब्रून, पृ० 34-35 .

उत्तर पूर्व के कोने में दूसरे खण्ड के लिए सीढ़ियाँ हैं। दूसरे खण्ड पर महामण्डप का द्वार भी अलंकृत है। उन पर मूर्तियाँ बनी हुयी हैं। यहाँ 25 शिलाफलक हैं जिनमें 18 पर खड्गासन (कायोत्सर्ग) और सात पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हुयी हैं। दक्षिण की ओर वेदी पर (गर्भगृह में) पाँच मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिनमें से एक नवीन सफेद संगमरमर की है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार अलंकृत है।[1]

दूसरे खण्ड की छत पर (गर्भगृह के ऊपर एक लघु शिखराकार पाषाण खण्ड स्थापित है। डा0 भागचन्द्र जैन के अनुसार इसे जीर्णोद्धार के समय स्थापित किया गया है।[2]

मंदिर संख्या 12 – [दे0 चित्र सं0 17-19, 25-26]

माप– अर्द्ध मण्डप की लं0 (उत्तर-दक्षिण) 12फी. 8 इंच

अर्द्ध मण्डप की चौ0 (पूर्व-पश्चिम) 11फी. 9इंच

अर्द्ध मण्डप की छत की ऊँचाई 13फी. 8इंच

अर्द्ध मण्डप और महामण्डप के बीच के चबूतरे की लं0 (उत्तर-दक्षिण) 42फी. 9इंच

चबूतरे की चौ0 (पूर्व-पश्चिम) 16फी. 4इंच[3]

चबूतरे की ऊँचाई 3फी. 5इंच

महामण्डप का अधिष्ठान समचतुष्कोण 42फी. 9इंच[4]

महामण्डप के अधिष्ठान की ऊँचाई 2फी. 10इंच

अंतराल और महामण्डप के बीच का अन्तर 6इंच

अंतराल की लं0 (उत्तर-दक्षिण) 10फी.

अंतराल की चौ0 (पूर्व-पश्चिम) 7फी. 2इंच

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 18.
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग-1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउस ब्रुन, पृ0 35.

2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 18.

3– (अ) श्री कनिंघम ने इसे 16फी. 7इंच नापा था। दे0 ए0एस0आई0आर0, जिल्द 10, पृ0 101.
(ब) श्री फ्यूहरर ने इसे 16फी. 9इंच नापा था दे0 दि मोनुमेन्टल एन्टीक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्शन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध: फ्यूहरर, पृ0 120.

4– श्री कनिंघम और श्री फ्यूहरर दोनों ने इसका नाप 42फी. 9इंच किया था। दे0 क्रमशः (अ) ए0एस0आई0आर0 जिल्द 10, पृ0 100, (ब) मा0ए0ए0इ0, पृ0 120.

अन्तराल के बायीं ओर की मढ़िया की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 9फी. 9इंच
अन्तराल के बायें ओर की मढ़िया की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 7फी. 2इंच
अन्तराल के बायें ओर के अधिष्ठान की ऊँचाई 1फी. 9इंच
अन्तराल के दायें ओर की मढ़िया की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 10फी. 6इंच
अन्तराल के दायें ओर की मढ़िया की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 7फी. 2इंच
अन्तराल के दायें ओर के अधिष्ठान की ऊँचाई - 1फी. 9इंच
प्रदक्षिणापथ के अधिष्ठान की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 40फी. 5इंच
प्रदक्षिणापथ के अधिष्ठान की चौ0[उत्तर-दक्षिण] 35फी. [1]
प्रदक्षिणापथ की चौ0 भीतर की ओर 4फी. 3इंच
प्रदक्षिणापथ के अधिष्ठान की ऊँचाई 2फी. 9इंच
तलघ से महामण्डप के छत की ऊँचाई 15फी. 4 इंच
तलघ से प्रदक्षिणापथ के छत की ऊँचाई 17फी.
छत से अंगशिखर की ऊँचाई 22फी.
छत से सम्पूर्ण शिखर की अनुमानित ऊँचाई 45 फी.

विवरण - यह अत्यंत भव्य पश्चिमाभिमुख मंदिर है । और पंचायतन शैली[2] का सन्धारप्रासाद[3] है । पहले अर्द्ध मण्डप बना हुआ है । उसमें से 6 सीढ़ियों को पार करने पर एक चबूतरा आता है । फिर 6-6 स्तम्भों की 6 पंक्तियों पर आधारित एक महामण्डप है । महामण्डप के बायें तीन फी. के स्थान में महामण्डप के फर्श से 1फी. 6इंच ऊँची और 42फी. लम्बी वेदी बना दी गयी है और उस पर 20 शिलापट स्थापित कर दिये गये हैं , जिनमें से दो पर पद्मासन और शेष पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । महामण्डप से अन्तराल में पहुँचा जाता है जिसके दायें बायें एक-एक मढ़िया विद्यमान है । बायीं ओर की मढ़िया में शीत-धुली

1- श्री कनिंघम और श्री फ्यूहरर ने इसका माप क्रमशः 39फी. 2इंच और 34फी. 3इंच प्रस्तुत किया है ।कि0 कनिंघम; पूर्वो. पृ0 100 और फ्यूहरर: वही,पृ0 120.
2- पंचायतन शैली के दो रूप प्रचलित थे।प्रथम रूप में वे मंदिर आते हैं जिनमें मुखमण्डप, महामण्डप, अन्तराल, गर्भगृह और प्रदक्षिणापथ, ये पाँच अंग [आयतन] होते हैं । द्वितीय रूप में वे मंदिर आते हैं जिनके चारों कोनों पर एक-एक मंदिर [1+4=5] और होता है ।
3- ऐसा प्रासाद जिसमें प्रदक्षिणापथ होता है ।

चक्रेश्वरी और दांयी ओर की मढ़िया में पद्मावती यक्षी की मूर्तियां थीं। जिन्हें अब साहू संग्रहालय में पहुंचा दिया गया है। प्रदक्षिणापथ में 54 शिला फलक हैं जिनमें से 6 पर पद्मासन और शेष पर कायोत्सर्ग आसन तीर्थंकरों की विशालाकार मूर्तियां अंकित हैं इनमें से 15 अभिलिखित हैं। अन्तराल से चार सीढ़ियों द्वारा उतर कर गर्भगृह में पहुंचा जाता है। इसमें एक 12 फी. ऊंची विशालकाय कायोत्सर्ग आसन तीर्थंकर मूर्ति है, जो यहां की मौलिक मूर्ति है। इसके अलावा प्रवेश द्वार से सटी हुयी दांये बांये दो तथा विशालाकार मूर्ति के दोनों ओर एक-एक चमरधारी की और उनके भी पश्चात् एक-एक अम्बिका की मूर्तियां हैं।

यह यहां का ऐतिहासिक और भव्य मंदिर है। इसके महामण्डप में 18 लिपियों और भाषाओं वाला ज्ञानशिला नामक सुप्रसिद्ध अभिलेख उत्कीर्ण है। इसी के अर्द्धमण्डप के एक स्तम्भ पर गुर्जरप्रतिहार वंशी राजा भोज का समय और राज्य सीमा निर्धारित करने वाला अभिलेख उत्कीर्ण है। इसके प्रवेश द्वार और शिखर अत्यंत कलापूर्ण तथा भव्य हैं। इसके प्रदक्षिणापथ की बहिर्भित्तियों पर जैन शासन देवियों की सुन्दर और महत्वपूर्ण मूर्तियां अंकित हैं।[1]

मंदिर संख्या 13

माप - अधिष्ठान की लं० [पूर्व-पश्चिम] 35 फी.
अधिष्ठान की चौ० [उत्तर-दक्षिण] 18 फी.
अधिष्ठान - समतल
मण्डप की लं० [पूर्व-पश्चिम] 25 फी. 6 इंच
मण्डप की चौ० [उत्तर-दक्षिण] 8 फी. 5इंच
गर्भगृह की लं० [उत्तर-दक्षिण] 8 फी. 5 इंच
गर्भगृह की चौ० [पूर्व-पश्चिम] 6 फी. 2इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 10 फी.

विवरण- इस मंदिर का मण्डप उत्तराभिमुख है, जब कि इसका गर्भगृह पूर्वमुख है। इसके मण्डप में 20 शिला पट्टों पर विभिन्न तीर्थंकरों की

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 19-20.
[ब] स्टडीज इन साउथ रशियन कल्चर, भाग 1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले० क्लाउस ब्रुन, पृ० 35-39.

कायोत्सर्ग आसन और पद्मासन मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह में चार वेदियों पर विद्यमान सात शिलापट्टों पर तीर्थंकरों की आठ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह मूर्तियाँ कला और सज्जा की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।[1]

मंदिर संख्या 14 -

माप - अधिष्ठान की लं0 {पूर्व-पश्चिम} 26 फी.

अधिष्ठान की चौ0 {उत्तर-दक्षिण} 25 फी. 6, 1/2 इंच

अधिष्ठान की ऊँचाई 8 इंच

अधिष्ठान सेक मण्डप के अधिष्ठान की ऊँचाई 9, 1/2इंच

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊँचाई 8 फी. 5 इंच

अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊँचाई 10 फी. 1 इंच

विवरण - आठ चतुष्कोण स्तम्भों पर मण्डप आधारित है। फिर गर्भगृह है। गर्भगृह को 5 फी. 10 इंच ऊँचे शिलाफलकों की दीवार खड़ी कर दो कक्ष में विभाजित कर दिया गया है और प्रत्येक कक्ष में स 3 फी. 5 इंच ऊँचे और 1 फी. 9, 1/2 इंच चौड़े एक-एक द्वार हैं। दायें कमरे में 6 शिलापट्टों पर 6 कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ तथा बायें कमरे में 7 शिलापट्टों पर विभिन्न तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। दायें कक्ष की 3 और बायें कक्ष की 1 अभिलिखित है। इसमें एक मंदिर की अपेक्षा निवास स्थान के लक्षण अधिक प्रतीत होते हैं।[2]

मंदिर संख्या 15 - [दे० चित्र सं० 27]

माप - मंदिर की लं0 {पूर्व-पश्चिम} 36 फी. 2 इंच

मंदिर की चौ0 {उत्तर-दक्षिण} 31 फी. 1 इंच

अधिष्ठान {मंदिराकार} की ऊँचाई 3 फी. 3 इंच

छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊँचाई 2 फी. 8 इंच

गुमटी का अधिष्ठान समचतुष्कोण 8 फी. 10 इंच

छत से शिखर के आधार की ऊँचाई 13 फी. 1 इंच

1अ- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 20.

ब- स्टडीज इन साउथ इण्डियन कल्चर, भाग-1 ; दि शिल्प-इमेजेज ग्रुप, देवगढ़, ले0 वही

क- क्लाउज ब्रुन, पृ0 39.

2अ- वही वही वही पृ0 21

शिखर के आधार से शिखर की ऊँचाई 9 फी.

शिखर की परिधि 21 फी. 8 इंच

विवरण - यह पश्चिमाभिमुख है । आठ स्तम्भों पर अर्धमण्डप बना हुआ है । इसमें पाँच शिलापट्ट हैं जिनमें से चार अपनी वेदियों पर अवस्थित हैं । उनमें से दो पर पद्मासन और तीन पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । एक पर एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण है । प्रवेश द्वारकी चौखट कलापूर्ण और अलंकृत है ।

महामण्डप चार-चार स्तम्भों की चार पंक्तियों पर आधारित है उसमें 18 शिलापट्ट रखे हैं जिनमें से 6 लघु वेदियों पर और 2 पर एक-एक पंक्ति का लेख उत्कीर्ण है । बाहरी तरफ के 12 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं और शेष चार मध्य में हैं जो अत्यंत अलंकृत हैं । महामण्डप की चारों दिशाओं में एक-एक गर्भगृह है । पश्चिमी गर्भगृह अर्धमण्डप का भी काम करता है और उसके दाँये-बाँये एक-एक वेदी है । उत्तरी गर्भगृह में बाहर की ओर एक विशाल पद्मासन और उसके दोनों ओर एक-एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । भीतर की ओर अनेक मूर्तिखण्ड रखे हैं । पूर्वी गर्भगृह में बाहर की ओर द्वार पर गंगा यमुना एवं भीतर एक विशाल पद्मासन तथा दोनों ओर एक-एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । इस गर्भगृहकी भीतरी ओर बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की पद्मासन मूर्ति है । इसके बाँयी ओर पार्श्वनाथ की एक पद्मासन मूर्ति भी है । दक्षिणी गर्भगृह की बाहरी ओर दो कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ हैं, जिनके मध्य अब एक सीढ द्वार है । अनुमान है कि इस द्वार के स्थान पर कोई मूर्ति रही होगी । इस गर्भगृह के भीतर अनेक मूर्तिखण्ड हैं । [1]

1[अ] - देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 21.

[ब] - भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ0183,

[स] - स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग। : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउस ब्रुन, पृ0 40.

मंदिर संख्या 16 - [दे० चित्र सं० 28]

माप - अधिष्ठान की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 49 फी. 4इंच
अधिष्ठान की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 29 फी. 10 इंच
अधिष्ठान की ऊँचाई 1 फी.
अधिष्ठान से अर्धमण्डप की छत की ऊँचाई 10फी. 2इंच
अधिष्ठान से महामण्डप की छत की ऊँचाई 11 फी.
महामण्डप की छत से गुमटी के छत की ऊँचाई - 7फी.
गुमटी की छत से शिखर की ऊँचाई 8फी. 8इंच
गुमटी की परिधि - 16फी. 5 इंच

विवरण - यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है । इसमें चार स्तम्भों पर मण्डप बना है और 6-6 स्तम्भों की पंक्तियों पर एक महामण्डप बना है । इसका तोरण अंकुश है । महामण्डप के बाहर 14 स्तम्भों को दीवार में चुन दिया गया है , अतः इसके मध्य केवल चार स्तम्भ शेष हैं । महामण्डप में 25 शिखराकार शिलापट्टों में से आठ पर पद्मासन तथा 16 पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर तथा एक पर अम्बिका की मूर्तियाँ अंकित हैं ।[1]

मंदिर संख्या 17 -

माप - अधिष्ठान की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 44फी. 8इंच
अधिष्ठान की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 42फी. 2इंच
अधिष्ठान की ऊँचाई 2फी. 5 इंच
मण्डप [पूर्व-पश्चिम] 8 फी.
महामण्डप की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 34 फी.
महामण्डप की चौ0 [उत्तर-दक्षिण] 24फी. 6इंच
अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 10फी. 11इंच
छत पर विमान गुमटी के अधिष्ठान की ऊँचाई 10 इंच
छत से गुमटी के छत की ऊँचाई 8फी. 9इंच
गुमटी के आधार की ऊँचाई 1फी. 1इंच
गुमटी के छत से शिखर की ऊचाई 7फी. 6इंच

1-[अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 22 .
[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर , भाग-1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़ ,

शिखर की परिधि – 14फी. 10 इंच

विवरण – यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है इसका मण्डप 8 स्तम्भों पर खड़ा है। जिसके सामने के 4 स्तम्भों के अतिरिक्त अन्य4 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं। मण्डप में 3 शिलापट्टों पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं। प्रवेश द्वार अलंकृत है। महामण्डप में मध्यवर्ती 4 स्तम्भ अपनी मूल स्थिति में हैं, शेष 12 दीवारों में चुने हुए हैं। महामण्डप में 31 शिलापट्ट हैं जिनमें से 22 पर कायोत्सर्गासन और 9 पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं।[1]

मंदिर संख्या –18 [दे० चित्र सं० 3]

माप – अधिष्ठान की लं0 [उत्तर-दक्षिण] 67फी. 6इंच
अधिष्ठान की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 26फी. 9इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई 4फी.
मण्डप के आगे के छायाहीन चबूतरे की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 26फी. 9इंच
मण्डप के आगे के छायाहीन चबूतरे की चौ0 [उ0-द0] 25फी. 6इंच
मण्डप के चबूतरे के अधिष्ठान की ऊंचाई 1फी. 10इंच
चबूतरे की छत की ऊंचाई 12फी. 6इंच
छत से शिखर के आधार की ऊंचाई 9 इंच
शिखर के आधार से शिखर की ऊंचाई 12फी. 6इंच
आधार से 90^0 के कोण तक 4फी. 10इंच और इसके पश्चात् शिखर अधपतू हो जाता है।

विवरण – यह दक्षिणाभिमुख मंदिर है। इसकी शैली खजुराहो के स्मारकों जैसा प्रतीत होती है। चबूतरे पर 2 स्तम्भ खड़े हैं। मण्डप 8 स्तम्भों पर आधारित है जिनमें पीछे के 4 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं। मण्डप में सात शिलापट्ट हैं जिनमें 3 शिलापट्टों पर पद्मासन और 4 पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं।

1– [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 22-23.
[ब] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर, भाग-1 दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउस ब्रुन, पृ0 40.
[स] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 183.
[द] देवगढ़ दर्शन, ले0 उत्तमचन्द्र [illegible] शास्त्री, पृ0 13.

महामण्डप का प्रवेश द्वार अत्यंत अलंकृत है और उस पर अंकित मदनिकायें, युग, धार्मिक-सामाजिक एवं संगीत प्रधान दृश्य अंकित हैं । महामण्डप 16 स्तम्भों पर आधारित है जिसके 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं । इसमें 11 शिलापट्टों पर पद्मासन और 8 पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं । इस मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार का शिरदल बहुत नीचा है, प्रतीत होता है कि चौखट का ऊपरी भाग बदला गया है । द्वारपक्षों पर गंगा-यमुना का अंकन है । गर्भगृह में 5 शिलापट्ट जड़े हुए हैं । गर्भगृह में 7फी. 7इंच × 2फी. 2, 1/2इंच की एक विशालाकार कायोत्सर्गासन मूर्ति है । अनुमान है कि पहले मूर्ति स्थापित करके बाद में गर्भगृह का निर्माण किया गया और द्वार फोड़ कर उसे मूल मंदिर से संबंधित कर दिया गया होगा ।[1]

मंदिर संख्या 19 .

माप - अधिष्ठान की लं0 {उत्तर-दक्षिण} 40 फी.

अधिष्ठान की चौ0 {पूर्व-पश्चिम} 28 फी.

अधिष्ठान की ऊंचाई- 8इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई -10फी. 2इंच

छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई 1फ. 5इंच

छत से गुमटी के छत की ऊंचाई 11फी. 10इंच

गुमटी की छत से गुमटी के शिखर की ऊंचाई 7फी. 3इंच

शिखर की परिधि - 16फी. 9इंच

विवरण - यह दक्षिणाभिमुखी मंदिर है । प्रवेश द्वार गंगा-यमुना, नाग-नागी, तीर्थंकर मूर्तियों तथा बाहुबली और चक्रवर्ती भरत की मूर्तियों से सुसज्जित है । इसके मण्डप में 8 स्तम्भ हैं जिसमें पीछे के 4 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं। महामण्डप में 16 स्तम्भ हैं जिसमें मध्य के 4 स्तम्भों के अलावा शेष 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं । इसमें 12 शिलापट्ट हैं जिनमें से 7 के शीर्ष कटे हुए हैं ।[2]

1- {अ} देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 23.
{ब} स्टडीज इन साउथ इंडियन ... भाग-1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउस ब्रुन, पृ0 40-41 .

2- {अ} वही वही वही पृ0 24 .
{ब} वही वही वही पृ0 41 .

मंदिर संख्या 20 -

माप - अधिष्ठान मंदिराकार तीन इंच ऊँचा
मंदिर की लं० [पूर्व-पश्चिम] 25फी. 8इंच
मंदिर की चौ० [उ०-द०] 23फी. 8इंच
अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 10फी.

विवरण - इस दक्षिणाभिमुख मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना और तीर्थंकर आदि की मूर्तियों का अंकन है । मण्डप में 24 स्तम्भ हैं जिनमें से 4 बारह पहलू स्तम्भों के अलावा शेष 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं । इसमें 27 शिलापट्ट हैं जिनमें से 14 पर कायोत्सर्गासन और 13 पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं । गर्भगृह का द्वार साधारण अलंकृत है । गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं जिनमें से 3 पर पद्मासन और 2 पर कायोत्सर्गासन मूर्तियां अंकित हैं । भगवान महावीर की पद्मासन मूर्ति अत्यंत सुन्दर एवं मनोज्ञ है ।[1]

मंदिर संख्या 21 -[दे० चित्र सं. 29]

माप - मंदिर की लं० [पूर्व-पश्चिम] 34फी. 10इंच
मंदिर की चौ० [उ०-द०] 10फी. 11इंच
मंदिर का अधिष्ठान समतल

विवरण - इस मंदिर में पूर्व और पश्चिम में एक-एक कक्ष और उनके मध्य में एक मण्डप है । मण्डप की लं० 18फी. 6इंच तथा पूर्व और पश्चिम के कक्षों की लं० 8 फी. 2इंच है । यह समतल मंदिर है । अनुमान है कि प्राचीन स्मारक के स्थान पर एक नवीन कृति है । इसमें पूर्व और पश्चिम में एक दूसरे के सामने द्वार वाले दो कक्ष हैं । पश्चिम के पूर्वाभिमुख कक्ष में 8 शिलापट्ट हैं जिनमें से एक पर पद्मासन और सात पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं । इनमें से तीन पर अभिलेख हैं । एक भव्य मूर्ति का सिर मूर्ति भंजकों द्वारा काट लिया गया है । पूर्व के पश्चिमाभिमुख कक्ष में 8 शिलापट्ट हैं । इसकी 4 मूर्तियों के सिर मूर्तिभंजकों द्वारा 1959 ई० में काट कर ले जाये गये हैं । दोनों कक्षों के मध्य में 8 स्तम्भों पर आधारित एक मण्डप है, जिसके

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 24.
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादक, बलभद्र जैन, पृ० 184.
[स] स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिज्म, भाग-1 :दि जिन इमेजेज ऑफ देवगढ़, ले० क्लाउस ब्रुन, पृ० 41.

मध्यवर्ती 2 स्तम्भों के अतिरिक्त शेष 6 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं । यहाँ एक स्तम्भ खण्ड है जिस पर 6 पंक्तियों का एक अभिलेख है । इसके अतिरिक्त एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर की खण्डित मूर्ति है ।[1]

मंदिर संख्या 22 . [दे॰ चित्र॰सं॰ 3]

माप – मंदिर की लं0 §उ0-द0§ 6फी. 9इंच

मंदिर की चौ0§पूर्व-पश्चिम§ 5फी. 2इंच

अधिष्ठान §मंदिराकार§ की ऊँचाई 5इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 7फी. 8इंच

छत से शिखर के आधार की ऊँचाई 10इंच

छत से शिखर की ऊँचाई 6फी. 4 इंच

शिखर की परिधि 14फी. 4 इंच

विवरण – यह दक्षिणाभिमुख मंदिर है । इसका मण्डप 2 स्तम्भों और प्रवेश द्वार के उत्तरांग पर आधारित है । प्रवेश द्वार के ऊपर एक पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है । दीवारों के बहिर्भाग पर तीनों ओर शिखराकृतियाँ अंकित हैं । गर्भगृह में तीन शिलापट्टों पर 3 पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं ।[2]

मंदिर संख्या 23 .

माप – मंदिर की लं0 §उ0-द0§ 14फी. 10 इंच

मंदिर की चौ0§पूर्व-पश्चिम§ 8फी.

मंदिर के सामने बढ़ा हुआअधिष्ठान 6फी. 10 इंच

सतह से अधिष्ठान की ऊँचाई 2फी. 8इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 6फी. 3इंच

छत से गुमटी के आधार की ऊँचाई 10इंच

छत से गुमटी की ऊँचाई 5फी. 3इंच

गुमटी – चतुष्कोण

---

1 §अ§ देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 24-25 .
§ब§ भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ , प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 184.
§स§ स्टडीज इन साउथ शोबियन कैम्पर, भाग-1:दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0क्लाउस ब्रुन, पृ0 41.

2- §अ§ वही वही वही पृ0 25 .
§ब§ वही वही वही पृ0 184.
§स§ वही वही वही पृ0 41 .

विवरण – गर्भगृह के सामने अतिरिक्त अधिष्ठान शायद मण्डप का अवशेष है । प्रवेश द्वार अलंकृत है । इसके ऊपर 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ के यक्ष पार्श्व का अंकन है । गर्भगृह में 1फी. 6इंच ऊंची, 1फी. 7इंच चौ0 और 3फी. 10इंच लं0 वेदी पर एक भी मूल मूर्ति स्थापित नहीं है । यहां 5 शिलापट्ट हैं जिनमें से 3 पर कायोत्सर्गासन और 1 पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां तथा एक पर अम्बिका की मूर्ति अंकित है । यह मंदिर अपने आकार प्रकार से सहस्त्रकूट चैत्यालय का आभास देता है ।[1]

मंदिर संख्या 24 .

माप – अधिष्ठान की लं0§उ0-द0§ 15फी. 2इंच
अधिष्ठान की चौ0 §पूर्व-पश्चिम§ 9फी. 3इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई 2फी. 5 इंच
अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई 7फी. 7इंच
अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊंचाई 7फी. 11इंच
गर्भगृह के छत से गुमटी के आधार की ऊंचाई 9इंच
गर्भगृह के छत से शिखर की ऊंचाई 7फी. 11इंच
गुमटी – अप्राप्त ।

विवरण – यह दक्षिणाभिमुखा मंदिर अधिष्ठान और उसके ऊपर लगभग 2 फी. की ऊंचाई तक ही मूल रूप में अवशिष्ट है । जीर्णोद्धार के समय इसे इसके मूल रूप के अनुरूप ही निर्मित कराया गया है । इसके मण्डप से आगे अलंकृत प्रवेश द्वार है जिसपर गंगा-यमुना तथा तीर्थंकर मूर्तियों का भव्य अंकन है । प्रवेश द्वार के ऊपर एक पंक्ति का अभिलेख है । गर्भगृह में 5 शिलापट्ट दीवारों में चुने हुये हैं इनमें 2 अभिलिखित हैं । शिलापट्टों में से 3 पर पद्मासन ,एक पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां और एक पर धरणेन्द्र - पद्मावती §यक्ष-यक्षी§ का अंकन है ।[2]

1§अ§ – देवगढ़ की जैन कला,ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 26 .
§ब§ – भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन,बलभद्र जैन,पृ0 184.

2§अ§ – देवगढ़ की जैन कला,ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 26.
§ब§ – स्टडीज इन साउथ रीजनल कल्चर,भाग-1:दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़,ले0क्लाउस ब्रुन पृ0 41-42.
§स§ –भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन,बलभद्र जैन, पृ0 184 .

मंदिर संख्या 25 .

माप – अधिष्ठान की लं० [पूर्व-पश्चिम] 25फी. 10इंच
अधिष्ठान की चौ० [उ०-द०] 15फी. 10इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई 1फी. 1इंच
अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई 7फी. 7इंच
अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊंचाई 8फी. 6 इंच
गर्भगृह की छत से शिखर की ऊंचाई 5फी. 5 इंच
शिखर में 14 चतुष्कोण मेखलायें

विवरण – यह पूर्वाभिमुख मंदिर है । इसका मण्डप 4 स्तम्भों पर आधारित है जिनमें से सामने के दो स्तम्भों के अतिरिक्त शेष 2 दीवारों में चुने हुए हैं । प्रवेश द्वार साधारण है । उसके सिरदल के मध्य में कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ का अंकन है। इस मूर्ति के नीचे एक पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है । गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं । जिनमें 2 पर पद्मासन और 3 पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन है ।एक मूर्ति अभिलिखित भी है ।[1]

मंदिर संख्या 26 .

माप – मंदिर की लं० [पूर्व-पश्चिम] 29फी. 10इंच
मंदिर की चौ०[उ०-द०] 28 फी. 9इंच
अधिष्ठान मंदिराकार समतल
अधिष्ठान[सतह]से मण्डप के छत की ऊंचाई 9फी. 9इंच
अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊंचाई 8फी. 5इंच

विवरण – इस पूर्वाभिमुख मंदिर का मण्डप 8 स्तम्भों पर आधारित है। सामने के मध्यवर्ती 2 स्तम्भों के अतिरिक्त 6 दीवारों से सटे हुए हैं । मण्डप के दाएं और बांये 3फी . 7इंच ऊंचे , 8 फी. 4इंच लंबे तथा 2फी. 10इंच चौड़े चबूतरे हैं । मण्डप में 5 शिलापट्ट हैं , जिनमें से केवल एक पर मात्र भामण्डल शेष है । संभवतः उसकी मूर्ति काट ली गई है । प्रवेश द्वार साधारण है । इसके सिरदल पर मध्य में 5 फणावलियुक्त कायोत्सर्ग सुपार्श्वनाथ का अंकन है । गर्भगृह में 12 स्तम्भ हैं जिनमें से

1– [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 26-27 .
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ :प्रथम भाग: संकलन-संपादन ,बलभद्र जैन, पृ०184.

मध्यवर्ती 2 के अतिरिक्त शेष 10 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं । सभी स्तम्भ सादे और चतुष्कोण हैं । गर्भ-गृह में 13 शिलापट्ट हैं जिनमें से 7 पर अभिलेख है । 1959 ई0 में मूर्तिभंजकों ने यहाँ के कुछ तीर्थंकर मूर्तियों और । धरणेन्द्र - पद्मावती के सिर काट लिये थे ।[1]

मंदिर संख्या 27 . [दे० चित्र सं. 32]

माप - अधिष्ठान की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 23 फी.
अधिष्ठान की चौ0 [उ0-द0] 13फी. 9इंच
अधिष्ठान [समतल] से छत की ऊंचाई 6फी. 11इंच
छत से शिखर की ऊंचाई 6फी. 7इंच
शिखर का आधार [उ0-द0] 6 फी. 8 इंच
शिखर का आधार [पूर्व-पश्चिम] 5 फी. 9इंच
शिखर मेखलाबद्ध .

विवरण - यह पूर्वाभिमुख मंदिर है । मण्डप दीवारों से आवृत्त है । मण्डप के प्रवेश द्वार के सिरदल पर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रा में ,उनके दायें पार्श्वनाथ और बायें सुपार्श्वनाथ का कायोत्सर्गासन में अंकन है । दायीं ओर एक पंक्ति का अभिलेख है । गर्भगृह के द्वार के ऊपर मध्य में कायोत्सर्गासन ऋषभनाथ अंकित हैं । गर्भगृह में दो शिलापट्ट हैं जिनमें से एक पर चौबीसी का अंकन है ।[2]

मंदिरसंख्या 28 [दे० चित्र सं.33]

माप - अधिष्ठान की लं0 [उ0-द0] 20फी. 8इंच
अधिष्ठान की चौ0 [पूर्व-पश्चिम] 21फी.
अधिष्ठान की ऊंचाई - समतल
मंदिर की लं0 [उ0-द0] 25फी. 11इंच
मंदिर की चौड़ [पूर्व-पश्चिम] 16फी.
मण्डप के छत की ऊंचाई 9फी. 8इंच
गर्भगृह के छत की ऊंचाई 11फी. 6इंच
अंग-शिखर की 90⁰ के कोण तक ऊंचाई [गर्भगृह की छत से]6फी. 8
उसके ऊपर के त्रिकोण की अनुमानित ऊंचाई 5फी.

1- देवगढ़ का जैन कला लै0 भागचन्द्र जैन , पृ0 27 .
2- वही वही0 पृ0 27 .

मुख्य शिखर की अनुमानित ऊंचाई (गर्भगृह की छत से) 25फी.

विवरण - यह पूर्णभद्र शैली में निर्मित दक्षिणाभिमुख मंदिर है । इसका अर्द्धमण्डप वर्तमान में छायाहीन है । उसके सामने के 2 स्तम्भों के चिन्हों से और मण्डप की छत से इसकी छत के जुड़े होने के स्पष्ट प्रमाणों से निश्चित है कि इस पर छाया थी । मण्डप का प्रवेश द्वार अलंकृत है । मण्डप का आकार बहुत छोटा है । गर्भगृह 2 सीढ़ी उतर कर निचाई पर है । इसमें 7 शिलापट्ट हैं जिनमें 2 पर पद्मासन और 5 पर कायोत्सर्गासन मूर्तियां हैं । इनमें से 3 अभिलिखित हैं ।

मुख्य शिखर अधिष्ठान से प्रारंभ होता है और लगभग 16फी. तक सम और उसके ऊपर अधिकाधिक पतला होता जाता है । दक्षिण में प्रवेश द्वार के ऊपर एक अंगशिखर है जिस पर सुन्दर अलंकरण एवं परिकर के मध्य तीर्थंकर मूर्तियां हैं । इसकी एक देवकुलिका का तोरण और मुख्य मूर्ति टूट कर गिर गयी थी । जीर्णोद्धार के समय दूसरी मूर्ति तो वहां स्थापित कर दी गयी है परन्तु तोरण आज भी अनुपलब्ध है ।[1]

मंदिर संख्या 29 .

माप - मंदिर की लं० (पूर्व-पश्चिम) 12फी. 3इंच
मंदिर की चौ० (उ०-द०) 12फी.
अधिष्ठान-समतल
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 7फी.

विवरण - यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है । इसका प्रवेश द्वार सामान्य अलंकृत है और इसके सिरदल पर 3 तीर्थंकर मूर्तियां हैं । मंदिर में एक मात्र लघु कक्ष है । इसकी वेदी पर 6 शिलापट्ट हैं । इनमें से एक (संवत् 1201 अभिलिखित) चौबीसी और दूसरा किसी विशाल मूर्ति के अलंकरण का अंश ,महत्वपूर्ण हैं । चौबीसी के पृष्ठ भाग में , एक शिलापट्ट पर मात्र भामण्डल और सिंहासन शेष हैं ।अनुमान है कि इसकी मूर्ति किसी मूर्तिभंजक द्वारा काट ली गयी है ।[2]

1- (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 28 .
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ तृतीय भाग लेखन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ० 185.
2- (अ) वही वही वही पृ० 28.
(ब) वही वही वही पृ० 185 .

मंदिर संख्या 30. [दे० चित्र सं० 35]

माप - अधिष्ठान की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 24फी. 4इंच

अधिष्ठान की चौ0 [उ0-द0] 15फी. 10इंच

अधिष्ठान - समतल

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 10 फी. 3 इंच

विवरण - यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसका मण्डप 8 स्तम्भों पर आधारित है। यह 6फी. 9इंच चौड़ा और 9फी. 5इंच लम्बा है। प्रवेश द्वार सामान्यरूप से अलंकृत है। इसके सिरदल पर 3 तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन है। इसके गर्भगृह में मध्यवर्ती 2 स्तम्भों के अतिरिक्त शेष दीवारों में चुने हुए हैं। इसमें तीन वेदियाँ हैं पर मूल मूर्ति एक भी नहीं है। गर्भ-गृह में 12 शिलापट्ट हैं जिनमें से 3 अभिलिखित हैं। श्री साहनी ने इस मंदिर में 4फी. 5इंच की एक कायोत्सर्गासन मूर्ति के सिंहासन पर एक अभिलेख की सूचना दी है।[1] इस मंदिर में शैया पर लेटी जिन-माता का अंकन बहुत भव्य है।[2]

मंदिर संख्या 31. [दे० चित्र सं० 36-37]

माप - अधिष्ठान की लं0 [पूर्व-पश्चिम] 14फी.

अधिष्ठान की चौ0 [उ0-द0] 12फी. 9इंच

अधिष्ठान - समतल

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 9फी.

विवरण - यह दक्षिणाभिमुख मंदिर है। इसका प्रवेश द्वार अलंकृत है। इसके दोनों पक्षों पर सबसे नीचे गंगा-यमुना और सिरदल पर दायें पुस्तक एवं वीणा-धारिणी सरस्वती तथा मध्य में तीर्थंकर शान्तिनाथ का अंकन है, जब कि बायीं ओर की देवी खण्डित हो चुकी है। तीर्थंकर मूर्ति के दोनों ओर अंकित देव-देवियों में नाग और नागी का अंकन है। गर्भगृह में वेदिका पर शंख चिन्ह से अंकित एकमात्र शिलापट्ट पर तीर्थंकर नेमिनाथ की एक विशाल पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है।[3]

1- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट 1917-18 : दयाराम साहनी पृ0 20.

2- [अ] देवगढ़ की जैन कला, डॉ0 भागचन्द्र जैन, पृ0 29.
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185.
[स] स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग-1 : दि जिन इमेजेज ऑफ देवगढ़, क्लाउस ब्रुन, पृ0 42.

3- [अ] वही वही वही पृ0 29.
[ब] वही वही वही पृ0 185.
[स] वही वही वही पृ0 42.

{ब} लघु मंदिर -

लघु मंदिर संख्या -1

माप- अधिष्ठान की लं0 {उ0-द0} 12 फी. 8इंच

अधिष्ठान की चौ0 {पूर्व-पश्चिम} 8फी. 6इंच

अधिष्ठान-समतल

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई 7फ. 5इंच

अधिष्ठान से गर्भगृहकी ऊंचाई 8फी.

विवरण - यह लघु उत्तर मुख मंदिर , मंदिर सं0 12 के दक्षिण में पूर्व की ओर स्थित है । इसका 4 स्तम्भों पर आधारित मण्डप साधारण और प्रवेश द्वार अलंकृत है । प्रत्येक दीवार के बाहरी भाग पर 4 स्तम्भाकृतियाँ हैं,और उनके मध्य में एक-एक शिखरयुक्त देवकुलिका का अंकन है,जिनमें एक-एक पद्मासन तीर्थंकर उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं ,जिनमें से 2 पर पद्मासन और शेष पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । [1]

लघु मंदिर संख्या-2 .

माप - अधिष्ठान मंदिराकार समतल

मंदिर की लं0 {पूर्व-पश्चिम} 5फी. 10 इंच

मंदिर की चौ0 {उ0-द0} 5फी. 9इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 8फी. 2इंच

विवरण - यह लघु उत्तरमुखा मंदिर , मंदिर सं0 12 के दक्षिण में मध्य में है । इसका प्रवेश द्वार साधारण है । पार्श्व की दीवारों पर 5 - 5 और पीछे की दीवार पर 4 अलंकृत स्तम्भाकृतियाँ हैं । गर्भगृह में 3 शिलापट्ट हैं ,जिनमें एक पर कायोत्सर्गासन और 2 पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं ।[2]

लघु मंदिर संख्या -3

माप - अधिष्ठान मण्डपाकार

मण्डप की लं0 {पूर्व-पश्चिम} 8 फी.

1{अ} - देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 30 .
{ब} - भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन,बलभद्र जैन,पृ0 185 .
2- {अ} वही वही वही वही पृ0 30.
{ब} वही वही वही पृ0 185

मण्डप की चौ० §उ०-द०§ 7फी. 1इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 11फी. 1इंच

विवरण- यह लघु मंदिर, मंदिर सं०12 के दक्षिण में पश्चिम की ओर है। यह मंदिर मण्डपाकार है और तीन ओर से खुला है। इसमें एक§7फी. 3इंच x 2 फी. 2इंच§तीर्थंकर मूर्ति है जिसके दोनों ओर चँवरधारक थे लेकिन बांयी ओर की चँवरधारक मूर्ति काट ली गयी है। [1]

लघु मंदिर संख्या -4

माप - अधिष्ठान - समतल

मंदिर समचतुष्कोण 5फी. 7इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई 7फी. 3इंच

छत से शिखर की ऊँचाई 5फी. 6इंच

शिखर की परिधि 15फी. 5इंच

विवरण - यह लघु मंदिर, मंदिर सं० 13 के सामने है। यह दक्षिणाभिमुख एक गुमटीदार मंदिर है जिसका जीर्णोद्धार बहुत बड़ी मात्रा में किया गया है। प्रवेश द्वार साधारण अंकित है। द्वार पक्षों पर नीचे गंगा-यमुना और सिरदल पर मध्य में एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है। पश्चिमी दीवार पर 4 स्तम्भाकृतियाँ हैं, और उनके मध्य में एक शिखरयुक्त मण्डपाकृति है जिसमें एक कायोत्सर्गा-सन तीर्थंकर अंकित हैं। उत्तरी और पूर्वी दीवार पर भी यही दृश्य अंकित है, परन्तु पूर्वी दीवार पर शिखरयुक्त मण्डपाकृति मध्य में न होकर तीसरे और चौथे स्तम्भों के मध्य में है। गर्भ गृह में एक 5इंच ऊँची, 2फी. 7इंच लम्बी और 1फी. 3इंच वेदी है जिस पर कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त 2 शिलापट्ट भी हैं जिन पर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं। [2]

लघु मंदिर संख्या-5

माप - अधिष्ठान मंदिराकार

मंदिर की लं० §पूर्व-पश्चिम§ 12फी. 6इंच

1§अ§-देवगढ़ की जैन कला, लें० भागचन्द्र जैन, पृ० 30.

§ब§- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ० 185.

2- §अ§ वही वही पृ० 31.
§ब§ वही वही पृ० 185.

मंदिर की चौ0 (उ0-द0) 8फी.

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 7फी. 9इंच

विवरण - यह लघु मंदिर, मंदिर सं0 15 के पीछे स्थित (बड़ी मढ़िया के रूप में) है। यह पश्चिमाभिमुख है। इसके प्रवेश द्वार के सिरदल के मध्य में एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर प्रतिमा है। इसके बाहर की दीवार सपाट किन्तु योजनाबद्ध है। इसकी पूर्वी दीवार से उत्तर की ओर नवनिर्मित जैन चहारदीवारी जुड़ जाती है। इसके गर्भगृह में तीन ओर वेदियाँ बनी हैं जिन पर 6 शिलापट्ट हैं। इनमें से 3 पर कायोत्सर्गासन और 3 पर पद्मासन मूर्तियाँ अंकित हैं।[1]

लघु मंदिर संख्या -6

माप - अधिष्ठान मंदिराकार

मंदिर समचतुष्कोण 5फी. 2इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 6फी. 4इंच

विवरण- यह लघु पश्चिमाभिमुख मंदिर, मंदिर सं0 15 के पीछे स्थित (छोटी मढ़िया के रूप में) है। इसका प्रवेश द्वार साधारण अंलकृत है। इसके सिरदल के मध्य में पद्मासन तीर्थंकर अंकित हैं। दीवारों पर स्तम्भाकृतियाँ और उनके मध्य के स्थानों पर सुन्दर पत्रावली का अंकरण है। इसकी छत एक प्रस्तरीय है। इसके गर्भगृह में तीनों ओर नवनिर्मित लघु वेदियों पर 5 शिलापट्ट हैं जिनमें से एक पर पद्मासन और शेष चार पर कायोत्सर्गासन तीर्थंकरों का अंकन है।[2]

लघु मंदिर संख्या-7.

माप - अधिष्ठान मंदिराकार 1फी. ऊंचा

मंदिर समचतुष्कोण 5फी. 9इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 6 फी. 6 इंच

विवरण - यह लघु उत्तराभिमुख मंदिर सं0 19 के सामने स्थित है।

1- (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 31.
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185-86.

2-(अ) वही वही पृ0 32.
(ब) वही. वही पृ0 186.

प्रवेश द्वार साधारण अलंकृत है । बाहरी दीवारों पर चार-चार स्तंभाकृतियाँ अंकित हैं । गर्भगृह में स्थित 4 शिलापट्टों में से एक पर पद्मासन और शेष कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ अंकित हैं ।[1]

लघु मंदिर संख्या -8 .

माप - अधिष्ठान की लं0 §पूर्व-पश्चिम§ 21फी. 7इंच
अधिष्ठान की चौ0 §उ0-द0§ 8फी. 4इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 7फीट

विवरण - यह लघु पूर्वाभिमुख मंदिर , मंदिर सं0 26 के उत्तर में है। प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार करके बनाया गया है । प्रवेश द्वार के सिरदल के मध्य में कायोत्सर्गासन तीर्थंकर अंकित हैं । गर्भगृह में चार शिलापट्ट हैं जिनमें चार कायोत्सर्गासन और एक पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं ।एक मूर्ति पर अभिलेख भी है । [2]

लघु मंदिर संख्या -9 .

माप - अधिष्ठान की लं0 §पूर्व-पश्चिम§ 21फी. 5इंच
अधिष्ठान की चौ0 §उ0-द0§ 13फी. 10इंच
अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 6फी. 10इंच

विवरण - यह लघु पूर्वाभिमुख मंदिर ,मंदिर सं0 27 के दक्षिण में है यह 2 कक्षों में विभाजित है । दोनों में प्रवेश द्वार हैं । यह पूर्णतः खण्डित किसी भवन पर निर्मित आधुनिक मंदिर है । बायें कक्ष में 2 शिलापट्ट हैं जिन पर 2 पद्मासन और 2 कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । दायें कक्ष में 1 शिलापट्ट है जिस पर 2 कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं और 2 छोटे छोटे अभिलेख अंकित हैं । [3]

स्तम्भ - यहाँ छोटे बड़े 19 स्तम्भ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है -

स्तम्भ सं0 1. यह मंदिर सं0 1 के आगे बना हुआ है ।इसकी ऊंचाई 5फी. 3इंच

---

1 §अ§ -देवगढ़ की जैनकला , लेO भागचन्द्र जैन, पृ0 32 .
§ब§ भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग ,संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ0 186.
2 §अ§ वही वही वही पृ0 32.
§ब§ वही वही वही पृ0 186.
3 §अ§ वही वही वही पृ0 32-33 .
§ब§ वही वही वही पृ0 186 .

और परिधि 3फी. ।ऊँच है । इसके ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुयी हैं ,उनमें 4 कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ अंकित हैं । दक्षिणी देवकुलिका के नीचे अर्द्धचन्द्रलांछन बना हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति चन्द्रप्रभ भगवान की है । इस सादे स्तम्भ के पूर्वी भाग में एक स्तम्भ लेख है।[1]

[दे० चित्र सं० 39]

स्तम्भ सं0 2 -/ यह मंदिर सं0 1 के पीछे उत्तर में स्थित है । इसके नीचे के भाग में 4 देवकुलिकाओं में अम्बिका, चक्रेश्वरी ,धरणेन्द्र और पद्मावती बने हैं। स्तम्भ के मध्य में कीर्तिमुखों के चारों ओर घंटियाँ लटक रही हैं ।इसके ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुई हैं जिनमें 3 पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ बनीं हैं और दक्षिणी देवकुलिका में उपाध्याय परमेष्ठी की उपदेश मुद्रा में मूर्ति है । उनके निकट एक चौकी है ,पीछी-कमण्डल भी अंकित है। उनके बांयी ओर हाथ जोड़े हुए एक भक्त बैठा है । पश्चिमी देवकुलिका में पंचफणावलि युक्त सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है । शेष 2 मूर्तियाँ चिन्ह रहित हैं । स्तम्भ की ऊंचाई सवा दस फी. है ।[2]

[दे० चित्र सं० 39]

स्तम्भ सं0 3 -/ यह मंदिर सं0 1 के पीछे मध्यवर्ती मानस्तम्भ है । इसके नीचे के भाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं । उत्तर की देवकुलिका में सिंहासनारूढ़ा अम्बिका अपने दोनों बालकों और आम्रगुच्छक सहित हैं । पूर्व में गरुड़ पर बैठी चक्रेश्वरी हैं। दक्षिण में नाग और पश्चिम में नागिन है । इसके ऊपर कीर्तिमुखों से कलापूर्ण घंटियाँ लटक रही हैं । कीर्तिमुखों के ऊपर देवकुलिकायें बनी हैं । पूर्व में पीछी -कमण्डलु सहित 6 मुनि उपदेश मुद्रा में हैं ,दक्षिण में पीछी-कमण्डलु सहित विनय मुद्रा में 6 आर्यिकायें , पश्चिम में 3 साधु , 3 आर्यिकायें क्रम से पीछी सहित और उत्तर की ओर बांये से श्रावक-श्राविका और साधु साथ जुड़े हैं । इसके मध्य में आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में आसीन हैं । यहाँ तक स्तम्भ चतुष्कोण है । इसके पश्चात पाषाण गोल हो गया है । फिर कोपकों के ऊपर 4 देवकुलिकाओं में चार पद्मासन मूर्तियाँ हैं । पूर्व और दक्षिण में हरिण चिन्ह वाली शान्तिनाथ

1-[अ] देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 38 .
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन,पृ0 186.
2- [अ] वही वही पृ0 35 .
[ब] वही वही पृ0 186 .

की मूर्ति है । पश्चिम में फणायुक्त पार्श्वनाथ हैं । उत्तर की देवकुलिका में उपदेशमुद्रा में आचार्य परमेष्ठी हैं । उनके सामने श्रावक बैठे हैं । इनके ऊपर भी देवकुलिकायें हैं । इसकी ऊँचाई चौकी सहित 16फी. है ।[1]

[दे० चित्र सं० 39]

स्तम्भ सं० 4 – यह मंदिर सं० 1 के पीछे दक्षिण में है । अधोभाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं । इनमें क्रमशः नाग, नागी, अम्बिका, और महाकाली हैं । मध्य भाग में कीर्तिमुखों से घंटिकायें लटक रही हैं । इनके ऊपर देवकुलिकायें हैं । दक्षिण की देवकुलिका में उपाध्याय और शेष में पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । इसकी ऊँचाई चौकी सहित 10 फी. 10इंच है ।[2]

[दे० चित्र सं० 81]

स्तम्भ सं० 5 – यह मंदिर सं० 2, 3, 4 के मध्य बना है । इसके अधोभाग में और मध्य भाग में कीर्तिमुख बने हैं । मध्य के कीर्तिमुखों से सांकलदार घंटियाँ लटकी हुयी हैं । ऊपरी भाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं । उत्तर में परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में आसीन हैं । एक हाथ में ग्रन्थ है । पीछी कमण्डलु पास में रखे हैं । पूर्व में सप्तफणावलियुक्त पार्श्वनाथ, दक्षिण में ऋषभदेव और पश्चिम में अजितनाथ पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं । सबके नीचे एक पंक्ति का लेख है । इस स्तम्भ पर विक्रम संवत् 1108 अंकित है । चौकी सहित इसकी ऊँचाई 10फी. 3इंच है । यह अठपहलू है ।[3]

स्तम्भ सं० 6 – यह मंदिर सं० 5 के पश्चिम में बांयी ओर है । इसमें 4 देवकुलिकायें बनी हुयी हैं । दक्षिण की देवकुलिका में पीछी कमण्डलु लिए आर्यिका है, शेष 3 में पीछी कमण्डलु लिए मुनि कायोत्सर्गासन मुद्रा में अंकित हैं।

1– [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 33–34.
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: सं० बलभद्र जैन, पृ० 186–87.
2– [अ] वही वही वही पृ० 34
[ब] वही वही वही पृ० 187.
3– [अ] वही वही वही पृ० 35.
[ब] वही वही वही पृ० 187.

इसकी सतह से ऊंचाई 4फी. 5इंच है ।[1]

स्तम्भ सं0 7 – यह मंदिर सं0 6, 7, 9 के मध्य में है । इसके पूर्व और पश्चिम में देवकुलिकायें बनी हुयी हैं जिसमें गले में माला धारण किये हुए कायोत्सर्ग मुद्रा में भट्टारक की एक मूर्ति है । पूर्व में एक पंक्ति का और पश्चिम में तीन पंक्ति का लेख है । यह चौकी सहित पांच फी. पांच इंच का है ।[2]

स्तम्भ सं0 8 – यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 12 के सामने चबूतरे पर है । अधो-भाग में 4 देवकुलिकायें हैं । उत्तर में सिंहवाहिनी, पूर्व में मयूरवाहिनी, दक्षिण में नरारूढ़ा और पश्चिम में वृषभारूढ़ा चतुर्भुजी देवी मूर्तियां हैं । मध्य भाग में कीर्तिमुखों से लम्बी लम्बी 3 श्रंखलाओं में बंधी हुयी घंटिकायें लटकती हुयी अंकित हैं । इसके ऊपर भाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं जिनमें एक-एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं । यह अठपहलू है और 13फी. 8इंच ऊंचा है ।[3]

स्तम्भ सं0 9 – यह मंदिर सं0 12 के सामने बांयी ओर है । यह 16 पहलू और 8फी. 7इंच ऊंचा है । इसपर कोई अंकन या अलंकरण नहीं है । यह किसी स्मारक के स्तम्भ का अवशिष्ट मध्य भाग मात्र है ।[4]

स्तम्भ सं0 – 10 – यह स्तम्भ मंदिर सं0 12 के महामण्डप में रखा है । इस पर क्रमशः 2 और 10 पंक्तियों के 2 अभिलेख उत्कीर्ण हैं । इसके ऊपर देवकुलिका में पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति बनी हुयी है यह अत्यन्त साधारण, चौकोर और 6फी. 2इंच ऊंचा है ।[5]
[दे० चित्र सं० 40]

स्तम्भ सं0 – 11 – यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 11 के सामने तथा मंदिर सं0 12 के दक्षिण में है । यह तीन कटनीदार चौकी पर स्थित है, और सतह से 18फी. 5इंच

1अ-देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 35.
ब- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 187.
2अ- वही वही वही पृ0 35-36.
ब- वही वही वही पृ0 187.
3अ- वही वही वही पृ0 36.
ब- वही वही वही पृ0 187-88.
4 अ- वही वही वही पृ0 36.
ब- वही वही वही पृ0 188.
5-अ- वही वही वही पृ0 36.
ब- वही वही वही पृ0 188.

ऊँचा है । इसके निचले भाग में 4 देवकुलिकायें हैं । इनमें उत्तर की ओर धरणेन्द्र - पद्मावती , पूर्व में गरुड़वाहिनी 10 भुजी चक्रेश्वरी , दक्षिण में द्वादश भुजी मयूर वाहिनी महामानसी ,पश्चिम में वृषभारूढ़ा अष्ट भुजी काली देवी उत्कीर्ण हैं । स्तम्भ पर फूल पत्तियाँ, श्रृंखलायुक्त घंटियों का अंकन बहुत सुन्दर है । ऊपर के भाग में चारों दिशाओं में 4 कोष्ठक हैं । उत्तर की ओर आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में पद्मासन में हैं । उनके दोनों ओर पीछीधारी एक साधु और अंजलिबद्ध दो-दो भक्त बैठे हैं । पूर्व की ओर विक्रम संवत् 1111 का एक अभिलेख है । उसके ऊपर उपदेश देती हुयी एक आर्यिका है । उसके दोनों ओर वस्त्राभूषणधारिणी अंजलिबद्ध 3-3- श्राविकायें बैठी हुयी हैं । दक्षिण में उपदेश मुद्रा में आर्यिका अंकित है । उनके पीछी कमण्डलु दोनों हैं । उनके दोनों ओर एक-एक आर्यिका और 2-2 श्राविकायें विनय मुद्रा में आसीन हैं । पश्चिम में मध्य में उपाध्याय परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में बैठे हैं उनके दोनों ओर एक-एक साधु और दो-दो श्रावक बैठे हैं । इनके भी ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुयी हैं । इनके शिखरों के ऊपर लघु आमलक और कलश बने हैं । इनके दक्षिण में सप्तफणाच्छादित पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं । शेष तीन ओर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर प्रतिमायें हैं ।[1]

[दे० चित्र सं. 42]

स्तम्भ सं0 12 - यह मंदिर सं0 12 के दक्षिण में स्थित है । इसके चारों ओर 11-11 पंक्तियों में 4-4 पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । यह चौकी समेत 18 फी. 7, 1/2 इंच ऊँचा चतुष्कोण स्तम्भ है ।[2]

[दे० चित्र सं 43]

स्तम्भ सं0 13 - यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 14 के सामने दांयी ओर है । इसके अधोभाग में चारों ओर देवकुलिकायें बनी हुयी हैं । पश्चिम की देवकुलिका में अम्बिका तथा शेष में यक्षी हैं । इनके ऊपर चारों ओर 11-11 पंक्तियों में 4-4 तीर्थंकर प्रतिमायें हैं । मूर्ति समूह के ऊपर छोटे छोटे दो आमलक और उनके ऊपर कलश हैं । यह 11 फी. 1 इंच ऊँचा है ।[3]

1- (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 37.
   (ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन , बलभद्र जैन, पृ0 188.
2- (अ) वही वही पृ0 38.
   (ब) वही वही पृ0 188.
3- (अ) वही वही पृ0 38.
   (ब) वही वही पृ0 188.

स्तम्भ सं० 14 - यह मंदिर सं० 15 के सामने स्थित है । अधोभाग 18 भेखलायें हैं । यह किसी स्मारक का शेष अंश है । इसे यहां लाकर स्थापित कर दिया गया है । कीर्तिमुखों के ऊपर लताओं और पत्रों का सुन्दर अंकन ऊपरी भाग में एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है जिसमें चारों ओर कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं । इसकी ऊंचाई सतह से 6फी. 9इंच है । [1]

स्तम्भ सं० 15 और 16 - यह दोनों स्तम्भ मंदिर सं० 18 के सामने हैं । अधो भाग में मंगलघट बने हुए हैं, जिनके ऊपर पत्र-पुष्पों का अलंकरण है । मध्य में जंजीरों में घंटियां लटकी हुयी हैं । दांयी ओर के स्तम्भ पर विक्रम संवत् 11: का एक लेख है । शृंखलाओं के ऊपर कीर्तिमुख है । ऊपर चारों ओर कोष्ठक बने हुए हैं । दोनों स्तम्भों पर उत्तर की ओर ग्रंथ हाथ में लिये आचार्य पर हैं, पादपीठ में पीछी-कमण्डलु है । इनके नीचे की ओर आर्यिकायें हैं । शेष ती ओर पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं । बांये स्तम्भ पर आचार्य परमेष्ठी के सामने साधु और आर्यिकायें उपदेश श्रवण करते हुए दिखाये गये हैं । ये 16 पहलू औ 13 फी. 10इंच ऊंचे हैं । [2]

स्तम्भ सं० 17 -दे० चित्र 45 यह मान स्तम्भ मंदिर सं० 20 के सामने है । इसमें एक सुसज्जित हर्म्य का दृश्य है । कीर्तिमुख और पुष्प मालाओं का अच्छा अंकन है । मध्य में शिखराकार देव-कुलिकायें हैं, जिनमें पद्मासन सर्वतोभद्रिका मूर्तियां हैं । यह मान स्तम्भ गोलाकार है और चौकी समेत 11 फी. 11इंच ऊंचा है । [3]

स्तम्भ सं० 18- यह मंदिर सं० 26-27 के मध्य में है । इसके अधोभाग में देवकुलिकायें बनी हैं, जिन में धरणेन्द्र -पद्मावती, अम्बिका आदि देवियां उत्कीर्ण हैं इनके ऊपर पत्रावली, लतायें हैं । मध्य में कीर्तिमुखों से घंटियां लटक रही हैं।

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 38-39.
[ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ० 188.
2- [अ] वही वही वही पृ० 39.
[ब] वही वही वही पृ० 188-89
3- [अ] वही वही वही पृ० 39.
[ब] वही वही वही पृ० 189.

उनके ऊपर देवकुलिकायें हैं, जिनमें पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । यह 16 पहलू और सतह से 4फी. 9इंच ऊँचा है । [1]

स्तम्भ सं0 19 – यह मंदिर सं0 26 – 28 – 30 के मध्य में है । अधोभाग में देवकुलिकायें हैं जिनमें धरणेन्द्र – पदमावती , अम्बिका आदि यक्ष – यक्षी हैं । इनके बाद ऊपर चारों ओर चौबीसी बनी है । 5-5 पंक्तियों में 4-4 पद्मासन मूर्तियाँ हैं तथा छठवीं पंक्ति में 4 कायोत्सर्गासन तीर्थंकर अंकित हैं । इस स्तम्भ का ऊपरी भाग खण्डित प्रतीत होता है । यह चतुष्कोण और 5 फी. 8 इंच ऊँचा है । [2]

कुंजद्वार – यह द्वार पर्वत के पश्चिम की ओर है और प्राचीन दुर्ग का मुख्य द्वार है । यह 19 फी. ऊँचा और 10.1/2 फी. चौड़ा है । यह वर्तमान में जीर्ण-शीर्ण स्थिति में है । इसके दोनों पार्श्वों में प्रस्तर निर्मित दो चौकियाँ हैं तथा दुर्ग में प्रवेश करने हेतु 1फी. 9इंच चौड़ी 3 सीढ़ियाँ हैं । इस द्वार के दोनों ओर 15फी. चौड़ा प्राचीन दुर्ग का प्रथम प्राचीर है । इसका तोरण भव्य और कलापूर्ण है । इस द्वार के दक्षिण में लगभग 100 गज की दूरी पर मुख्य सड़क और मंदिरों के बीच एक पक्का मार्ग बन गया है । [3]

हाथी दरवाजा – दुर्ग के प्रथम प्राचीर में पूर्व की ओर यह दरवाजा है । हाथियों का आवागमन इसी से होता था इसी कारण इसका नाम हाथीदरवाजा पड़ा । द्वार के भीतर बांयी ओर एक शिलाफलक 8फी. की ऊँचाई पर लगा है , जिसमें उपाध्याय परमेष्ठी अंकित हैं । हाथ में ग्रंथ लिये हुये हैं किन्तु वह कुछ खण्डित हो गया है । इनके दोनों ओर अंजलिबद्ध साधु खड़े हैं । उनके हाथों में पीछी है । उपाध्याय के ऊपर पद्मासन में एक तथा उसके दोनों ओर कायोत्सर्गासन में एक-एक तीर्थंकर प्रतिमायें हैं इसके बगल में एक देवकुलिका बनी है जिसमें एक

1– {अ} देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 40 .
{ब} भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 189.
2– {अ} वही वही वही पृ0 40.
{ब} वही वही वही पृ0 189.
3– {अ} वही वही वही पृ0 41.
{ब} वही वही वही पृ0 189.

पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है । किन्तु इसका मुखमण्डल खण्डित है । इस प्रतिमा के कंधों पर जटायें बिखरी हुयी हैं । श्रीवत्स और अष्ट प्रातिहार्य का अंकन है । दोनों ओर एक-एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति है ।

द्वार के भीतर दांयी ओर तल से 7फी. 8इंच की ऊंचाई पर एक शिलापट्ट है । एक देवकुलिका में सप्तफण युक्त कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ हैं। पादपीठ के दोनों ओर दो-दो मानवाकृतियां हैं जो खण्डित हैं । इसके ऊपर पद्मासन में एक तीर्थंकर मूर्ति है जिसके दोनों ओर चंवरवाहक हैं । शिलापट के भीतर की ओर देवकुलिका में बैठे हुये यक्ष-युगल अंकित हैं । एक तीर्थंकर मूर्ति कमलासन पर पद्मासन में आसीन है । शिर के ऊपर दो छत्र हैं । [1]

(ब) चांदपुर-जहाजपुर —

चांदपुर-जहाजपुर ललितपुर जनपद के बालाबेहट परगना के अंतर्गत हैं । चांदपुर ग्राम 24^0 30′ उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 18′ पूर्वी देशान्तर पर मध्य रेलवे के ललितपुर -बीना लाइन पर धौर्रा स्टेशन से लगभग 3 किलोमीटर दूर उत्तर पूर्व की ओर स्थित है ।[2] यह गांव जंगलों के मध्य स्थित है । इसी के निकट रेलवे लाइन के दूसरी तरफ पश्चिम की ओर जहाजपुर नाम का नया गांव बस गया है ।[3] इस प्रकार चांदपुर पूर्व और जहाजपुर पश्चिम की ओर हैं ।

चन्देलवंश के शासक चन्द्रवर्मन (चन्द्रवर्मा) ने अपने नाम पर चन्द्रपुर की स्थापना की थी । यही चन्द्रपुर आगे चलकर अपभ्रंश रूप में चांदपुर के रूप में परिवर्तित हो गया ।[4] यहां के संवत् 1207 के एक शिलालेख क्रमांक "ओम् ।। सम्वत 1207 ज्येष्ठ बदी 11, श्री माह प्रतिहारराज [illegible] गोत्रेय उदयपाल पुत्र.... ।" द्वारा यह ज्ञात होता है कि चांदपुर के मंदिरों का निर्माता वत्स (वत्सराज) के पौत्र का उदयपाल नामक व्यक्ति था , जो संभवतः चन्देल शासक मदनवर्मन (1128-64ई0) के समकालीन था । हो सकता है कि यह मदनवर्मन के समय का अध्यक्ष रहा हो या

1- अ- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 41-42 .
   ब- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग (संकलन-संपादन , बलभद्र जैन, पृ0189-90.
2- डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झांसी (1965) : ई0बी0जोशी, पृ0 333 .
3- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , ले0 एस0डी0 त्रिवेदी , पृ0 87 .
4- बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर-दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र कुमार वर्मा , पृ0 66 .

कोई समृद्धशाली व्यक्ति रहा हो ।[1]

चाँदपुर-जहाजपुर के जैन मंदिर -

चाँदपुर जहाजपुर में चन्देल शासकों की कला-प्रियता के साथ साथ धार्मिक सहिष्णुता के अद्भुत दर्शन होते हैं । इन्होंने यहाँ एक ओर हिन्दू मंदिरों का निर्माण कराया वहीं दूसरी ओर जैन मंदिरों और जिन प्रतिमाओं का भी निर्माण कराया । जैन मंदिरों और प्रतिमाओं का काफी महत्व है ।

यहाँ लगभग एक किलोमीटर के क्षेत्र में प्राचीन स्मारकों के भग्नावशेष बिखरे हुये हैं । पहला मंदिर समूह रेलवे लाइन के एक ओर [पूर्व की ओर] भी है और इसमें सभी जैन मंदिर हैं ।[2] यहाँ एक विशाल कोट से घिरी हुयी जगह में अब केवल 3 जैन मंदिरों के भग्नावशेष ही शेष हैं ।[3]

मंदिर संख्या 1 - [शान्तिनाथ का प्रथम मंदिर]

यह मंदिर ऊँचे चबूतरे पर छतरीनुमा बना है । यह सादा ही है तथा केवल 4 पहलदार स्तम्भों से युक्त वितान के रूप में है । गर्भगृह, अंतराल, महामण्डप अवशेष नहीं हैं पर गर्भगृह का द्वार अलंकरणयुक्त है । द्वार स्तम्भ के केन्द्र में दाढ़ीयुक्त त्रिमुखी आकृति है, जो कमलनाल ग्रहण किये है । उसके एक ओर नागी दूसरी ओर साल भंजिका है । द्वार स्तम्भ के नीचे वाला शिलापट्ट गज, सिंह आदि आकृतियों से एवं उसका सिरदल ध्यानी तीर्थंकर [शान्तिनाथ] एवं नवग्रह की आकृतियों से भलीभाँति अंकित है । इस मंदिर के बाहरी भाग में लगभग 12फी. ऊँची शान्तिनाथ की विशाल, भव्य एवं आकर्षक प्रतिमा है । जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है । इसकी पादपीठ पर सिंहों एवं शासनदेव गरुड़ व शासनदेवी महामानसी [निर्वाणी] का अंकन है । इसके बाहर चारों ओर बहुत सी मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं ।[4]

1- ए०एस०आई०आर० : भाग 10: ए० कनिंघम, पृ० 97.
2- वही वही पृ० 96.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ० 201.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर-दुधई का योगदान, डा० महेन्द्र वर्मा, पृ० 68.

मंदिर संख्या 2 - (शान्तिनाथ का द्वितीय मंदिर -

शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के पास ही उत्तर पूर्व की ओर शान्तिनाथ कोम्प्लेक्स का दूसरा मंदिर है जो अब भग्नावशेष रूप में है। इस मंदिर का द्वार दक्षिण की ओर है और बोयरा के तुल्य छोटा है। गर्भगृह के अन्दर लगभग 15फी. ऊँची शान्तिनाथ की विशालकाय प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पादपीठ पर केन्द्र के युगल हिरणों के अलावा युगल सिंह और उनके दोनों ओर एक-एक ध्यानी मुद्रा में तीन तीर्थंकर प्रदर्शित हैं। दाहिनी ओर के शिलापट्ट पर बीच में कायोत्सर्ग मुद्रा में 2 तीर्थंकर तथा उनके नीचे कल्पवृक्ष हैं जिसके नीचे की केन्द्र की आकृति नष्ट हो चुकी है पर इसके आस पास एक पुरुष व एक स्त्री की आकृतियाँ अंजली मुद्रा में हैं। इसके गर्भगृह के आगे 4 स्तम्भों से युक्त एक मण्डप के अवशेष हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह मंदिर पंचायतन शैली में निर्मित था।[1]

मंदिर संख्या 3 -

उपरोक्त मंदिरों के उत्तर पश्चिम की ओर पास ही यह मंदिर भग्नावशेष रूप में है। यहाँ मंदिर के नाम पर केवल 3 स्तम्भ से युक्त एक वितान ही शेष है। चौथा स्तम्भ टूटा हुआ है।[2]

रेलवे लाइन के पश्चिमी ओर जहाजपुर में केवल 1 मंदिर में ही कुछ अंश जैनियों के मिले हैं। यहाँ थोड़ी दूर पर और भी जैन मंदिर और मूर्तियाँ हैं, लेकिन पूरी तरह नष्टप्राय हैं।[3]

(ख) दुधई ——

दुधई 24° 27′ उत्तरी अक्षांश तथा 78° 24′ पूर्वी देशान्तर पर ललितपुर से दक्षिण में लगभग 27 कि0मी0 दूर है और धौर्रा रेलवे स्टेशन से लगभग 7 मील (11 कि0मी0) की दूरी पर दक्षिण पूर्व की ओर कच्चे मार्ग पर

1- (अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 201.
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, डॉ0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 68-69.

2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, डॉ0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69.

3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 202.

सघन जंगलों के मध्य स्थित है । [1]

दुधई गाँव का पुराना नाम महीली था । [2] झाँसी से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार दुधई का पूर्व नाम दुग्धकुम्या था । [3] यहाँ के मंदिरों का निर्माण दसवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य हुआ था । [4]

दुधई के जैन मंदिर –

दुधई के जैन मंदिरों में दो श्रेष्ठ मंदिरों के अवशेष हैं और दो मंदिर पूर्णरूपेण धूल-धूसरित हो चुके हैं । [5]

मंदिर संख्या 1 – [आदिनाथ का मंदिर]

यह मंदिर ब्रह्मा मंदिर एवं बाराह मंदिर के समीप ही स्थित है । इस मंदिर में वर्तमान समय में केवल गर्भगृह और मण्डप के भाग ही शेष हैं । इसकी बाहरी सीमा तथा वहाँ के अन्य अवशेषों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंदिर निश्चय ही नागर शैली में निर्मित रहा होगा ।

मण्डप के चारों स्तम्भ सादे हैं पर ऊपर के शिलापट्ट कलापूर्ण हैं । इन पर संगीत, नृत्यादि की विभिन्न मुद्राओं से युक्त मूर्तियाँ, नागवल्लिकाओं की प्रतिमायें अंकित हैं । इनके मध्य में गजयुक्त तीर्थंकर मूर्ति है । गर्भगृह के मुख्य द्वार के मध्य में पद्मासन आदिनाथ की मूर्ति है, जिसके बांयी ओर कटिहस्त मुद्रा में पुरुषाकृति है एवं पादपीठ पर ध्वज चिन्ह [वृषभ] तथा दोनों ओर शासनदेव व देवियाँ उत्कीर्ण हैं । गर्भगृह के अन्दर 13फी. ऊँची विशालकाय आदिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में भव्य प्रतिमा है । इस मूर्ति के पादपीठ पर केन्द्र में एक वृषभ के अलावा एक हिरण अंकित है । आदिनाथ के सिर के चारों ओर केशलुंच युक्त

1- [अ] झाँसी गजेटियर, 1965: ई०बी० जोशी, पृ० 337.
[ब] बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, से०एस०डी० त्रिवेदी, पृ० 87
2- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ० 202.
3- "दुग्धकुम्भोदभवं ग्राम" अभिलेख की दसवीं पंक्ति, एपी०इण्डिका भाग 1, पृ० 214-217.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैनधर्म के उत्कर्ष में चांदपुर-दुधई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा पृ० 67.
5- ए०एस०आई०आर० : भाग 10: ए० कनिंघम, पृ० 92-93.

आभामण्डल प्रदर्शित है । मुख्य आदिनाथ की प्रतिमा के पास बायीं ओर चँवरधारी-युक्त आदिनाथ की प्रतिमा है । यहाँ पर गज पर आरूढ़ चँवरधारी युक्त कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है । इसके ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र , माल्यधारी तथा दोनों ओर एक-एक नग्न पुरुषाकृति व एक-एक गज अंकित है । मुख्य प्रतिमा की दाहिनी ओर ध्यानी मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है जिसके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक-एक तीर्थंकर की प्रतिमायें अंकित हैं । ये दोनों तीर्थंकर चँवरधारी पुरुषाकृतियों तथा सिंह-व्याल , वृषभव्याल आदि से अलंकृत हैं । पार्श्वनाथ के ऊपर त्रिछत्र है, पर ऊपर का अन्य भाग ध्वस्त हो चुका है ।[1]

मंदिर संख्या 2 - [शान्तिनाथ का मंदिर]

आदिनाथ के मंदिर के सम्मुख ही उत्तर दिशा में शान्तिनाथ का विशाल मंदिर है ,पर वर्तमान अवस्था में इस मंदिर का गर्भगृह ही शेष है और उस पर भी उसका छत वाला भाग नष्ट हो चुका है । इस गर्भगृह में शान्तिनाथ की 12फी. ऊँची पद्मासन मूर्ति है जिसकी भुजाओं वाला हिस्सा नष्ट हो चुका है पर पादपीठ के केन्द्र में कीर्तिमुख तथा आस पास एक-एक हिरण ,एक-एक आराधक एवं एक विशालकाय शार्दूल प्रदर्शित है । इस मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर लगभग 10 फी. ऊँचाई में पार्श्वनाथ की प्रतिमायें हैं । ये प्रतिमायें चँवरधारियों तथा कटिहस्त मुद्रा में दो पुरुषाकृतियों के अलावा त्रिछत्र ,माल्यधारियों ,विद्याधरों , गजादि तथा फणयुक्त सर्पकुण्डली से अंकित है ।[2]

इन मंदिरों के अतिरिक्त पश्चिमी समूह के मंदिरों में बड़ी बारात एवं छोटी बारात नामक दो जैन मंदिरों के भग्नावशेष हैं । स्थानीय लोग इन्हें बनिया की बारात कहते हैं । ये दोनों मंदिर दुधई-देवगढ़ वाले मार्ग पर प्रथम समूह के मंदिरों से लगभग आधे मील की दूरी पर स्थित हैं । इनके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि जैन बनिया बन्धु देवपत खेवपत ने इनका निर्माण कराया था । जनश्रुति के अनुसार " इस स्थल पर कभी दो बारातें आकर रुकी थीं और उसी रात को दैवी प्रकोप से ये सारे बाराती पाषाणमय हो गये थे ।"

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर -दुधई का योगदान , ले0 महेन्द्र वर्मा , पृ0 69 .

2- वही वही वही पृ0 69-70

ये मंदिर एक दूसरे के आमने सामने तथा एक दूसरे के समीप ही हैं । कनिंघम के मत में - " ये मंदिर अधिकांशतः नष्ट हो गये हैं , इनकी मूर्तियाँ कुछ तो नष्ट हो गयी हैं और कुछ अभी पूर्ण सुरक्षित हैं तथा श्रेष्ठ भी हैं ।"[1]

वर्तमान में ये मंदिर पूर्णतः नष्ट हो चुके हैं । यहाँ बारात में प्राप्त खण्डित अतिशय प्रतिमाओं में 3 प्रतिमायें पूर्ण सुरक्षित अवस्था में हैं । इनमें एक सुपार्श्वनाथ ,दूसरी आदिनाथ और तीसरी सम्भवतः शीतलनाथ की हैं ।[2]

§द§ मदनपुर -

मदनपुर 24° 15′ उत्तरी अक्षांश और 78° 42′ पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य ललितपुर ज़िले की महरौनी तहसील के अंतर्गत आता है । यह ललितपुर से दक्षिण-पूर्व की ओर लगभग 38 मील पर स्थित है ।[3]

कहा जाता है कि मदनपुर ग्राम महोबा के चन्देल शासक मदन वर्मा द्वारा बसाया गया था परन्तु यहाँ से प्राप्त अभिलेख संवत् 1112 जो कि मदन वर्मा के शासन काल §1129-1165ई0§ से पुराना है , से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पहले भी यहाँ पर बस्ती थी । पृथ्वीराज चौहान ने परमाल पर जब चढ़ाई की थी तब वह यहाँ तक आया था । यहाँ के जैन मंदिर के एक स्तम्भ पर परमाल की लड़ाई और पृथ्वीराज चौहान की विजय का हाल लिखा है इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पुराना ग्राम उत्तर में जैन मंदिर के पास बसा रहा होगा ,मदन वर्मा ने उसका नाम बदल कर मदनपुर कर दिया रहा होगा ।[4]

मदनपुर के जैन मंदिर - यहाँ कई जैन मंदिर प्राप्त होते हैं जो कि प्रायः नष्ट हो चुके हैं ।[5]

1- ए0एस0आई0आर0 : भाग 10 : ए0 कनिंघम , पृ0 93-95 .

2- §अ§ ए0एस0आई0आर0:भाग 10:ए0 कनिंघम , पृ0 95 .
   §ब§ बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक:जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर-दुधई का योगदान, डॉ0 महेन्द्र वर्मा , पृ0 70 .

3- झाँसी गजेटियर ,1965:ई0बी0जोशी पृ0 352-53.

4- वही वही पृ0 353 .

5- ए0एस0आई0आर0 भाग 21 : ए0 कनिंघम ,पृ0 172-73 .

मंदिर संख्या - 1

ग्राम के मध्य में एक शिखरबन्द विशाल प्राचीन जैन मंदिर है, जो जीर्ण-शीर्ण दशा में है। यह 24 पाषाण स्तम्भों पर आधारित है। मध्य के 8 स्तम्भों के बीच दीवारें खड़ी करके मंदिर का गर्भगृह बनाया गया है। गर्भगृह के ऊपर 40फी. ऊँचा शिखर बना हुआ है। मंदिर में 6 पद्मासन पाषाण मूर्तियाँ हैं। 6 मूर्तियाँ धातु की भी हैं। सभी पर लेख अंकित हैं।[1]

मंदिर संख्या 2- {पंचमढ़ी} ग्राम के उत्तरकी ओर पर्वत पर लगभग 500 मी0 की दूरी पर यह स्थित है। यहाँ एक चबूतरे पर 5 मढ़ बने हुये हैं। 4 मढ़ चारों कोनों पर और एक सबके मध्य में बना है। चारों मढ़ों की ऊँचाई 15फी. तथा बीच के मढ़ की ऊँचाई 20 फी. है। प्रत्येक मढ़ में एक-एक कायोत्सर्गासन मूर्ति देशी पत्थर की 5 फी. 6इंच की दीवार से जोड़ कर खड़ी की गयी है। प्रत्येक मूर्ति पर लेख अंकित है। सभी मढ़ पूर्वाभिमुख हैं।[2]

मंदिर संख्या 3 - {शान्तिनाथ मंदिर}

यह मंदिर पश्चिमाभिमुख है तथा ज़मीन तल से 3 फी. ऊँची कुर्सी पर निर्मित है। यह 28 फी. ऊँचा 18 फी. लम्बा एवं 13 फी. चौड़ा है। मंदिर के शिखर में एक सुन्दर कोठरी है। मंदिर के आगे 4 पाषाण स्तम्भों पर आधारित मण्डप बना है। मंदिर के द्वार से लगा हुआ सामने 13 वर्ग फी. का एक चबूतरा है। मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर पद्मासन मूर्ति अंकित है। प्रवेश द्वार से गर्भगृह 4, 1/2फी. गहरा है। गर्भगृह में 3 कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ हैं। ये अष्टप्रातिहार्य युक्त हैं। मध्य में 10 फी. ऊँची भगवान शान्तिनाथ की खण्डित मूर्ति है जिसका प्रतिष्ठाकाल मूर्ति लेख के अनुसार विक्रम संवत् 1204 है। इसके दोनों ओर 7 फी. ऊँची कुन्थुनाथ और अरनाथ की मूर्तियाँ हैं। इनके अलावा 2 मूर्तियाँ खण्डित पड़ी हैं, जिनके धड़ मंदिर में और सिर मंदिर के बाहर पड़े हुए हैं। एक 2, 1/2 फी. ऊँची सर्वतोभद्रिका मूर्ति रखी हुयी है। मंदिर के बाहर एक शिलापट्ट पर एक-एक फी. ऊँची 15 तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं। एक भग्नमान स्तम्भ भी है।[3]

1- {अ} बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक:अनातीर्थ मल्हपुर,से0विमलकुमार जैन सौंरया,पृ07
{ब} भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 203
2- {अ} वही वही पृ0 79-80 .
{ब} वही वही पृ0 203-4 .
3- {अ} वही वही पृ0 80 .
{ब} वही वही पृ0 204 .

मंदिर संख्या 4 – {शान्डित मढ़}

शान्तिनाथ मंदिर से लगभग 300 गज आगे यह खाण्डित मढ़ है। अब यह टीले के रूप में है। इसके अंदर स्थित 9 फी. ऊँची एक मूर्ति घुटनों तक दबी खड़ी है।[1]

मंदिर संख्या 5 – {पम्पोमढ़}

खाण्डित मढ़ से उत्तर की ओर लगभग 200 मी0 की दूरी पर पम्पोमढ़ है। इस समय यहाँ एक ही मढ़ है, किन्तु चारों ओर मूर्तियों और मंदिरों के इतने अवशेष हैं जिससे अनुमान होता है कि यहाँ भी चारों कोनों पर चार मढ़ बने रहे होंगे। मंदिर के बाहर चार पायों पर मण्डप बना हुआ है। प्रवेश द्वार पर नाना प्रकार के देवी – देवता, पशु –पक्षियाँ, देव विमान एवं जिन मूर्तियाँ तथा पत्थर का तोरण द्वार बने हैं। प्रवेश द्वार से गर्भगृह 4,1/2 फी. नीचाई में है। गर्भगृह में अष्टप्रातिहार्य युक्त तीन मूर्तियाँ हैं। सभी पर मूर्ति लेख हैं। मध्य की मूर्ति 9फी. ऊँची है, इसके दायें – बायें 7–7 फी. ऊँची भगवान महावीर की मूर्तियाँ हैं। इनके चरणों के समीप 2,1/2 – 2,1/2 फी. के 6 इन्द्र और चँवर-वाहक हैं। मूर्तियों के हाथ खाण्डित हैं, इनके ऊपर दीवार में 2 पद्मासन लाल पाषाण की मूर्तियाँ अंकित हैं।

इस मढ़ के तीनों कोनों पर वर्तमान में कोई मढ़ नहीं है, केवल भग्नावशेषों के टीले हैं, लेकिन मढ़ के दक्षिण की ओर एक अर्द्ध-भग्न मढ़ है। इस मढ़ में शान्तिनाथ – कुन्थुनाथ– अरनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ हैं। मध्य की मूर्ति 10फी. और शेष दोनों मूर्तियाँ 7–7फी. ऊँची हैं।[2]

इस मढ़ का नाम पम्पोमढ़ पड़ने का कारण पम्पोपुष्प का अधिक मात्रा में होना है।

1– {अ} बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय तीर्थ मदन पुर, ले0 विमल कुमार जैन सोरया, पृ0 80.
   {ब} भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0 204.
2– {अ} वही वही वही पृ0 80.
   {ब} वही वही वही पृ0 204.

मंदिर संख्या 6 – (मोदीमढ़)

पच्मोमढ़ से पाटनपुर नगर की ओर 2 फर्लांग की दूरी पर मोदीमढ़ स्थित है । यह पूर्वाभिमुख है । इसका शिखर जीर्ण-शीर्ण है । गर्भगृह का फर्श उखाड़ा हुआ है । मढ़ की दीवारें 9फी. 6इंच चौड़ी और 25फी. ऊंची हैं । इसमें तीन मूर्तियाँ हैं । मध्य में शान्तिनाथ की 9फी. ऊँची मूर्ति है , उसके दांये और बांये कुन्थनाथ और अरनाथ की प्रतिमायें हैं । तीनों पर लेख हैं । इसके चारों तरफ प्राचीन फर्श ,दालान के अवशेषों के साथ चारों कोनों पर चार मढ़ होने के प्रमाण हैं । दांये कोने वाला मढ़ धराशायी हो गया है परन्तु भगवान ऋषभ देव की 8फी. ऊँची कायोत्सर्गासन मूर्ति एक वृक्ष की जड़ के आधार से झुकी हुयी खड़ी है । [1]

(च) बानपुर –

बानपुर क्षेत्र ललितपुर जनपद के अंतर्गत ललितपुर से 32 मील महरौनी से 9 मील और निकटवर्ती मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले से केवल 6 मील की दूरी पर स्थित है । क्षेत्र से एक मील आगे बानपुर गाँव है ।

बानपुर का बाणपुर नाम से संस्कृत महाभारत में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है । पौराणिक गाथाओं के अनुसार यह दैत्यराज बाणासुर की राजधानी रही थी । कदाचित् उसी के नाम पर इसका नाम बाणपुर पड़ा जो कालांतर में बानपुर कहलाने लगा । जैन शास्त्र के अनुसार यहाँ बन्धकुमार नाम का राजा हुआ था जो जैन धर्म का अनन्य भक्त था । कहते हैं उसने यहाँ दुर्ग की भी स्थापना की थी । सम्भव है उसके नाम पर यह बानपुर कहलाया हो । [2]

बानपुर के जैन मंदिर –

बानपुर की दक्षिणी दिशा में बानपुर-महरौनी मार्ग पर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्थित है । यह क्षेत्र लगभग 250 फी. × 185 फी. में स्थित है । इसके चारों ओर परकोटा बना है किन्तु यह कहीं कहीं से टूट गया है । क्षेत्र में कुल 5 जैन

1– (अ) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : कलातीर्थ मदनपुर,ले० शिवकुमार जैन सोरया, पृ० 8।
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन –सम्पादन,बलभद्र जैन , पृ० 205 .
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र बानपुर,ले० कैलाशमड़वैया, पृ० 18-19.

मंदिर हैं। प्रथम 4 मंदिर चबूतरे पर बने हैं। पाँचवाँ मंदिर चबूतरे के नीचे बने हौज़ के दूसरी ओर है।

मंदिर संख्या 1 -

प्रवेश कक्ष में देशी प्रस्तर से निर्मित 5 फी. ऊँची कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्ति है। मूर्ति पर तीर्थंकर की पहचान का कोई संकेत शेष नहीं है। मुख्य मूर्ति के दोनों ओर अन्य तीर्थंकरों व शासन देवयों की मूर्तियाँ अंकित हैं। अन्दर की आधुनिक ढंग से सज्जित वेदिका पर विक्रम संवत् 1142 की संगमरमर पाषाण भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति है।[1]

मंदिर संख्या 2 -

यह मंदिर प्रथम मंदिर से ही संलग्न है। मंदिर के बाहरी हिस्से में एक तीर्थंकर मूर्ति 9फी. 9इंच की है। इसके भीतरी भाग में 8फी. 6इंच की कायोत्सर्गासन मूर्ति है। इस मूर्ति के चरणपाद के दोनों ओर छोटी छोटी मूर्तियाँ अंकित हैं।[2]

मंदिर संख्या 3 -

यह क्षेत्र के मध्य का मुख्य मंदिर है। प्रवेश द्वार के ऊपरी तोरण पर क्षेत्रपाल की मूर्ति है। अंदर की वेदी पर श्रीचरण स्थापित हैं। साथ ही एक भव्य संगमरमर की 8इंच की पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति भी है। इस मंदिर के बाह्य दीवारों पर तीनों तरफ 19 आलों की आकृति वाले आयतों में युगादि देव, यक्ष, अप्सरा, पुष्पदेव आदि की मूर्तियाँ अंकित हैं।[3]

मंदिर संख्या 4 -

इस मंदिर को शान्तिनाथ जिनालय अथवा बड़े बाबा का मंदिर कहते हैं। इस शिखर रहित मंदिर में 15फी. ऊँची तीर्थंकर शान्तिनाथ की मूर्ति है।

1- [अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 202.
   [ब] बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक ; अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाशमड़बैया, पृ019-20

2- [अ] वही वही पृ0 202.
   [ब] वही वही पृ0 20.

3- [अ] वही वही पृ0 202.
   [ब] वही वही पृ0 20.

इसके कुछ अंग खण्डित हैं । इस मूर्ति के बायें दायें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और अरनाथ की 7-7 फी. ऊँची कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ हैं । इन पर लेख अंकित हैं । इसके बाह्य पार्श्वभित्ति पर एक पद्मासन मूर्ति अंकित है । [1]

मंदिर संख्या 5 - [सहस्त्रकूट चैत्यालय]

उपरोक्त मंदिरों के सामने यह सहस्त्रकूट चैत्यालय है । यह लगभग 40फी. ऊँचा और 22फी. चौड़ा है । यह कलात्मक और पच्चीकारी युक्त है । इसके निर्माण सम्बन्धी विवरण सिद्ध क्षेत्र अहारजी [मध्य प्रदेश] क्षेत्र पर शान्तिनाथ के पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख से प्राप्त होते हैं । यह लेख विक्रम संवत् 1239 का है । लेख इस प्रकार है -

"गृहपति वंशसरोरुह सहस्त्ररश्मिः सहस्त्र कूटंयः ।
बाणपुरे व्याधियातीत श्रीमानिह देवपाल ।। इतिइत्यादि "

इसके अनुसार अहारजी के प्रतिमा प्रतिष्ठाता के प्रपिता के प्रपिता गृहपति वंश के देवपाल द्वारा बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय बनवाया गया । इस सहस्त्रकूट चैत्यालय का निर्माण काल विक्रम संवत् 1001 है । इसके परिक्रमापथ की दीवारों में बाहर भीतर अनेक प्राचीन सरस्वती, गंगा-यमुना, अम्बिका आदि की मूर्तियाँ अंकित हैं । अन्तर्भाग में 8फी. × 4फी. के शिलाखण्ड पर चारों ओर एक सहस्त्र अष्टमूर्तियाँ अंकित हैं । [2]

इस क्षेत्र के अहाते में कई मंदिरों और मूर्तियों के भग्नावशेष हैं। इस अतिशय क्षेत्र के अतिरिक्त बानपुर कस्बे में दो विशाल जैन मंदिर और हैं जो अति भव्य और रमणीक हैं । इनमें बड़ा मंदिर तो बहुत प्राचीन और बहुत ऊँचा है । [3]

1- [अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 202.
[ब] बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र बानपुर, नेमिनाथ मड़ैया, पृ020-
2- [अ] वही वही वही पृ0 203.
[ब] वही वही वही पृ0 21-22.
3- [अ] वही वही वही पृ0 203.
[ब] वही वही वही पृ0 22.

[र] <u>पावागिरि [पवाजी]</u> –

पावागिरि 25° 5′ उत्तरी अक्षांश तथा 78° 28′ पूर्वी देशान्तर पर ललितपुर जनपद के अंतर्गत ललितपुर से झाँसी जाने वाले बस मार्ग पर ललितपुर से 48 कि0मी0 दूरी पर दो पहाड़ियाँ सिद्ध की पहाड़ी एवं पवा की पहाड़ी के मध्य जेमना नदी के बायें तट पर स्थित है।[1]

जैन मंदिर क्षेत्र सिद्धों की पहाड़ी पर स्थित है। इस पहाड़ी पर दो मढ़ियाँ बनी हैं। जिसमें चरण-चिन्ह बने थे परन्तु वे अब नहीं हैं। कहा जाता है कि एक साधु सिद्ध पहाड़ी की मढ़िया पर आकर रहा जो कभी नीचे नहीं उतरा, वहीं उसकी मृत्यु और दाह संस्कार भी हुआ। हो सकता है कि उसी की स्मृति में इसका नाम सिद्धों की मढ़िया पड़ा।

<u>पावागिरि के जैन मंदिर –</u>

नायक की गढ़ी : – यहाँ गढ़ी के पूरे निशान, परकोटा, बावड़ी, सीढ़ियाँ तथा कमरों के भग्नावशेष अब भी हैं। वस्तुतः यह नायक की गढ़ी नहीं, बल्कि एक विशाल जैन मंदिर का खण्डहर है। इसकी पुष्टि वर्तमान नवीन विशाल जैन मंदिर के भोयरे से होती है।[2]

जैन मंदिर के भोयरे [गुफा] –

यह 1800 वर्ष प्राचीन बतायी जाती है और यह बुन्देलखण्ड के प्राचीन 7 भोयरे [देवगढ़, सेरोनजी, करगुवाँ, चन्देरी, थूबोन, पपौरा, पवाजी] में से एक है। कहा जाता है कि ये सातों भोयरे देवपत खेवपत भाइयों के बनवाये हुए हैं। इस भोयरे का प्रवेश द्वार बहुत ही छोटा है। इसकी ऊँचाई और चौड़ाई लगभग 5 फी. है। चार सीढ़ियों को पार करने के पश्चात द्वितीय द्वार अंदर की ओर मिलता है, जो लगभग 2फी. ऊँचा और इतना ही चौड़ा है। इस द्वितीय द्वार को पार करने पर एक लम्बा गर्भगृह है, जिसमें 2फी. ऊँची वेदी पर सामने

1– [अ] झाँसी गजेटियर, 1965: ई0बी0जोशी, पृ0 359.

2–[अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग 1 : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0 198.
[ब] बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 52.

की ओर तीन मूर्तियाँ और बांयी ओर तीन मूर्तियाँ हैं । ये समस्त मूर्तियाँ काले सैलिया पत्थर की हैं । सामने की तीन पद्मासन मूर्तियाँ पार्श्वनाथ, आदिनाथ और सम्भवनाथ की हैं । प्रथम दो मूर्तियाँ तीन फी० ऊँची और अंतिम तीसरी मूर्ति 2 फी० ऊँची है। मूर्तियों की पादपीठ पर अशुद्ध भाषा के लेख अंकित हैं । दायीं की ओर की 3 पद्मासन मूर्तियाँ मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं अजितनाथ की है । इनमें नेमिनाथ की मूर्ति 3फी० ऊँची और शेष दोनों मूर्तियाँ लगभग 2फी० ऊँची हैं । मूर्तियों की पादपीठ पर लेख अंकित हैं ।[1]

खिरिमाल [धिक्माल] की मढ़िया -

इसी गर्भगृह के सम्मुख एक छोटी सी मढ़िया है जो खिरिमाल की मढ़िया कहलाती है । इसके एक कक्ष में अनेक मूर्तियाँ हैं जो संवत् 299 से लेकर संवत् 1345 तक की हैं । इनमें से एक आदिनाथ की पौने दो फी० ऊँची पद्मासन मूर्ति है जिस पर संवत् 299 अंकित है । पादपीठ पर सर्पों का अंकन है एवं दोनों ओर 2-2 आराधिकायें अंजलिबद्ध मुद्रा में हैं । ऊपर 2 विद्याधर हैं ।[2]

सिद्ध का मंदिर - वर्तमान नवीन मंदिर के समीप दांयी ओर मंदिर के पृष्ठ भाग में एक ऊँची पहाड़ी पर । मंदिर है जिसे सिद्ध का मंदिर या सिद्ध की गुफा कहा जाता है । इसमें एक शिलाखण्ड पर 4 मुनियों के चरण-चिन्ह अंकित हैं और उनके ऊपर 20फी० ऊँची छतरी बनी हुयी है । कहा जाता है कि प्राचीन काल में स्वर्णभद्र आदि 4 मुनियों ने इसी स्थान पर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया था । हिन्दी निर्वाण काण्ड में कहा गया है - " अर्थात्

" स्वर्णभद्र आदि मुनिचार, पावागिरिवर शिखर मझार ।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास ।[3]

1-[अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन पृ० 199.
[ब] बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, डॉ० कमलेश कुमार, पृ० 52-53.
2-[अ] वही वही वही पृ० 199.
[ब] वही वही वही पृ० 53.
3-] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ० 199.

इसी के समीप भूरे बाबा का चबूतरा है । यहाँ के भूरे बाबा सभी की कामना पूरी करते हैं, इस कारण इसे अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।[1] सिद्धों की महिमा तथा सिद्ध क्षेत्र मंदिर पर मुनियों के निर्वाण प्राप्त करने के कारण इसे सिद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है ।[2]

§ग§ <u>सिरोन का जैन मंदिर</u> —

ललितपुर जनपद के महावरा नगर से 6 कि0मी0 दक्षिण-पूर्व की ओर सिरोन ग्राम है । यहाँ 50 फी. ऊँचा एक भव्य जैन मंदिर है, जिसमें एक पद्मासन तीर्थंकर प्रतिमा है । गाँव के निकटवर्ती क्षेत्र में अनेक खण्डित मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हुयी हैं जो 11 वीं शताब्दी से लेकर 13 वीं शताब्दी तक की है ।[3]

§घ§ <u>सेरोनजी §सीरोन खुर्द§</u> -

सेरोंजी ललितपुर जनपद के अन्तर्गत ललितपुर से उत्तर-पश्चिम में 78° 19′ पूर्वी देशान्तर तथा 24° 49′ उत्तरी अक्षांश में लगभग 20कि0मी0 दूर ओडर नदी के किनारे स्थित है ।[4]

वर्तमान सेरोनजी ग्राम प्राचीन काल में सीयडोणि के नाम से प्रसिद्ध था जिसकी पुष्टि ग्राम से प्राप्त अभिलेख से होती है ।[5] लगभग 10वीं शताब्दी में यहाँ का राज्यपाल उन्दभट यहीं सीयडोणि में रहता था । निश्चय ही यह विस्तृत क्षेत्र का प्रशासनिक केन्द्र रहा होगा । यहाँ प्राप्त शिलालेखों के अनुसार विक्रम संवत् 954 से लेकर संवत् 1451 तक यहाँ का निर्माण कार्य होता रहा था ।[6]

<u>सेरोनजी के जैन मंदिर</u> -

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गाँव से कुछ दूर पर स्थित है।

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 199.
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :धावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 53-54.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 195.
4- झाँसी गजेटियर -1965:ए0बी0जोशी, पृ0 362.
5- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, प्रो0एस0डी0त्रिवेदी, पृ0 84.
6- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 197.

क्षेत्र के चारों ओर 200 फी. लम्बा परकोटा बना हुआ है जिसका निर्माण 200 वर्ष पूर्व देवीसिंह ने कराया था । क्षेत्र के द्वार में प्रवेश करते ही सामने मान स्तम्भ है, जिसे सांसी की इन्द्राणी बहू ने बनवाया था ।[1]

प्रांगण में पहले मंदिर में एक बड़ा गर्भगृह है, जिसमें एक वेदी है। इसमें प्राचीन मूर्तियाँ हैं । वेदी के चारों ओर दीवार के सहारे खण्डित, अखण्डित प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं ।[2]

दूसरा मंदिर भगवान शान्तिनाथ का है । यह भोयरेनुमा मंदिर है । इसका निर्माण किंवदन्ती के अनुसार देवपत खेवपत ने करवाया था । मंदिर में एक शिलापट्ट पर 18फी. ऊँची मूर्ति अंकित है । इसके अगल बगल अरनाथ और कुन्थुनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ अंकित हैं । मंदिर का प्रवेश द्वार बहुत छोटा, पौने तीन फी. ऊँचा और 1, 1/2 फी. चौड़ा है । द्वार के तोरण पर द्वादश राशियाँ [चिन्ह] अंकित हैं । चौखट पर कायोत्सर्गासन और पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । दरवाजे की दोनों ओर दो शिलाओं पर सहस्त्रकूट चैत्यालय का दृश्य अंकित है । भगवान के अभिषेक के लिये दोनों ओर जीने बने हुए हैं ।[3]

शान्तिनाथ मंदिर के बगल में दो मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं जिनमें प्राचीन मूर्तियाँ हैं । मंदिर से बाहर धर्मशाला है जिसके दीवार के सहारे तीर्थंकर और देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्तियाँ रखी हैं । बाहुबली की एक अद्भुत मूर्ति भी है ।[4]

गाँव में और आस पास दो-तीन मील के घेरे में प्राचीन मंदिरों के अवशेष हैं । एक टीले पर जो कि एक विशाल मंदिर का खण्डहर है एक पद्मासन

1- [अ] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग । :संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0 195.
[ब] बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38-39.

2-	[अ]	वही	वही	वही	पृ0 195.
	[ब]	वही	वही	वही	पृ0 38-39.
3-	[अ]	वही	वही	वही	पृ0 196.
	[ब]	वही	वही	वही	पृ0 38.
4-	[अ]	वही	वही	वही	पृ0 196.
	[ब]	वही	वही	वही	पृ0 38.

जैन (भगवान महावीर) मूर्ति रखी हुयी है । इसका सिर नहीं है । इसके धड़ तक का भाग 9फी. ऊँचा है । इसे लोग बैठादेव कह कर पूजते हैं ।[1]

इसी प्रकार यहाँ चारों ओर बिखरे हुए टीलों की संख्या 42 है जो प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष माने जाते हैं । प्राचीन मंदिरों के धराशायी होने से ये टीले बन गये हैं । बैठादेव के पश्चिम में एक बावड़ी और कुँआ है तथा उसी के निकट आठ जैन मंदिरों के खण्डहर हैं । प्रत्येक में धर्मचक्र हैं ।[2]

परकोटे के बाहर दांयी ओर सन् 1961 ई0 में खुदायी होने पर देवी निकली , अनेक स्तम्भ , मूर्तियाँ और धर्मचक्र निकले । ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ कोई विशाल मंदिर था जिसका विध्वंस हो गया ।[3]

परकोटे के बांयी ओर कुछ आगे चलकर एक पाषाण द्वार खड़ा हुआ है । उसके ऊपर तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं । इसे लोग "धोबी की पौर" कहते हैं । वस्तुतः यह किसी प्राचीन मंदिर का द्वार है । इसके पास पत्थरों का ढेर लगा हुआ है जिसमें मूर्तियों और मंदिरों के पाषाण खण्ड हैं । यहाँ मंदिर थे इस बात के प्रमाण अब भी इन स्थानों में हैं ।[4]

इसी प्रकार क्षेत्र के पीछे मंदिरों के खण्डहर बिखरे पड़े हैं जिनको देखकर अनुमान होता है कि यहाँ लगभग 22 जैन मंदिर थे ।[5]

1- (अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ0196.
   (ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी ,सं0 लालचन्द्र जैन राकेश ,पृ038-39.
2- (अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन ,बलभद्र जैन,पृ0196.
3- वही वही वही पृ0 197 .
4- (अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन,बलभद्र जैन,पृ0 196-97.
   (ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी ,सं0लालचन्द्र जैन राकेश,पृ0 39.
5- (अ) वही वही वही पृ0 197 .
   (ब) वही वही वही पृ0 39 .

[अ] गिरार का जैन मंदिर – श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गिरार ललितपुर जनपद के महावरा नगर से 16 कि0मी0 दक्षिण पूर्व की ओर 24^0 19´ उत्तरी अक्षांश और 78^0 56 पूर्वी देशान्तर में है । यहाँ भगवान ऋषभ देव [ऋषभनाथ] का एक विशाल जैन मंदिर है जो यहाँ के तीर्थ क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है । [1]

[ब] ललितपुर –

ललितपुर उत्तर प्रदेश के दक्षिणी कोने में 24^0 11´ से 25^0 57´ उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 25´ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है । यह ललितपुर जनपद का मुख्यालय है । [2] मध्य रेलवे के झाँसी – बीना जंक्शन के बीच ललितपुर है ।

ललितपुर के जैन मंदिर –

ललितपुर नगर के बीच विशाल एवं प्राचीन चार चैत्यालय तथा चार शिखर-बन्द जैन मंदिर हैं ।

चार चैत्यालय निम्न हैं[3] – ३

1– श्री ऋषभनाथ जिन चैत्यालय , गाँधीनगर

2– श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चैत्यालय, गाँधीनगर

3– श्री दिगम्बर जैन तारण-तरण चैत्यालय, कटरा बाज़ार

4– श्री आदिनाथ दिगम्बर जिन चैत्यालय ,सिविल लाइन्स ।

चार जैन मंदिर निम्न हैं[4] –

1– श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अटा मंदिर ,सावरकर चौक

2– श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर ,मौठानापुरा

3– श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर जी, तलावारपुरा

4– श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी, स्टेशनरोड, सिविल लाइन्स ।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : लेखक संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 195.

2– स्टेटिस्टिकल ,डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउण्ट आफ दि एन0डब्लू0 प्राविन्सेज आफ इण्डिया – 1874: ई0टी0 एटकिन्सन, पृ0 304 .

3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: लेखक-संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200.

4– वही वही वही पृ0 200 .

श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी - यहाँ का सबसे मुख्य जिनालय है । यह रेलवे स्टेशन से 4 फर्लांग की दूरी पर एक विशाल कोट के अन्दर अद्भुत जिन बिम्ब एवं चैत्यालयों से सुशोभित है । इसके प्रमुख हाथी द्वार से प्रवेश करते ही सामने भव्य ऊँचा मान स्तम्भ है ।[1] मान स्तम्भ के बाद की जमीन के समतल से लगभग 10 मीटर की ऊँचाई पर एक टीले पर विशाल परकोटे से वेष्टित मंदिर है जहाँ 9 प्राचीन वेदियाँ हैं । मंदिर नं0 3 दरवाजे के सामने ही है । यह भगवान अभिनन्दन नाथ का जिनालय है । इसमें भगवान अभिनन्दन नाथ की श्याम वर्ण पाषाण की 4 फी. ऊँची पद्मासन मूर्ति सं01243 की स्थापित है ।[2]

इसी के नीचे क्षेत्रपाल जी के नाम से एक शिलाखण्ड है, जिसके निकट एक कुण्ड है । ऐसी जनश्रुति है कि यह कुण्ड सालु घी डाले जाने पर भी कभी भरा नहीं जा सका । इसी मंदिर की दालान के बायें में नीचे व ऊँचे खण्ड में भी नन्धुम स्वामी की एक प्राचीन मूर्ति है । मंदिर नं0 4 में वि0 सं0 1223 की सफेद पाषाण की सुन्दर मूर्ति है जिसमें आभायु आती है ।[3]

मंदिर जी के प्रांगण में एक विशालकाय बाँबी है, जिसके संबंध में जनश्रुति है कि मध्य रात्रि के समय श्री क्षेत्रपाल जी की सवारी नगर परिक्रमा हेतु निकलती है ।[4]

मंदिर नं0 7 में लगभग 7 फी. ऊँची वि0 सं0 1706 में निर्मित भगवान पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति चट्टान में उत्कीर्ण है जिसके चरण से लेकर मस्तक के ऊपर तक 7 फणों से युक्त सर्प चिन्ह बना हुआ है । इसकी पालिश चमकदार है ।[5]

इसी के निकट प्राचीन भोयरा है जिसमें चट्टान में उत्कीर्ण 12 तीर्थंकरों की तथा 35 देव-देवियों की मूर्तियाँ हैं । भगवान बाहुबली की मनोहर मूर्ति है । चट्टान में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ स्वामी की 6 फी. ऊँची एक

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग :संकलन-संपादन, बलभद्र जैन , पृ0200.
2- वही वही वही पृ0 200.
3- वही वही वही पृ0 200.
4- वही वही वही पृ0 200.
5- वही वही वही पृ0 200.

कायोत्सर्गासन मूर्ति भी है ।[1]

मंदिर संख्या 9 ऊंचाई पर स्थित है । इसके भीतर की वेदिका के पीछे अति प्राचीन विशाल कायोत्सर्गासन प्रतिमा आवरण से आवेष्टित है । वेदी के सामने ही द्वार के ऊपर एक आले के भीतर की ओर एक जिन प्रतिमा है। पास ही एक वेदिका में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है ।[2]

क्षेत्रपाल जी के अंदर के सभी मंदिर अतिशय युक्त हैं ।[3]

==============

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग 1 : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ० 200 .

2- वही वही वही पृ० 200 .

3- वही वही वही पृ० 200 .

अध्याय - 5

जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों की स्थापत्य कला

स्थापत्य के रूप में जैन मंदिरों का निर्माण बहुत प्राचीन समय से ही प्रारंभ हुआ था लेकिन जनपद ललितपुर में गुप्त-काल से ही जैन मंदिरों के प्रमाण व उदाहरण मिलते हैं । गुप्त-कालीन जैन मंदिर देवगढ़ में उपलब्ध हुए हैं । इस काल में मिट्टी और लकड़ी आदि अस्थायी माध्यमों के स्थान पर ईंट व पत्थर के स्थायी माध्यम स्वीकार किये गये ।[1] मंदिरों में सौन्दर्य की ओर अधिक ध्यान दिया गया । द्वार स्तम्भों को मंगलघट, कल्पवृक्ष, युगल छवि और पत्रावली आदि द्वारा अलंकृत किया जाने लगा । गंगा-यमुना के अंकन का व्यापक प्रचार भी इसी समय हुआ ।[2] तोरण के मध्य मंदिर से सम्बद्ध देव की मूर्ति उत्कीर्ण की जाने लगी । गर्भगृह की छत भीतर से सपाट होती थी और उसके ऊपर लघु शिखर का निर्माण होता था । देवगढ़ में गुप्तकालीन शिखर का अविकसित रूप देखने को मिलता है । इस काल के उत्तरार्द्ध में मंदिर स्थापत्य कला पर्याप्त विकसित हो गयी । शिखर का रूप परिवर्तित और विशिष्ट हो गया । बाह्य भित्तियों पर मूर्तियों आदि के अंकन तथा प्रदक्षिणापथ का अलंकरण भी प्रारंभ हुआ । सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि इस युग के मंदिर की यह थी कि उसके साथ मण्डप भी निर्मित होने लगे ।[3] यह मण्डप प्रवेश द्वार के सामने स्तम्भों पर आधारित छत के रूप में मिलता है । कुछ मंदिरों में देवों, यक्षों, गन्धर्वों और अप्सराओं आदि के अंकन भी उत्तर गुप्तकाल की विशेषता है ।

गुप्तोत्तर काल [600 ई० के पश्चात्] में उत्तर भारत में नागर शैली का विकास हुआ । शिखर के अलंकरण पर ज्यादा बल दिया गया लेकिन

1- प्राचीन भारतीय संस्कृति, ले० बी०एन० लूनिया पृ० 642.

2- भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान, ले० कृष्ण दत्त वाजपेयी पृ०126-27.

3-[अ] प्राचीन भारतीय संस्कृति, ले० बी०एन० लूनिया, पृ० 649.
[ब] प्राचीन भारत का इतिहास, ले० सत्य नारायण दुबे, पृ० 266.

मंदिर स्थापत्य के शेष सभी तत्व मामूली परिवर्तनों के साथ पूर्ववत चलते रहे । जो परिवर्तन हुए उनसे मंदिर की चार भिन्न भिन्न शैलियाँ शुरू हुयीं : 1-गुर्जर प्रतिहार शैली , 2- कलचुरि शैली , 3- चन्देल शैली , 4- कच्छपघात शैली ।

1- गुर्जर प्रतिहार शैली - इस शैली के मंदिरों को गोलाकार पूर्ण-भद्र कहा जाता है । कुछ मंदिर सोलह कलाओं के कारण षोडशभद्र भी कहे जाते हैं । साधारणतः मंदिरों के आठ अंग होते थे : अधिष्ठान, वेदिबन्ध, अन्तर्पत्र, जंघा, वरण्डिका ,शुकनासिका ,कण्ठ और शिखर । शिखर के तीन भाग होते थे : आमलक , आमलिका और कलश । मंदिर के भीतर गर्भगृह और सामने एक मण्डप होता था । स्तम्भों पर ऊपर की ओर घटपल्लव की रचना होती थी । अन्य अलंकरणों में शार्दूल पत्रावलि और कमल आदि मुख्य थे जिन्हें जगती के चारों ओर अंकित किया जाता था । मत्तवारण और वसन्तपट्टिका के अंकन भी होते थे । दीवारों के बाहरी भित्तों पर मोतियों का अलंकरण गुप्तकाल की अपेक्षा कुछ अधिक किया जाता था । द्वार के अलंकरण में घटपल्लव , हंस, कीर्तिमुख और गंगा-यमुना के अंकन पूर्ववत होते रहे थे ।[1]

2- कलचुरि शैली - इन्होंने पूर्व शैलियों की भाँति वास्तुविन्यास में अलंकरण को प्रधानता दी लेकिन प्राकृतिक दृश्यों की अपेक्षा मानवाकृतियों , गणों और उप-गणों आदि को अधिक महत्व दिया था । द्वारों के अलंकरण पर और अधिक बल दिया गया था। सप्तशाखा-द्वारों का प्रारंभ इसी समय से हुआ था । ऐसे द्वारों के तोरण पर सात पट्टिकायें होती थीं, जिन पर क्रमशः नाग, रूप, व्याल [शार्दूल] ,मिथुन, नवग्रह , दिक्पाल और कमल-दल [नीचे-ऊपर] के अंकन किये जाते थे । इस शैली में शिखर की ऊँचाई बहुत होती गयी । शिखर ऊपर की ओर अपेक्षाकृत अधिक पतला होता गया । वैष्णव, शैव और जैन मंदिरों के निर्माण -विधि में कोई अंतर नहीं होता था । जनपद ललितपुर के दुधई, चाँदपुर, सेरोनजी आदि स्थानों पर इन्हीं तीनों सम्प्रदायों के मंदिर पास पास और एक ही प्रकार के हैं । इस शैली की सबसे बड़ी देन है पंचायतन शैली का प्रारंभ । मण्डप तो गुर्जर प्रतिहारों के

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला , डॉ० भाग चन्द्र जैन , पृ० 51 .
[ब] बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ,डॉ०एस०डी० त्रिवेदी,पृ० 33-34 .

समय से ही बनता आया था , इस समय अर्ध-मण्डप और बनाया जाने लगा, जिससे मंदिर के पांच भागों [आयतनों] की पूर्ति हो गयी ।[1]

3- चन्देल शैली - चन्देल काल में पंचायतन मंदिरों का पर्याप्त विकास हुआ। शिखर शैली भी इस काल में अपने उत्कृष्ट रूप को प्राप्त हुयी । अलंकरणों के अंतर्गत मूर्तियों की अधिकता थी । कलचुरि काल की भाँति इस काल में भी वैष्णव, शैव और जैन मंदिर एक दूसरे के समान और पास पास निर्मित हुए। धर्म पर कौल कापालिकों का प्रभाव बढ़ा । अतः रति चित्रों का आधिक्य , अप्सराओं का विविध मुद्राओं में अंकन और युग्म छवियों के अंकन में वृद्धि हुई।[2] कौल-कापालिक आदि वाम मार्गी साधुओं के लिये मठों का निर्माण मंदिरों के समीप ही होता था । मठों के कई तल [मंजिल] बनने लगे थे । इन साधुओं का जीवन आनन्दपरक रहा था । सम्भवतः इनका प्रभाव जैन साधुओं पर भी पड़ा होगा । ये साधु मंत्र-तंत्र आदि पर अधिक विश्वास रखते थे इसीलिये इनसे प्रभावित श्रावकों के अनेक तांत्रिक चिन्ह प्राप्त हैं ।[3] इस समय आचार्य परम्परा का महत्व बढ़ा था । चांदपुर के मंदिरों में ऐसे युग्म छवियों के अंकन के उदाहरण मिलते हैं ।[4]

4- कच्छपघात शैली - इस शैली में कला का अलंकारिक पक्ष अत्यन्त प्रबल हो उठा । दीवारों और स्तम्भों का कोई भी भाग अलंकरण रहित नहीं छोड़ा गया । मानव मूर्तियों में भी अप्सराओं और योगिनियों का अंकन अधिक हुआ।[5]

जनपद के जैन मंदिरोंकी स्थापत्य कला - [स्वरूप और विशेषतायें]-

देवगढ़ के जैन मंदिर[स्थापत्य] का निर्माण एक समतल अधित्यका पर हुआ है । उसकी भूमि ठोस है । सभी मंदिर और स्तम्भ-मानस्तम्भ

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 51 .
2- मध्य प्रदेश सन्देश [अगस्त, 1962] चन्देल और उनकी देन, ले०कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 26 .
3- मध्य प्रदेश सन्देश [[अगस्त, 1962, चन्देल और उनकी देन, ले०कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ०2[illegible]
4- सागर वि०वि० पुरातत्व पत्रिका सं० 1, 1967:मध्यप्रदेश का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अनुशीलन ,ले०कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ० 87 .
5- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन . पृ० 52 .

चारों ओर से लताओं और वृक्षों से घिरे हैं । इनका निर्माण यहीं से खोद कर निकाले गये लाल बलुआ और ग्रेनाइट तथा काले और भूरे पाषाणों से किया गया है । पाषाणों की जुड़ाई में चूना, लोहा और सीसा का प्रयोग किया गया है । आधुनिक काल में जीर्णोद्धार के समय सीमेन्ट, चूना तथा कुछ द्वारों के लिये लकड़ियों का प्रयोग किया गया है ।[1]

देवगढ़ के स्थापत्य का निर्माण किसी एक व्यक्ति या राजवंश की देन नहीं है । इसका निर्माण सोलह सौ वर्षों तक चलता रहा । यहाँ एक ओर मंदिर के प्रारम्भिक रूप का दर्शन होता है तो दूसरी ओर उत्तर मुगल काल तक की कला की विशेषताओं के भी दर्शन होते हैं ।[2]

अग्नि पुराण में 45 मंदिरों की एक सूची दी गयी है, जिसमें चतुष्कोण , अष्ट कोण , षोडशभद्र और पूर्णभद्र मंदिरों के भी नाम हैं ।[3] गरुड़ पुराण में भी यही क्रम द्रष्टव्य है ।[4] बृहत संहिता में मंदिरों के 20 भेद बताये गये हैं जिसमें चतुष्कोण , अष्टकोण, षोडशभद्र और पूर्णभद्र मंदिरों के भी नाम हैं ।[5] देवगढ़ में मंदिर सं0 15 षोडशभद्र और मंदिर सं0 28 पूर्णभद्र हैं, शेष सभी मंदिर चतुष्कोण हैं जिनमें से कुछ समचतुष्कोण नहीं हैं । अष्टकोण मंदिर यहाँ प्राप्त नहीं हुये हैं । अग्निपुराण में उपरोक्त श्लोकों के तुरन्त पश्चात् लिखा है कि ये नाम नागर प्रासादों के और लाट प्रासादों के भी हैं । इस दृष्टि से देवगढ़ के सभी मंदिर नागर - प्रासादों के अंतर्गत रखे जायेंगे, लेकिन समरांगण सूत्रधार के 63वें अध्याय में 20 प्रकार के मंदिर परिवर्णित हुए हैं और उन्हें द्राविड़ प्रासादों तथा वाराट प्रासादों से पृथक निर्दिष्ट किया गया है । इन उल्लेखों के आधार पर देवगढ़ के सभी मंदिर नागर शैली के अंतर्गत आयेंगे । केवल मंदिर सं0 12 में प्रदक्षिणापथ शेष है इसलिये इसे सान्धार प्रासाद कहेंगे और शेष को निरन्धार । इसी प्रकार इस मंदिर में गर्भगृह ,

---

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 52 .
2- वही वही पृ0 53 .
3- अग्निपुराण ; महर्षि वेदव्यास, [आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा संपादित] अध्याय 104, श्लोक 13-20 .
4- गरुड़ पुराण ;डा0 रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित, अध्याय 47 पद 19-34.
5- बृहत्संहिता ; वराहमिहिर ,अध्याय 56 श्लोक 17-18 .

प्रदक्षिणापथ , अन्तराल ,महामण्डप और अर्धमण्डप हैं । इसलिये इसे पंचायतन शैली का मानेंगे । शेष में से कुछ में गर्भगृह , महामण्डप और अर्धमण्डप, कुछ में गर्भगृह और मण्डप तथा कुछ में केवल गर्भगृह ही हैं । अतः ये सब पंचायतन शैली में नहीं आयेंगे । शास्त्रों के अनुसार पंचायतन शैली को ही मंदिर का पूर्ण रूप माना गया है ।[1]

अधिकांश मंदिरों पर शिखर की रचना हुयी है । कुछ लघु मंदिरों पर लघु शिखर (गुमटी) निर्मित हुए हैं । जिन मंदिरों के शिखर प्रारंभिक स्वरूप से अलग दिखते हैं वे जीर्णोद्धार के परिचायक हैं । कुछ शिखर अर्धमण्डप पर बने हैं । जिन मंदिरों पर शिखर नहीं हैं उनकी छतें सपाट हैं । बड़े मंदिरों की सपाट छतें मूलतः कई पाषाण शिलाओं की संयोजना करके निर्मित की गयी थीं । कालान्तर में ध्वस्त हो जाने के कारण अब उन्हें साधारण पाषाण शिलाओं को सीमेन्ट से जोड़ कर बना दिया गया है । मंदिर सं0 30 के मण्डप की छत अभी भी उसी प्रकार की शिला प्रणालियों द्वारा निर्मित है । लघु मंदिर सं0 6 की छत एक शिला द्वारा निर्मित की गयी है ।[2]

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एक विशेषता यह भी है कि कुछ मंदिर , मंदिर कम निवास स्थान अधिक मालूम पड़ते हैं । सम्भवतः देवगढ़ में साधुओं और भट्टारकों के लिए कुछ निवासगृहों का निर्माण हुआ था जो बाद में मंदिरों के रूप में परिणत कर लिए गये । इनके उदाहरण हैं मंदिर सं0 2, 8, 14, 21, और 27 ।[3] ~~देवगढ़देवगढ़~~

देवगढ़ के कुछ विशिष्ट मंदिरों की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं:-
मंदिर सं0 12 - यह मंदिर देवगढ़ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । कला,शैली और अभिलेखों से प्राप्त निष्कर्ष के अनुसार इस सम्पूर्ण मंदिर का निर्माण 3-4 बार में हुआ है । इस मंदिर का महामण्डप संभवतः एक स्वतंत्र मंदिर के रूप में

1- देवगढ़ की जैन कला , डा० भागचन्द्र जैन , पृ० 53 .
2- वही वही पृ० 54 .
3- वही वही पृ० 54 .

सर्वप्रथम निर्मित हुआ था । इसके पश्चात् शिखरयुक्त गर्भगृह का निर्माण भी एक स्वतंत्र मंदिर के रूप में हुआ । फिर महामण्डप और गर्भगृह के मध्यवर्ती अन्तर को प्रदक्षिणापथ के निर्माण द्वारा पूरा करके इनमें एकत्व की संयोजना की गयी । इसके पश्चात् इस मंदिर को पंचायतन बनाने के लिये अर्धमण्डप का निर्माण हुआ । इस प्रकार यह सम्पूर्ण मंदिर एक विचित्र संयोग के फलस्वरूप विभिन्न संयोजनाओं के द्वारा अस्तित्व में आया । इसके अंग-प्रत्यंग निम्न रूप में हैं :-

महामण्डप - सर्वप्रथम स्वतंत्र मंदिर के रूप में यह महामण्डप चौथी शताब्दी में निर्मित हुआ था । 36 स्तम्भों पर आधारित यह महामण्डप वास्तव में श्रीमण्डप के रूप में निर्मित हुआ था । श्रीमण्डप वे प्रकोष्ठ होते हैं जिनकी रचना तीर्थंकर के समवसरण के ठीक मध्य में की जाती है । इनकी संख्या 12 होती है। इसमें वे इसी संख्या में हैं । ये श्रीमण्डप प्रत्येक दिशा में वीथि पथ को छोड़ कर चार-चार भित्तियों के अंतराल से तीन-तीन होते हैं । इनके मध्य में गन्धकुटी की रचना होती है । गन्धकुटी वह चतुष्कोण प्रकोष्ठ होता है जिसकी रचना 12 श्रीमण्डपों के मध्य तीन पीठिकाओं पर होती है । इसके मध्य में सिंहासन पर विराजमान होकर तीर्थंकर धर्मोपदेश देते हैं । प्रस्तुत महामण्डप के मध्य में भी एक समचतुष्कोण वेदी थी[1] जिसे गन्धकुटी के रूप में ही निर्मित किया गया होगा । अब यह वेदी नहीं है । इसे क्षेत्रीय प्रबंध समिति ने इसलिए हटा दिया है कि उससे मंदिर की संयोजना और आकर्षण में बाधा होती थी । इस वेदी में उत्कीर्ण अभिलेख [ज्ञान-शिला] [दे० चित्र सं० 44] में 18 भाषायें प्रयुक्त हुयी हैं ।[2] तीर्थंकर का धर्मोपदेश 18 महान भाषाओं [और 700 लघु भाषाओं] में होता है [3], जिसके प्रतीक रूप में यह अभिलेख प्रतिष्ठापित किया गया होगा । इस प्रकार यह भारतीय स्थापत्य कला को देवगढ़ की अद्भुत देन है ।[4]

गर्भगृह - इस गर्भगृह का निर्माण भी स्वतंत्र मंदिर के रूप में छठवीं शताब्दी में

1- [अ] ए०एस०आई०आर०: जिल्द 10: ए० कनिंघम पृ० 100-101.
   [ब] [illegible] प्रोग्रेस रिपोर्ट: भाग 2: दयाराम साहनी पृ० 9.
2- इस अभिलेख की प्रथम पंक्तियों में वास्तव में विभिन्न वर्णमालाओं के नमूने समाविष्ट हैं, जिनमें अधिकांश द्राविड़ तथा मौर्यकालीन ब्राह्मी भी समाविष्ट यद्यपि तुर्की और फारसी उसमें नहीं हैं। ए०प्रो०रि०भाग-2, 1918: दयाराम साहनी पृ० 10.
3- तिलोयपण्णत्ति: ले० यतिवृषभाचार्य, 4- 902.
4- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 56.

हुआ था । गुप्तकाल के उत्तरार्द्ध में प्रचलित सभी विशेषतायें इस में हैं । इसका अलंकृत शिखर, बाह्य भित्तियों की अलंकरण विहीन योजना और दोहरी कार्निस आदि विशेषतायें गुप्तकाल की कृति प्रमाणित करते हैं । इसका प्रवेश द्वार अपेक्षाकृत अधिक विकसित और अलंकृत है, लेकिन उसके भीतरी बांये पक्ष पर उत्कीर्ण अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह संवत् 1051 में स्थापित किया गया था । इसका पूर्व प्रवेश द्वार नष्ट हो गया था जिसे बदल कर यह नया प्रवेश द्वार स्थापित किया गया था । इसमें स्थित तीर्थंकर मूर्ति की मुखाकृति, जटा-जूट, अंग-प्रत्यंग का सूक्ष्म अंकन तथा अलंकरण की बहुलता गुप्तकाल में विशेष रूप से प्राप्त होती थी ।[1]

प्रदक्षिणा-पथ - प्रदक्षिणापथ गर्भगृह एक या डेढ़ शती पश्चात् निर्मित हुआ होगा । इसकी बहिर्भित्तियों में संयोजित जालीदार कटाव तथा 24 यक्षियों की मूर्तियों के अंकन सहित स्तम्भों की कला गुर्जरप्रतिहार कालीन प्रतीत होती है । यक्षी मूर्तियों के नीचे उत्कीर्ण उनके नामों की लिपि 9वीं शती से पूर्व की नहीं हो सकती । और फिर किसी भी गुप्तकालीन मंदिर में प्रदक्षिणापथ देखने को नहीं मिलता । डा० हंसमुख धीरजलाल सांकलिया ने बहिर्भित्तियों पर अंकित यक्षी मूर्तियों को लगभग 600 ई० से पूर्व से चन्देल काल तक की माना है ।[2] इससे भी उपर्युक्त धारणा की पुष्टि होती है। प्रदक्षिणापथ चतुष्कोण है । उसके चारों ओर एक-एक द्वार है, इनमें से पश्चिमी अर्थात मुख्य द्वार अपेक्षाकृत विशाल और अधिक अलंकृत है । ऐसे द्वारों का प्रारंभिक रूप गुर्जरप्रतिहार काल में मिलता है ।[3]

अन्तराल - अन्तराल का निर्माण कदाचित् प्रदक्षिणा पथ के साथ या उसके कुछ समय बाद हुआ होगा । इसके भीतर दायें-बांये एक-एक लघु मंदिर की संयोजना है । इन लघु मंदिरों का निर्माण अन्तराल के साथ नहीं बल्कि कम से कम एक शती पश्चात् हुआ होगा । इन लघु मंदिरों में यक्षियों की

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 55.

2- बुलेटिन आफ दि डेक्कन कालेज रिसर्च इंस्टीट्यूट, जिल्द-1, अंक 2-4, मार्च, 1940: जैन यक्षाज एण्ड यक्षिणीज़, ले० डा० हंसमुख धीरजलाल सांकलिया, आकृति 6, 8, 9.

3- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 57.

दो-दो मूर्तियाँ स्थापित थीं, जिससे प्रतीत होता है कि ये किसी ऐसे भट्टारक की प्रेरणा से निर्मित किये गये होंगे जिसके विचार से गर्भगृह में प्रवेश करने से पूर्व विशिष्ट स्थान में स्थापित यक्षी मूर्ति का दर्शन अनिवार्य होता था। विचारों की यह कट्टरता भट्टारकों में नवीं शती के पश्चात् आयी थी। अतः कहा जा सकता है कि इन लघु मंदिरों का निर्माण भी नौवीं शती के पश्चात् हुआ होगा जब अन्तराल निर्मित हो चुका था।[1]

अर्धमण्डप - अर्धमण्डप भी प्रदक्षिणापथ के साथ या कुछ बाद निर्मित हुआ होगा। यह चार स्तम्भों पर आधारित है। सामने के दो स्तम्भ समान हैं और शेष दो असमान। उसके दक्षिण पूर्वी स्तम्भ पर के अभिलेख में संवत् 919 उत्कीर्ण है। इसमें प्रस्तुत स्तम्भ के निर्माण का उल्लेख है, अर्धमण्डप के निर्माण का नहीं। अनुमानतः ये मूल स्तम्भों के खण्डित हो जाने से समाविष्ट किये गये होंगे। उसके शीर्ष मौलिक हैं। सामने के स्तम्भों पर चौकियों के ऊपरी भाग के चारों ओर क्षेत्रपालों का अंकन है। उनके ऊपर शिखराकृतियों से युक्त देवकुलिकाओं में तीन-तीन ओर तीर्थंकरों की कायोत्सर्गासन और एक-एक ओर यक्षियों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। उनके ऊपर दोनों स्तम्भों पर प्रत्येक ओर एक-एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर अंकित हैं. इनके दोनों ओर एक-एक सुन्दरी का आकर्षक अंकन है। सुंदरियों के पार्श्व में एक-एक पुरुषाकृति और नारी आकृति उत्कीर्ण की गयी हैं। इसके ऊपर पत्रावलि का अलंकरण और उसके ऊपर विभिन्न देवी-देवियों का चित्रण है। इसके ऊपर नृत्य-मण्डली और उसके ऊपर जालीदार कटाव का अंकन है। इसके पश्चात् कीचक दिखाये गये हैं। तोरण पर गोमुख यक्ष और एक संगीत मण्डली का अंकन है। अर्ध मण्डप और महामण्डप के मध्य खुला चबूतरा पड़ा है।[2]

उपरोक्त विवेचनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मंदिर सं0 12 दो मौलिक मंदिरों का समन्वित और परिवर्तित रूप है और उसका निर्माण चौथी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक होता रहा। वर्तमान में यह मंदिर पंचायतन

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला डा0 भागचन्द्र जैन, पृ0 57.
   [ब] स्टडीज़ इन साउथ एशियन कल्चर: भाग-1: दि जिन इमेजेज़ आफ देवगढ़, डा0 क्लाउज़ ब्रुन, पृ0 35-39.

2- [अ] वही वही पृ0 56.
   [ब] वही वही पृ0 35-39.

शैली का सुंदर प्रासाद है ।

मंदिर सं0 30 - मंदिर सं0 30 गुप्तकालीन वास्तु का सुंदर नमूना है । उसका विन्यास ग्रीक मंदिरों से अनुप्राणित प्रतीत होता है । उसका स्तम्भों पर आधारित मण्डप, साधारण अधिष्ठान ,सपाट छत और चतुष्कोण गर्भगृह उसे साँची के मंदिर सं0 17 के[1] अनुरूप सिद्ध करते हैं । स्तम्भों का आकार चौकियों पर चतुष्कोण मध्य में षोडश कोण और शीर्ष पर गोल हैं । पाषाणों की चुनाई गारे के बिना चुनी है और उन पर प्लास्टर नहीं हुआ है । गर्भगृह का प्रवेश द्वार संकीर्ण है । छत का रूप धारण करने वाली शिला प्रणालिकायें एक दूसरे से गारे आदि के बिना ही जोड़ी गयी हैं ।[2]

मंदिर सं0 15 - यह मंदिर देवगढ़ का एक सुन्दरतम मंदिर है । प्रवेश द्वार और स्तम्भों का अलंकरण इसका प्रमाण है । एक राहायन से प्रवेश द्वार तक पहुँचा जाता है जिसका निर्माण शेष तीन राहायनों से भिन्न है । अधिष्ठान की ऊँचाई दोनों ओर की भित्तियों से काट कर यह राहायन ऊपरी सोपान से लगभग 6इंच पर प्रारंभ होता है । भित्तियों से लगभग 8इंच दूर दोनों ओर एक-एक अंशुक्त स्तम्भ हैं जिनसे यह राहायन एक लघु मण्डप का रूप ग्रहण कर लेता है। यह राहायन गुर्जरप्रतिहार काल के मण्डप का प्रारंभिक रूप लगता है । देहली के मध्य में उभरा हुआ कल्पवृक्ष उसके दाँये ओर युग्म छवि और बाँये ओर कीर्तिमुख तथा दोनों ओर सिंह द्वारा आक्रान्त एक-एक पुरुष चित्रित हैं । द्वार पक्षों पर अपने अपने वाहनों पर आरूढ़ गंगा-यमुना सहायक देवियों के साथ अंकित हैं । उनके घटों पर नाग-नागी के अंकन हैं । फिर प्रत्येक द्वार स्तम्भ पर तीन शाखायें प्रारंभ होती हैं । प्रथम और द्वितीय शाखाओं में पत्रावलि और शार्दूल पत्रों का आलेखन हैं । मध्य की शाखाओं में चार-चार कोष्ठकों में तीर्थंकरों की पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । सिरदल के मध्य में निर्मित कोष्ठक में एक और उसके दोनों ओर चार-चार पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियों के अंकन हैं ।गर्भगृह की सजावट और मूर्तियाँ भी महत्वपूर्ण हैं । इसके तीन राहायनों में तीन विशाल देवकुलिकायें निर्मित हैं । दक्षिण की देवकुलिका में अब मध्यवर्ती मूर्ति नहीं है,उसके स्थान पर एक गवाक्ष निर्मित कर दिया गया है । उत्तरी देवकुलिका में एक विशाल पद्मासन

1- दि मोनुमेन्ट्स आफ सांची ,जे0 एवं जान मार्शल, जिल्द 3,फलक CXIV

2- देवगढ़ की जैन कला , डा0 भागचन्द्र जैन पृ0 58-59 .

और उसके दोनों ओर अनेक कायोत्सर्गासन मूर्तियाँ अंकित हैं । पूर्वी देवकुलिका में तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं । इसके द्वार स्तम्भों पर गंगा-यमुना का चित्रण है । देवकुलिका के निर्माण ,अधिष्ठान की ऊँचाई ,द्वारों और स्तम्भों के अलंकरण आदि की दृष्टि से दशावतार मंदिर के समय ही निर्मित हुआ मालूम पड़ता है।[1]

यह चौकोरबद्ध [2] मंदिर है । इसके 24 स्तम्भों की ऐसी संयोजना की गयी है कि उससे § + § का आकार बन गया है । इस प्रकार इस मंदिर के गुप्तकाल या उसके तुरन्त पश्चात् निर्मित हुए होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है ।[3]

मंदिर सं0 31 - देवगढ़ की गुप्तोत्तर कालीन कृतियों में यह मंदिर उल्लेखनीय है । अधिष्ठान की सादगी , प्रवेश द्वार का अलंकरण ,दोहरी कार्निस और सपाट छत के आधार पर इसे सातवीं शती का निर्मित हुआ कहा जा सकता है। इसके प्रवेश द्वार को गुर्जरप्रतिहार कालीन सप्त शाखा द्वार का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है । गंगा-यमुना , तोरण के मध्यवर्ती तीर्थंकर और नवग्रह का अंकन यहाँ अत्यन्त सूक्ष्मता से किया गया है । डेयढ़ी पर अंकित मत्स्यधारण और कल्पवृक्ष आदि इसे गुप्तोत्तर कालीन प्रमाणित करते हैं ।[4]

मंदिर सं0 4 - यह मंदिर गुप्तकाल के तुरन्त पश्चात् निर्मित हुआ होगा । अधिष्ठान की सादगी, स्तम्भों का सीमित अलंकरण ,अर्धमण्डप और उसके ऊपर का अविकसित लघु शिखर ,दोहरी कार्निस और प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना का अलंकरण इस मंदिर की मुख्य विशेषतायें हैं । मंदिर के दायें स्तम्भ में संवत् 1224 का ,बायें स्तम्भ में संवत् 1207 का और बहिर्भित्ति पर संवत् 1709 के उत्कीर्ण अभिलेख इसके निर्माण काल के नहीं बल्कि जीर्णोद्धार की सूचना देते हैं द्वार के अलंकरण में कल्पवृक्ष , युगल छवि और पत्रावलि आदि इसमें गुप्तकालीन वास्तु के लक्षण हैं । इसकी सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता उसकी भित्तियों के निर्माण में पाषाण चुनने की शैली है जो सांची के 17वें मन्दिर[5]

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 59 .
2- वृहत संहिता वराहमिहिर,अध्याय 56,श्लोक 58 .
3- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 59-60.
4- वही वही वही पृ0 60 .
5- इण्डियन टेम्पल्स एण्ड वदर कम्पर , ले0 फ्रेडरिक गुप्ता . पृ0 191 फाक 154.

§425 ई0§ और एहोल के लघु मंदिर[1] §पाँचवीं शती§ आदि की बहिर्भित्तियों से अत्यधिक समानता रखती है । [2]

मंदिर सं0 18 - यह मंदिर भी गुप्तकाल के तुरन्त पश्चात् की कृति है । अधिष्ठान की सादगी , स्तम्भों का सीमित अलंकरण, अर्धमण्डप और उसके ऊपर का अविकसित लघु शिखर , दोहरी कार्निस और प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना का आलेखन इसके प्रमाण हैं।[3]

मंदिर सं0 28 - यह पूर्णविद्ध मंदिर है । राहापगों के अतिरिक्त अर्धकोणक और कोणक पगों के लघु आकार से सम्पूर्ण रेखाकृति को गोल आकार मिल गया है । अधिष्ठान की ऊँचाई नहीं के बराबर है । बहिर्भित्तियों पर दोहरी क कार्निस , मण्डप § जो नष्ट हो चुका है§ का सद्भाव प्रवेश द्वार का सीमित अलंकरण, एक अंग शिखर की संयोजना , मुख्य शिखर की अलंकरणहीनता और छत से ही पतला होते जाना आदि ऐसी विशेषतायें हैं जो इस मंदिर को गुप्तकाल और गुर्जरप्रतिहार काल की कड़ी सिद्ध करती हैं । अनुमानतः यह आठवीं शती में कभी बना होगा । अंग शिखर का नीचे वाला लघु कक्ष सामने के राहापग में एक अलंकृत प्रवेश द्वार के साथ संयोजित है । इससे गुर्जरप्रतिहार कालीन वास्तु-कला का स्वरूप स्पष्ट हुआ है । प्रवेश द्वार पर तीन शाखायें हैं । गंगा-यमुना और अन्य अलंकरणों से गुप्तकालीन प्रवेश द्वार का आभास मिलता है । गर्भगृह और उसका प्रवेश द्वार अलंकृत नहीं है पर उसमें स्थित मूर्तियाँ प्राचीनता और कलापूर्णता के लिये विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

अंग शिखर की ऊँचाई छत से ।।फ. 8इंच है । उसमें सर्वप्रथम 4फी. 2इंच चौड़ी और 5फी. 3इंच ऊँची स्तम्भयुक्त देवकुलिका है । उसका तोरण टूट गया है । मुख्य मूर्ति भी टूट कर गिर गयी है । अब उसके स्थान पर दूसरी मूर्ति स्थापित कर दी गयी है । उसके दायें पार्श्वनाथ और बायें सुपार्श्वनाथ की पूर्ववर्ती मूर्तियाँ हैं । मुख्य मूर्ति के अष्टप्रातिहार्य का भाग मूल रूप में है जिसके मध्य में उड़ान भरते हुये चतुर्भुज उद्घोषक की स्थिति असाधारण है । उसके दोनों

1- इण्डियन टेम्पिल्स एण्ड इट्स जप्पर,ले0 फ्रेडरिक युक्त ,पृ0 209 फलक 180.
2- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन ,पृ0 60 .
3- वही वही पृ0 60

और तीन-तीन देवकुलिकायें हैं जिनमें से मध्यवर्तियों में पद्मासन और पार्श्व-वर्तियों में कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्तियां हैं । इस विशाल देवकुलिका के दोनों ओर दो-दो श्रीवत्स , उनके ऊपर एक-एक श्रीवत्स के साथ कल्पवृक्ष और उनके भी ऊपर बांयी ओर धरणेन्द्र-पद्मावती और दांयी ओर तीन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं । ललाट के ऊपर पत्रावली और उसके भी ऊपर लगभग 5फी. के त्रिकोण पर तोरणाकार अंकन है , जिसमें सबसे उड़ान भरता हुआ विद्याधर युगल दर्शनीय है । मुख्य शिखर अधिष्ठान से ही प्रारंभ हो जाता है और छत से लगभग 6फी. की ऊंचाई पर से अधिकाधिक पतला होने लगता है । आमलक काफी बड़ा है जिस पर आच्छादन सहित कलश है । उस पर आमलिका और उस पर दण्ड स्थित है सम्पूर्ण शिखर की ऊंचाई लगभग 25फी. है ।[1]

मंदिर सं0 5 - यह मंदिर, मंदिर सं0 28 का समकालीन प्रतीत होता है । यद्यपि इसका शिखर उसकी अपेक्षा कम ऊंचा और कम विकसित है। प्रवेश द्वारों पर गंगा-यमुना के अतिरिक्त महामानसी ,गौरी, महाकाली और अंबिका के आलेखन से भी यह गुर्जर प्रतिहार कालीन वास्तु सिद्ध होता है ।

भीतर समचतुष्कोण §7फी. 2इंच§ इस मंदिर में 4फी. का समचतुष्कोण और 7फी. 10इंच ऊंचा एक स्तम्भ स्थित है । चौकी 1फी. 3इंच ऊंची है जिसके चारों ओर सिंहासन के सभी आवश्यक लक्षण , कीर्तिमुख, सिंह और पशु-पक्षियां आदि अंकित हैं । यह दो पाषाणों से मिल कर बनी है । इसके ऊपर 3इंच की शिला और उसके भी ऊपर 6 इंच की कमलाकृत शिला स्थित है । उस पर भी 2 इंच की एक अंकरण रहित शिला है, जो जीर्णोद्धार के समय या तो बदल गयी या अतिरिक्त रूप से समाविष्ट कर दी गयी है । इस पर 5फी, 6इंच ऊंची और 2फी. 9 इंच का §बीच में§ समचतुष्कोण पाषाण स्थित है, जो ऊपर जाकर 2फी, 4इंच का समचतुष्कोण रह जाता है। इस पाषाण के चारों ओर समानान्तर 14 §आड़ी§ कतारों में तीर्थंकरों की कायोत्सर्गासन मूर्तियां और पद्मासन मूर्तियां अंकित हैं । उसके शीर्ष के प्रत्येक पार्श्व में 5-5 देवकुलिकायें हैं जिनमें से प्रत्येक दूसरी और चौथी में कायोत्सर्गासन और शेष में पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं । देवकुलिकाओं के ऊपर साधारण अंकरण और उसके ऊपर एक कलशाकृति का आलेखन है ।

1-देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 60-61 .

प्रवेश द्वारों की दृष्टि से यह मंदिर महत्वपूर्ण है । पूर्व और पश्चिम में तो पंचशाखा द्वार हैं ही , उत्तर और दक्षिण में भी कलाकार ने पाषाण में द्वाराकृतियाँ उत्कीर्ण करने का अद्भुत और सफल प्रयत्न किया है । फलस्वरूप यह मंदिर सर्वतोभद्र वास्तु की कोटि में आ सकता है । द्वारा-कृतियों के कपाट इतनी सूक्ष्मता और यथार्थता से उत्कीर्ण हुए हैं कि उनके वास्तविक होने का भ्रम हो जाता है ।

इस मंदिर में तीन अभिलेख प्राप्त हुये हैं : 1. पश्चिम द्वार के बायीं ओर बहिर्भित्ति पर , 2- पश्चिमी द्वार की ड्योढ़ी पर , 3- तथा तीसरा पूर्वी द्वार के ऊपर जड़ा हुआ , जिनमें क्रमशः संवत् 1120 , संवत् 1500 और संवत् 1503 पढ़ा जा सकता है । प्रथम दो अभिलेखों में यात्रियों के कीर्तिमान हैं , जबकि तीसरे में इस मंदिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख है । मंदिर के निर्माण का उल्लेख नहीं है ।[1]

मंदिर सं0 11 - यह मंदिर शीतल मंदिर है । इसकी बहिर्भित्तियाँ अलंकृत नहीं हैं । सम्भोगरत युग्म , आकर्षक चेष्टाओं में मग्न सुन्दरियों और मोहक मुद्राओं में प्रस्तुत अप्सराओं की विरल संयोजना खजुराहो का पूर्ण रूप कहा जा सकता है ।

बहिर्भित्तियों में अधिष्ठान से 2फी. 2इंच की ऊँचाई से 3फी. 6इंच ऊँची एक पंक्ति है , जिसमें साधारण स्तम्भों द्वारा देवकुलिकाओं का आभास प्रकट होता है । कुछ देवकुलिकाओं में तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं , कुछ में मानस्तम्भों का आलेखन है , शेष अधिकांश अंकरण रहित हैं । जिसके ऊपर दूसरी पंक्ति है । यह अपेक्षाकृत कम ऊँची है और उसमें कोई अंकरण नहीं है । तीसरी पंक्ति की ऊँचाई पहली पंक्ति के बराबर है और उसमें सघन स्तम्भाकृतियों के अतिरिक्त कोई अंकन नहीं है ।

इसका अर्ध मण्डप पर आधारित है । वह काफी लम्बा है । प्रवेश द्वार का अंकरण कलचुरि कालीन प्रतीत होता है । महामण्डप काफी विशाल है । गर्भगृह का प्रवेश द्वार भी अलंकृत है । उसमें 2फी. 4इंच ऊँची, 2फी. 4इंच चौड़ी और 6फी. 5इंच लम्बी वेदी है , लेकिन वर्तमान में

1- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 61-62.

कोई प्रतिमा नहीं है । उसके नीचे महावीर की (सिंह का चिन्ह अस्पष्ट) विशालाकार पद्मासन मूर्ति रखी गयी है, उसमें संवत् 1105 का तीन पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है । उसमें मंदिर के निर्माण और प्रतिष्ठा का कोई उल्लेख नहीं है । वैसे भी मंदिर के निर्माण या प्रतिष्ठा का उल्लेख प्रतिमा पर हो यह बात असंगत है । महामण्डप के उत्तरी पूर्वी कोने में दूसरे तल के लिए सोपान मार्ग है ।

दूसरे तल पर अर्ध-मण्डप के दायें और बायें एक-एक वेदिका है जिनकी बाह्य वेष्टनी के रूप में संयोजित शिलायें बाहर की ओर स्तम्भाकार अलंकरणों से युक्त हैं । महामण्डप का प्रवेश द्वार अलंकृत है । उसके बायें द्वार पक्ष पर दर्पणधारिणी शुचि स्मिता अंकित है । गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर अम्बिका अंकित हैं जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि दूसरे तल के मूल नायक नेमिनाथ थे । जीर्णोद्धार के समय उनकी मूर्ति नीचे के तल में स्थानांतरित कर दी गयी, जिसे आज भी वहाँ देखा जा सकता है । इसमें स्थित शान्तिनाथ की मूर्ति (स्थापित संवत् 1995) यहाँ एक मात्र संगमरमर की मूर्ति है ।

शैली और अलंकरण की दृष्टि से इसे कलचुरि कालीन (लगभग 900ई0) वास्तु कहा जा सकता है ।[1]

शेष मंदिर - उपरोक्त 9 मंदिरों के अतिरिक्त शेष में से अधिकांश का निर्माण कलचुरियों के शासनकाल में हुआ प्रतीत होता है । चन्देल कालीन अविकसित और प्रारंभिक रूप अवश्य यहाँ दृष्टिगत होता है लेकिन विकसित वास्तु के उदाहरण कदाचित् ही मिलते हैं । एक-दो मंदिरों का निर्माण मुगल काल में हुआ प्रतीत होता है[2]। वस्तुतः देवगढ़ में मंदिर निर्माण 10वीं शताब्दी से आगे विकसित नहीं हुआ । जीर्णोद्धार का कार्य चलता रहा । यद्यपि इनके मूल रूप की सुरक्षा का यथोचित ध्यान रखा गया है फिर भी इससे मंदिर के मूल रूप में कुछ अन्तर अवश्य आया है ।

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 62-63 .

2- उदाहरणार्थ मंदिर सं0 6 का निर्माण अब से लगभग 500 वर्ष पूर्व हुआ होगा और समीपवर्ती ध्वस्त स्मारकों की मूर्तियाँ इसमें स्थापित कर दी गयी होंगी, क्योंकि इसका भवन स्थापत्य कला की दृष्टि से बहुत ही आधुनिक प्रतीत होता है ।

मान स्तम्भ – मान स्तम्भ का निर्माण कदाचित् सर्वप्रथम मथुरा में §कुषाण काल में § हुआ था । इसके पूर्व सम्राट अशोक के काल में स्तम्भों का निर्माण हो चुका था । जैन परंपरा में स्तम्भों को मान स्तम्भ का रूप देकर मंदिरों के सामने निर्मित किया जाता रहा है । मंदिर को समवसरण का प्रतीक माना जाए तो उसकी चारों दिशाओं में एक-एक मान स्तम्भ निर्मित होना चाहिये, यद्यपि ऐसा उदाहरण कदाचित् कहीं प्रस्तुत नहीं किया गया । मथुरा के पश्चात् सर्वाधिक प्राचीन मानस्तम्भ कदाचित् देवगढ़ में ही उपलब्ध हुए हैं ।

मान स्तम्भों का स्वरूप प्रायः सर्वत्र एक समान मिला है । भूमि पर एक के ऊपरएक निर्मित तीन पीठिकाओं पर स्तम्भ दंड स्थित रहता है जिसके शीर्ष पर एक सर्वतोभद्रिका स्थापित होती है । पीठिकायें अलंकृत भी होती थीं । स्तम्भ दंड कहीं अलंकृत , कहीं अल्प अलंकृत या अलंकरण विहीन मिले हैं । सर्व तोभद्रिका सर्वत्र अलंकृत ही प्राप्त हुयी है । उसके चारों ओर एक-एक स्तम्भ युक्त देवकुलिका अंकित होती है , जिनमें सर्वतोभद्रिका या तो उसी पाषाण में उत्कीर्ण की गयी होती थी या पृथक रूप से स्थापित कर दी जाती थी । इस सबके ऊपर एक लघु शिखराकृति का आलेखन होता था । सर्वतोभद्रिका चतुष्कोण ही होती थी ,जबकि स्तम्भदंड वृत्ताकार या चतुष्कोण या अष्ट-कोण होता था । पीठिकाओं का आकार प्रायः स्तम्भदंड के समान होता था । सम्पूर्ण मानस्तम्भ कभी एक, कभी दो और कभी तीन पाषाणों द्वारा निर्मित होता था । मान स्तम्भों की ऊंचाई भिन्न भिन्न तीर्थंकरों केसमवसरणों के अनुपात में भिन्न भिन्न होती थी ।

मध्यकालीन भारत में जैन मंदिर के सम्मुख विशाल स्तम्भ बनवाने की प्रथा विशेषतः दिगम्बर जैन समाज में रही थी । मध्यकाल में मान स्तम्भ जैन वास्तुकला का एक अंग बन गया था । देवगढ़ से पाये गये मान-स्तम्भों के अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि मानस्तम्भों की मौलिक परम्परा तो ही एक सी रही थी ,पर प्रान्तीय कलाविन्यास एवं निर्माणशैली सम्बन्धी अन्तर उनमें स्पष्ट है । देवगढ़ से पाये जाने वाले अधिक मान स्तम्भ ऐसे हैं

जिनके ऊपर के भाग में शिखर जैसी आकृति है ।[1]

देवगढ़ में इस समय 19 मानस्तम्भ हैं लेकिन सभी मानस्तम्भ नहीं देखे जा सकते । कुछ मान स्तम्भ स्थानान्तरित किये गये मालूम पड़ते हैं। देवगढ़ मानस्तम्भों की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना मूर्तियों मन्दिरों की दृष्टि से , फिर भी मान स्तम्भ क्रमांक 11, 13 और 17 कलागत सूक्ष्मता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । मान स्तम्भ सं0 17 प्राचीनता की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । [2]

चांदपुर-जहाजपुर के जैन मंदिर चन्देलकालीन कृति हैं ।[3]यहाँ पर प्राप्त संवत् 1207 के एक शिलालेख द्वारा यह ज्ञात होता है कि यहाँ के मंदिरों का निर्माता उदयपाल था जो सम्भवतः चन्देल शासक मदन वर्मन {1128-64ई0} का समकालीन था । अब यहाँ के जैन मंदिरों के भग्नावशेष ही शेष हैं । यहाँ के मंदिरों में चन्देल शैली की विशेषतायें देखने को मिलती हैं ।

यहाँ का शान्तिनाथ का प्रथम मंदिर सादा ही है पर गर्भगृह का द्वार अलंकरण युक्त है । द्वार स्तम्भ के केन्द्र में दाढ़ीयुक्त द्विभुजा आकृति है जो कमलनाल ग्रहण किये है । उसके एक ओर नागी और दूसरी ओर शालभंजिका है । द्वार स्तम्भ के नीचे वाला शिलापट गज, सिंह आदि आकृतियों से एवं गर्भ-गृह का सिरदल ध्यानी तीर्थंकर एवं नवग्रह की आकृतियों से भलीभाँति अंकित है।[4]

शान्तिनाथ का द्वितीय मंदिर भी भग्नावशेष रूप में है । मंदिर का द्वार पहले के सदृश छोटा है । इसमें अलंकरण के लिये पुष्पों का प्रयोग अधिक हुआ है । इससे प्रतीत होता है कि यह मंदिर चन्देल शैली में निर्मित था। [5]

शेष मंदिर पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं उनके चिन्ह मात्र शेष हैं ।

1- खण्डहरों का वैभव , ले0 मुनिकान्ति सागर , पृ0 119-20 .
2- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 63-64 .
3- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व,ले0 एस0डी0 त्रिवेदी , पृ0 35 .
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर - दुधई का योगदान , ले0 महेन्द्र वर्मा , पृ0 68 .

5 - वही वही वही पृ0 68-69 .

दुधई के जैन मंदिर भी चन्देल कालीन कृति हैं । मंदिरों के शिलालेखों एवं प्रतिमाओं के पुरातत्व अन्वेषण के आधार पर यह निश्चय है कि इन मंदिरों का निर्माण 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य में हुआ था । दुधई चन्देलकाल में एक प्रान्त के रूप में था और उनके समय में ही यहाँ के मंदिरों का निर्माण हुआ था ।[1] यहाँ के मंदिरों में चन्देल शैली की मुख्य विशेषतायें देखने को मिलती हैं ।

दुधई का प्रथम श्रेष्ठ मंदिर आदिनाथ का मंदिर है । इस मंदिर में वर्तमान समय में केवल गर्भगृह और मण्डप के भाग ही शेष हैं पर इन दोनों के अतिरिक्त उसकी बाहरी सीमा तथा वहाँ के अन्य अवशेषों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंदिर नागर शैली में निर्मित रहा होगा और यहाँ के श्रेष्ठ मंदिरों में इसकी गणना रही होगी । मण्डप के चारों स्तम्भ यद्यपि सादे हैं पर ऊपर के शिलापट्ट कलापूर्ण हैं और इनमें संगीत, नृत्यादि के विभिन्न मुद्राओं से युक्त मूर्तियाँ ,नागयक्षिकाओं की सुंदर प्रतिमायें अंकित हैं । इनके बीच में गजयुक्त तीर्थंकर की मूर्ति है । इससे यह प्रमाणित होता है कि यह चन्देल शैली के अंतर्गत निर्मित था । [2] यह

यहाँ के दूसरे मंदिर [शान्तिनाथ के मंदिर] का केवल गर्भगृह ही शेष है और उस पर भी इसका छत वाला भाग नष्ट हो चुका है । गर्भ-गृह की प्रतिमायें चंवरधारियों तथा कटिहस्त मुद्रा से युक्त दो पुरुषाकृतियों के अतिरिक्त त्रिछत्र, माल्यधारियों ,विद्याधरों , गजादि तथा कर्णयुक्त सर्पकुण्डली से अंकुल हैं । इससे प्रतीत होता है कि यह मंदिर भी चन्देल शैली में निर्मित था ।[3] यहाँ के शेष मंदिर पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं ।

मदनपुर के जैन मंदिरों की स्थापत्य कला भी चन्देल-कालीन है ।[4] यहाँ का प्रथम जैन मंदिर [ग्राम के मध्य में] एक शिखरबन्द विशाल पुरातन जैनमंदिर है जो अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है । गर्भगृह के ऊपर 40 फी. ऊँचा शिखर है । वेदी भी प्राचीन है ।[5]

1- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , ले० एस०डी० त्रिवेदी ,पृ० 87 .
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर-दुधई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा ,पृ० 69.
3- वही वही पृ० 69-70 .
4- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ,ले० एस०डी० त्रिवेदी, पृ० 35.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकःकलातीर्थ मदनपुर,ले० विमलकुमार जैन सोरया पृ

पंचमढ़ - एक चबूतरे पर पाँच मढ़ बने हैं । चबूतरे के चारों कोनों पर चार और एक बीच में बना है । चारों कोनों के चार मढ़ों की ऊँचाई 15फी. तथा बीच के मढ़ की ऊँचाई 20फी. है । इस प्रकार यह पंचायतन शैली का जैन मंदिर है ।[1]

शान्तिनाथ मंदिर - यह जमीन तल से 3फी. ऊँचे आसन पर एक विशालकाय मंदिर है । यह अहारक्षेत्रीय पुरातन शान्तिनाथ एवं देवगढ़ की पहाड़ी पर स्थित शान्तिनाथ मंदिर से समानता रखता है । मंदिर के शिखर में एक सुन्दर कोठरी है । मंदिर के द्वार से लगा हुआ सामने 13 वर्ग फी. का एक चबूतरा है जिस पर चार पाषाण स्तम्भों पर आधारित मण्डप बना हुआ है । इसकी मुख्य मूर्ति [शान्तिनाथ की] संवत् 1200 की है । इससे यह चन्देलकालीन मालूम पड़ता है ।[2]

चम्पोमढ़ - यह 11वीं शताब्दी का पुराना कलायुक्त मंदिर है । इसके चारों ओर मंदिरों के अवशेष मिले हैं जिससे प्रतीत होता है कि इसके चारों कोनों पर चार मढ़ रहे होंगे । अब केवल भग्नावशेषों के टीले बने हुए हैं , किन्तु मढ़ के दक्षिण की ओर एक अर्धभग्न मढ़ शेष है । इस प्रकार यह पंचायतन शैली का मंदिर कहा जा सकता है । मंदिर के प्रवेश द्वार पर नाना तरह के देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों एवं जिन मूर्तियों तथा तत्कालीन शैली के कलात्मक कटावों से युक्त एक विशाल भव्याकर्षण पत्थर का तोरण-द्वार बना हुआ है । इस अंकरण शैली के आधार पर इसे चन्देलकालीन कहा जा सकता है ।[3]

मोदी-मढ़ - इसके भी चारों कोनों पर चार मढ़ होने के प्रमाण हैं । इसलिए इसको भी पंचायतन शैली का मंदिर कहा जा सकता है ।[4]

बानपुर में पुरातत्व की दृष्टि से 10वीं शताब्दी से पूर्व की कला दर्शनीय है । यहाँ के मंदिर नागर शैली के हैं ।[5]

1- बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: कला तीर्थ मदनपुर ले0 विमलकुमार जैन सोरया ,पृ0 79-80 .
2- वही वही वही पृ0 80
3- वही वही वही पृ0 80 .
4- वही वही वही पृ0 81 .
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बैया, पृ0 19 .

मंदिर सं0 4 §शान्तिनाथ मंदिर§ - यह शिखर रहित मंदिर है । शान्तिनाथ की प्रतिमा के चरणपद पर स्थित शिलालेख से इसका निर्माण संवत् 1001 स्पष्ट होता है । इस जिनालय के बाह्य पार्श्व भित्ति पर एक पद्मासन बड़ी और सुंदर मूर्ति उत्कीर्ण है ।[1]

मंदिर सं0 5 §सहस्त्रकूट चैत्यालय§ - यह 40 फी. ऊँचा और 22फी. वृत्ताकार है तथा खजुराहो शिल्प के समान है । अपने कलात्मक पच्चीकारी ,प्राचीन स्थापत्य चहुँदिशि प्रवेश द्वार और विशिष्ट मूर्ति गढ़ना के कारण सम्भवतः यह भारतीय स्थापत्य कला में अपनी तरह का अद्वितीय चैत्यालय है । इसके निर्माता , अहारजी स्थित शिलालेख के अनुसार अहारजी में संवत् 1237 में शान्तिनाथ की मूर्ति स्थापित कराने वाले तथा निर्माता के प्रपितामह श्री देवपाल थे । तत्कालीन पीढ़ियों की दीर्घायु को ध्यान में रखते हुए तीन पीढ़ी पूर्व निर्मित यह सहस्त्रकूट चैत्यालय मेरे अनुमान से 10वीं शताब्दी पूर्व का स्थापित होना चाहिये । इसकी बाह्य भित्ति पर नीचे से ऊपर अनेक आकर्षक कलाकृतियाँ उत्कीर्ण हैं । इनमें सरस्वती, गंगा-यमुना, अम्बिका आदि उल्लेखनीय हैं । अन्तःभाग में 8फी. x 4फी. के एक शिलाखण्ड पर चारों ओर सहस्त्र अष्ट मूर्तियाँ खड़ी हैं ।[2]

पावागिरि के बावड़ी की खुदायी में प्राप्त अनेक जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में एक प्रतिमा पर अंकित संवत् 299 के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि इस क्षेत्र में भी प्राचीन संस्कृति व्याप्त थी ।[3]

नायक की मढ़ी - यह वस्तुतः एक विशाल जैन मंदिर था जिसे चन्देलकालीन माना जाता है । [4]

जैन मंदिर के भोयरे - यह बुन्देलखण्ड के 7 भोयरे में से एक देवगढ़ और सेरोनजी के भोयरों के समकालीन है । कहा जाता है कि इन सात भोयरों का निर्माण देवपत और खेवपत नामक भाइयों के द्वारा हुआ था । गर्भगृह की मूर्तियों के पादपीठ पर अंकित अपभ्रंश भाषा के शिलालेखों से मूर्तियों के निर्माण

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर ,ले0 नीरज मड़ैया,पृ020.
2- वही वही वही पृ0 21 .
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें , ले0 कमलेश कुमार , पृ0 52.
4- वही वही वही पृ0 52 .

तिथि की पुष्टि होती है न कि मंदिर निर्माण की ।[1]

खिरिमाल §क्षेत्रपाल§ की मढ़िया - इसके एक कक्ष में आदिनाथ की पद्मासन मूर्ति है, इसमें पादपीठ पर सर्पों का अंकन है एवं दोनों ओर दो-दो आराधिकायें अंजलि मुद्रा में हैं ऊपर दो विद्याधर हैं, जिनमें एक के सिर पर उष्णीय §पगड़ी§ है और दूसरे का मुख वाला भाग नष्ट हो गया है । इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि यह मंदिर चंदेलकालीन होगा ।[2]

इनके अतिरिक्त यहाँ के शेष मंदिर भी चन्देलकालीन शैली के ही हैं ।

सिरौन में 50 फी. ऊँचा एक भव्य जैन मंदिर है । नष्टप्राय होने के कारण उसके स्थापत्य शैली का पता नहीं चलता लेकिन गाँव के मकानों व निकटवर्ती जंगल में अनेक खण्डित मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं जिनमें तीर्थंकर प्रतिमायें विपुल मात्रा में हैं । ये 11वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक की हैं। इसके आधार पर यहाँ के जैन स्थापत्य को चंदेलकालीन कहा जा सकता है ।[3]

<u>सेरोनजी के मंदिर</u> - यहाँ जो शिलालेख मिले हैं उनमें प्राचीनतम संवत् 954 का है, जो सीयडोणी शिलालेख के नाम से जाना जाता है । यहाँ का नवीनतम लेख संवत् 1451 का है । इस प्रकार इतना तो निश्चित है कि नवीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक यहाँ निर्माण कार्य होता रहा था ।[4]

शान्तिनाथ का मंदिर - यह भोंयरेनुमा मंदिर है । देवपत खेवपत द्वारा निर्मित माना जाता है । एक शिलाफलक में 18फी. ऊँची शान्तिनाथ की मूर्ति है । द्वार के तोरण पर द्वादश राशियाँ अंकित हैं । चौखट पर कायोत्सर्गासन और पद्मासन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । दरवाजे के दोनों ओर दो शिलाओं पर सहस्त्रकूट चैत्यालय का दृश्य अंकित है । मूल नायक शान्तिनाथ की प्रतिमा के हाथ और पैर खण्डित थे जिन्हें बाद में सुधारा गया लगता है । इस भोंयरेनुमा

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक: पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 52-53.
2- वही वही वही पृ0 53.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 195.
4- वही वही वही पृ0 197.

मंदिर को देवगढ़ और पाणगिरि के ओपरेनुमा मंदिर का समकालीन कहा जा सकता है क्योंकि ये देवपत और क्षेवपत बन्धुओं द्वारा ही बनवाये गये माने जाते हैं ।[1]

यहाँ के शेष मंदिर भग्नावशेष रूप में हैं । इनके अवशेषों को देखकर इन्हें चंदेलकालीन माना जा सकता है ।

गिरार का जैन मंदिर स्थापत्य कला की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है ।

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर में मंदिर सं0 4 में संवत् 1223 की , मंदिर सं0 3 में संवत् 1243 की और मंदिर सं0 7 में संवत् 1706 की निर्मित जैन तीर्थंकर प्रतिमायें हैं । इनमें प्रथम 2 चंदेलकालीन और तीसरी बुन्देलकालीन मूर्तियाँ हैं । लेकिन इन तिथियों से मूर्ति निर्माण तिथि का पता चलता है मंदिर निर्माण का नहीं ।[2]

<u>जनपद ललितपुर के जैन अभिलेख -</u>

जनपद ललितपुर में अनेक जैन अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनके स्थान और संक्षिप्त विवरण निम्न हैं :-

देवगढ़ के जैन अभिलेखों की सूची और उनका संक्षिप्त विवरण निम्न क्रम से दिया गया है[3]: क- अभिलेखोत्कीर्ण वस्तु । ख- माप । ग- भाषा और लिपि । [घ] उत्कीर्ण तिथि और राजा का नाम । ड. -अभिलेख का विषय ।

1- [क] श्री एस0सी0 कोष को देवगढ़ दुर्ग में ही प्राप्त किन्तु सम्प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय , दिल्ली में प्रदर्शित शिलाफलक।[ख] छह फीट दो इंच [illegible] × दो फीट नौ इंच × तीन इंच । [ग] साहित्यिक संस्कृत , देवनागरी । [घ] गुरुवार, वैशाख शुक्ल पूर्णमासी , विक्रमाब्द 1481 तथा शालिवाहन [शक] संवत् 1346 । राजा - गोरी वंश का शाह आलमशाह , यह मालवा का

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी , ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.
2- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 200.
3- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चंद्र जैन परिशिष्ट-1, पृ0 153-160.
[ब] एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट , ए0एस0आई0 1917-18: दयाराम साहनी: अपेन्डिक्स , ए .

शासक था । सुल्तान दिलावर गोरी के द्वारा संस्थापित मालवा के गोरी वंश द्वितीय सुल्तान हुशंग गोरी उर्फ अलफ खाँ था । इसने माण्डु नगर बसवा कर अपनी राजधानी धार से माण्डु स्थानान्तरित की थी । इसका शासन काल 1405 से 1432 ई0 तक माना जाता है । इसी सरदार अलफ खाँ को इस अभिलेख में शाह आलंभक के नाम से अंकित किया गया है तथा इसी की नवीन राजधानी का नाम अभिलेख में मण्डपपुर दिया गया है । (ङ) उच्च कोटि की काव्यात्मक संस्कृति में उत्कीर्ण इस अभिलेख में विस्तृत रूप से होली नामक दाता की प्रशस्ति अंकित हुयी है । उसने आ. शुभचन्द्र की आज्ञा से देवगढ़ में एक विशाल जिनालय का निर्माण कराया था तथा कुछ मूर्तियों की प्रतिष्ठा भी करायी थी ।

2- (क) सम्प्रति जैन धर्मशाला स्थित दिगम्बर जैन चैत्यालय में विद्यमान उपाध्याय मूर्ति। (ख) 11इंच × 2,1/2इंच । पांच पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) रविवारज्येष्ठ बदी दशमी , विक्रमाब्द 1333 ।(ङ) शान्तसिरि(शान्तश्री) एवं उदय-सिरि (उदयश्री) नामक छात्राओं तथा देव नामक छात्र द्वारा श्रद्धा-पूर्वक इस मूर्ति के समर्पण का वर्णन ।

3- (क) एक पत्थर की बावली के निकट रखा हुआ , किसी स्तम्भ का खण्डित अंश । (ख) 13 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी ।(घ) माघ शुक्ल चतुर्दशी , संवत् 1016 । (ङ) श्रीमूलसंघान्तर्गत सरस्वतीगच्छ के आचार्य रत्नकीर्ति के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति और उनके शिष्य त्रिभुवनकीर्ति की प्रशस्ति ।

4- (क) जैन मंदिर सं0 1 के पीछे (पश्चिम में) पांच फीट 3 इंच ऊँचा सादा स्तम्भ । (ख) 10 इंच × 10 इंच । 9 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत(अशुद्ध) ,देवनागरी । (घ) बुधवार, माघ सुदी दशमी , संवत् 1493 ।(ङ) महीचन्द्र द्वारा करायी गयी मूर्ति स्थापना का वर्णन ।

5- (क) जैन मंदिर सं0 1 की दीवार का शिलाफलक ।(ख) 5 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ङ) वीरनन्दी नामक जैन मुनि की वंशावली अंकित है ।

6- (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ - एक ओर । (ख) दो-दो

पंक्तियों के दो अभिलेख । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} ज्येष्ठ सुदी एकम ,संवत् 1113 । {ङ.} महीन्द्र सिंह एवं शाह सिंह नामक दो दातारों के नाम आदि दिये गये हैं तथा इन दोनों को मूर्ति के पादपीठ के मध्य में विनयावनत मुद्रा में उत्कीर्ण भी किया गया है ।

7- {क} जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ -दूसरी ओर । {ख} एक-एक पंक्ति के दो अभिलेख । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} ज्येष्ठ सुदी एकम , संवत् 1113 । {ङ.} साधिनी एवं सलाश्री नामक दो महिला दातारों के नाम अंकित हैं ।

8- {क} जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ -तीसरी ओर । {ख} तीन-तीन पंक्तियों के दो अभिलेख । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ}ज्येष्ठ सुदी एकम , संवत् 1113 । {ङ.} पं. अजीत सिंह तथा पं. ललित सिंह नामक दो दातारों के नाम उत्कीर्ण हैं ।

9- {क} जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ - चौथी ओर ।{ख} दो-दो पंक्तियाँ के दो अभिलेख । {ग} संस्कृत , देवनागरी ।{घ} ज्येष्ठ सुदी एकम संवत् 1113 । {ङ.} श्रीसिंह और बलदेव नामक दो दातारों के नाम अंकित हैं ।

10- {क} जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त - चौथी ओर । {ख}दस पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} ज्येष्ठ सुदी एकम संवत् 1113। {ङ.} स्तम्भ निर्माण का वर्णन । इस पर कल्याण सिंह ने अभिलेख उत्कीर्ण कराया ।

11- {क} जैन मंदिर सं0 1 कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} दो पंक्तियाँ। {ग} संस्कृत , देवनागरी । {घ} संवत् 1095 । {ङ.} आर्यिका इन्दुआ द्वारा मूर्ति प्रदान करने का विवरण ।

12- {क} जैन मंदिर सं0 1 की दीवार का शिलाफलक । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} माधविनी ठकुरानी जालदेवी इन्द्रमयी के नाम का उल्लेख है ।

13 – (क) जैन मंदिर सं0 1 के उत्खनन कार्य में प्राप्त तीर्थंकर मूर्ति । (ख) दो पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ड.) किसी महिला द्वारा प्रणाम ।

14–(क) जैन मंदिर सं0 2 में विद्यमान बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्ति ।(ख) एक पंक्ति ।(ग) संस्कृत, देवनागरी ।(घ) अज्ञात । (ड.) यह गोम्मट की मूर्ति है , ऐसा उल्लेख है ।

15–(क) जैन मंदिर सं0 2 में विद्यमान 4फी. 5इंच की पद्मासन मूर्ति है । (ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत , देवनागरी । (घ) संवत् 1052 । (ड.) दाता का नाम उत्कीर्ण है ।

16– (क) जैन मंदिर सं0 2 में विद्यमान 4फी. 8इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति ।(ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) संवत् 1023 । (ड.) अस्पष्ट ।

17– (क) जैन मंदिर सं0 2 के निकट प्राप्त आदिनाथ मूर्ति का पादपीठ ।(ख) एक पंक्ति ।(ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ड.) श्री लोक नन्दिन के शिष्य पं0 गुणनन्दिन द्वारा आदिनाथ की इस मूर्ति की स्थापना कराये जाने का विवरण दिया गया है ।

18–(क) जैन मंदिर सं02 के ऊपर प्राप्त एक भग्न स्तम्भ । (ख) दो पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ड.) जिनेन्द्र भगवान की चरण पादुका निर्माण कराने का विवरण ।

19–(क) जैन मंदिरसं0 2 के निकट प्राप्त उपरोक्त स्तम्भ – दूसरी ओर ।(ख) दो पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी ।(घ) अज्ञात । (ड.) कीर्त्याचार्य के नाम का उल्लेख है।

20– (क) जैन मंदिर सं0 3 में स्थित शिरहीन कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति(तीन फीट ऊँची)। (ख) दो पंक्तियाँ । (ग) अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात।(ड.) पाहल के पौत्र एवं पालदेव के पुत्र केशव ने यह मूर्ति स्थापित करायी ।

21– (क) जैन मंदिर सं0 3 में स्थित पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति (4फी. 8.1/2इंचऊंची) । (ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात ।(ड.) केवल (प्र)तिमा शब्द अंकित है ।

22- {क} जैन मंदिर सं0 3 में अंकित कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति {2फी. 6इंच ऊंची} । {ख} 2 पंक्तियाँ । {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} संवत् 1209 । {ङ} पं0 शुभंकरदेव, पं0 लालदेव, आर्यिका धर्मश्री एवं बाहजी के नाम उत्कीर्ण हैं ।

23- {क} जैन मंदिर सं0 3 । {ख} तीन पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ} शुभदेवनाथ मुनि का वर्णन है ।

24- {क} जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का स्तम्भ । {ख} दस पंक्तियाँ । {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} संवत् 1224 । {ङ} भट्टारक साधु की वंशावली दी गयी है ।

25- {क} जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का दायाँ स्तम्भ । {ख} दस पंक्तियाँ। {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} संवत् 1207 । {ङ} आचार्य जयकीर्ति आर्यिका नवाली के नाम उत्कीर्ण हैं ।

26- {क} जैन मंदिर सं0 4 की दक्षिणी बहिर्भित्ति में जड़ा, अभिलिखित प्रस्तर फलक । {ख} दस पंक्तियाँ । {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} शनिवार, अगहन सुदी चतुर्दशी संवत् 1209 । {ङ} नेमिचन्द्र तथा उनके पूर्वजों का विवरण अंकित है ।

27- {क} जैन मंदिर सं0 4 के ऊपर गुमटी में एक स्तम्भ {जिस पर चारों ओर एक-एक तीर्थंकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं} के चारों ओर । {ख} दो-दो पंक्तियाँ । {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ} सर्वतोभद्र प्रतिमा । दातारों के नाम पढ़े नहीं जा सके ।

28- {क} जैन मंदिर सं0 4 में स्थित 4फी. 1.1/2 इंच ऊंचा प्रस्तरफलक जिस पर कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्तियाँ अंकित हैं {ख} एक पंक्ति । {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ} अक्षर टूट गए हैं । अनुमानतः दातारों के नाम होने चाहिए।

29- {क} जैन मंदिर सं0 4 के गर्भगृह में पश्चिमी भित्ति में जड़ी हुयी तीर्थंकर की माता की मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} संवत 10 {ङ} वर्ण अस्पष्ट हो गये हैं अनुमानतः दाता का नाम होना चाहिये ।

30- [क] जैन मंदिर सं0 4 के गर्भगृह में स्थित 3फी. 8.1/2इंच ऊँची पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति । [ख] तीन पंक्तियाँ । [ग] संस्कृत, देवनागरी ।[घ] अज्ञात। [ड.] आर्यिका इन्दुआ का नाम उत्कीर्ण है ।

31- [क] जैन मंदिर सं0 4 में 2फी. 11 इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । [ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत ,देवनागरी । [घ] अज्ञात । [ड.] ~~[illegible]~~ द्वारा विरय [इन्द्र] उत्कीर्ण हैं ।

32-[क] जैन मंदिर सं0 4 में 5फी. ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । [ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत, देवनागरी ।[घ] अज्ञात ।[ड.] आर्यिका गणी का नाम उत्कीर्ण है ।

33- [क] जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का स्तम्भ । [ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत, देवनागरी ।[घ] अज्ञात । [ड.] माघनन्दी उत्कीर्ण है ।

34- [क] जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का स्तम्भ । [ख] सोलह पंक्तियाँ । [ग] संस्कृत,देवनागरी । [घ]सं0 1507।[ड] अस्पष्ट हो गया है ।

35- [क] जैन मंदिर सं0 5 के पश्चिमी द्वार की देहरी । [ख] एक पंक्ति [ग] संस्कृत,देवनागरी ।[घ] संवत 1500 ।[ड.] अस्पष्ट हो गया है ।

36- [क] जैन मंदिर सं0 5 के प्रवेश द्वार के दांये पश्चिमी भित्ति पर ।[ख]तीन पंक्तियाँ ।[ग] संस्कृत देवनागरी । [घ] मंगलवार ,माघ सुदी अष्टमी ,संवत 1120 । [ड.] सम्भवतः मंदिर निर्माण की तिथि उत्कीर्ण है ।

37- जैन मंदिर सं0 5 के गर्भगृह में पूर्वी द्वार के ऊपर जड़ा हुआ प्रस्तरफलक । [ख] चौदह पंक्तियाँ।] संस्कृत, देवनागरी । [घ] सोमवार ,भाद्रपद सुदी सप्तमी, वि. संवत 1503,सुल्तान महमूद। [ड.] इस मंदिर के जीर्णोद्धार का विवरण दिया गया है ।

38- [क] जैन मंदिर सं0 6 में स्तम्भ ।[ख] क्रमशः [क-ख] दो और तीन पंक्तियों के दो अभिलेख । [ग] संस्कृत,देवनागरी × [घ] अज्ञात ।[ड.] अस्पष्ट ।

39- [क] जैन मंदिर सं0 6 में तीर्थंकर मूर्ति । [ख] दो पंक्तियाँ ।[ग] संस्कृत, देवनागरी । [घ] अज्ञात ।[ड.] अस्पष्ट यह मूर्ति चन्द्रकीर्ति द्वारा अर्पित की

{यी थी , इस तथ्य का विवरण दिया गया है ।

{ 40- {क} जैन मंदिर सं0 6 में स्तम्भ । {ख} 21 पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} मार्ग शीर्ष सुदी पंचमी संवत् 1382 ।{ङ.} अस्पष्ट हो गया है ।

41- {क} जैन मंदिर सं0 7 में चरण पादुका । {ख} 8 पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} फाल्गुन सुदी अष्टमी , वि0 संवत् 1693 तथा पौष सुदी द्वितीया वि0 संवत् 1695, महाराजाधिराज उदय सिंह ।{ङ.} चरण पादुकाओं की स्थापना का विवरण दिया गया है ।

42-44 - {क} जैन मंदिर सं0 10 में मध्यवर्ती मूर्तियुक्त तीन स्तम्भ ।{ख} .....
{ग} संस्कृत ,देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} आदिनाथ,शान्तिनाथ, महावीर आदि जैन तीर्थंकरों का स्तवन है ।

45- {क} जैन मंदिर सं0 11 की मुख्य मूर्ति {पहली मंजिल के गर्भगृह में स्थापित। {ख} तीन पंक्तियाँ। {ग} संस्कृत, देवनागरी ।{घ} संवत् 1105 ।{ङ.} धर्मसिंह,ललितसिंह, अजीतसिंह आदि के नाम उत्कीर्ण हैं । अनुमानतः ये मूर्ति समर्पक होंगे ।

46- {क} जैन मंदिर सं0 11 में शान्तिनाथ की मूर्ति । {ख} एक पंक्ति ।{ग} संस्कृत, देवनागरी ।{घ} अज्ञात ।{ङ.} इस मूर्ति की स्थापना कुमरसिंह द्वारा की गयी।

47-48- {क} जैन मंदिर सं0 12 के गर्भगृह में उत्तरी एवं दक्षिणी भित्ति में देव-कुलिकायें । {ख} एक-एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी ।{घ} संवत्1210 ।
{ङ.} महा सामंत श्री उदयपाल देव के द्वारा निर्मापित और भेंट की गयी एक मूर्ति की यहाँ स्थापना का विवरण ।

49- जैन मंदिर सं0 12 में 1फी. 4इंच ऊँची पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति ।{ख} 2पंक्तियाँ। { ग} संस्कृत, देवनागरी ।{घ} संवत् 1105 ।{ङ.} अस्पष्ट ।

50- {क} जैन मंदिर सं0 12 में 1फी. 3,1/2 इंच ऊँची पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत ,देवनागरी ।{घ} संवत् 1139 ।{ङ.}यह मूर्ति माधव चन्द्र द्वारा स्थापित की गयी ।

51- {क} जैन मंदिर सं0 12 में अजितनाथ की 4फी. 4,1/2इंच ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति ।{ख} दो पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} सोमवार,आषाढ़

सुदी पाँच, संवत् 1176 । (ङ.) सोमती ने इस मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी ।

52-(क) जैन मंदिर सं0 12 में आदिनाथ की 2फी. 6इंच ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति। (ख) चार पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) संवत् 1201 । (ङ.) आर्यिका मदन द्वारा इस मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी ।

53-(क) जैन मंदिर सं0 12 के महामण्डप में पृथक रखा हुआ स्तम्भ । (ख) 6 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत,देवनागरी । (घ) संवत् 1384 । (ङ.) अस्पष्ट ।

54- (क) जैन मंदिर सं0 12 के महामण्डप में पश्चिमी बहिर्भित्ति (जो अब हटा दी गयी है) में से प्राप्त अभिलेख । (ख) चार पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत , देवनागरी । (घ) संवत् 1394 । (ङ.) अस्पष्ट ।

55- (क) उक्त बहिर्भित्ति से प्राप्त किन्तु सम्प्रति जैन धर्मशाला में सुरक्षित । (ख) 13 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत,देवनागरी । (घ) गुरुवार ,वैशाख बदी पंचमी संवत् 1493 । (ङ.) शान्तिनाथ मंदिर का मण्डप संघपति के सहयोग से पंडित युवराज द्वारा बनवाये जाने का विवरण ।

56-(क) जैन मंदिर सं0 12 के महामण्डप में 6फी. 2,1/2इंच ऊंचा स्तम्भ ।(ख) 9 पंक्तियाँ ।(ग) संस्कृत,देवनागरी ।(घ) मार्गशीर्ष बदी 11,संवत् 1591 । (ङ.) अस्पष्ट ।

57-(क) 18 भाषा और लिपियों के लिए प्रसिद्ध ज्ञान शिला नामक अभिलेख । (ख) 9 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत,देवनागरी । (घ) अज्ञात ।(ङ.) इसकी सभी लिपियाँ अब तक नहीं पढ़ी जा सकी हैं ।

58-(क) जैन मंदिर सं0 12 के महामण्डप का स्तम्भ ।(ख) तीन पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत,देवनागरी ।(घ) अज्ञात । (ङ.) चक्रेश्वरी की मूर्ति तथा उसके गुरु स्थापक श्री कमल देवाचार्य एवं प्रीमिय का वर्णन ।

59-(क) जैन मंदिर सं0 12 में चन्द्रप्रभु की कायोत्सर्ग मूर्ति ।(ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत,देवनागरी ।(घ) अज्ञात । (ङ.) मूर्ति प्रतिष्ठापक सोमती की बहन धनियाँ ।

60-(क) जैन मंदिर सं0 12 में सम्भवनाथ की 4फी. 2इंच ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति ।

{ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} मूर्ति प्रतिष्ठापक राजपाल ।

61-{क} जैन मंदिर सं0 12 में अजितनाथ की 4फी. ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति ।
{ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} मूर्ति प्रतिष्ठापक गणपति जज ।

62-81 - {क} जैन मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणापथ की बहिर्भित्तियों में जड़ी हुयी यक्षी मूर्तियाँ । {ख} एक-एक पंक्ति ।{ग} संस्कृत,देवनागरी।{घ} अज्ञात ।{ङ.} यक्षी मूर्तियों के ऊपर उनके नाम उत्कीर्ण हैं ।

82-{क} जैन मंदिर सं0 12 में ऋषभनाथ की 4फी. 6 इंच ऊँची पद्मासन मूर्ति ।
{ख} दो पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} संवत् 1210 ।{ङ.} अस्पष्ट

83- {क} जैन मंदिर सं0 12 में चतुर्भुजी देवी । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} अस्पष्ट ।

84- {क} जैन मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणापथ में 7फी. 3 इंच ऊँची पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति । {ख} दो पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ.} अस्पष्ट ।

85- {क} उक्त मंदिर के प्रदक्षिणापथ में स्थित 10फी. ऊँची तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मूर्ति ।{ख} चार पंक्तियाँ ।{ग} संस्कृत,देवनागरी।{घ}अज्ञात ।
{ङ.} माधवदेवचंद्र का नाम अंकित है ।

86-{क} उक्त मंदिर के प्रदक्षिणापथ में अंकित पार्श्वनाथ की 10फी. 2इंच कायोत्सर्ग मूर्ति । {ख} 6 पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत ,देवनागरी।{घ} अज्ञात ।
{ङ.} प्रतिष्ठापक युगल भ्राता गंगक और शिवदेव ।

87-{क} उक्त मंदिर के महामण्डप में 8फी. ऊँची पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति।
{ख} क्रमशः तीन एवं दो पंक्तियों के दो अभिलेख ।{ग} संस्कृत,देवनागरी।
{घ} अज्ञात । {ङ.} अस्पष्ट ।

88-{क} जैन मंदिर सं0 12 के अर्धमण्डप का दक्षिणी पूर्वी स्तम्भ ।{ख} दस पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत,देवनागरी ।{घ} गुरुवार ,आश्वयुज,शुक्ल चतुर्दशी वि0 संवत् 919 भोजदेव {कन्नौज के गुर्जरप्रतिहार वंशी शासक}{ङ.} इस स्तंभ की

स्थापना श्री कमलदेव आचार्य के शिष्य श्रीदेव ने करायी थी । उस समय यह स्थान गुर्जरप्रतिहार वंशी शासक भोजदेव की राज्यसीमा में था और यहाँ उसके महासामन्त विष्णुराम पंचिन्द का शासन था तथा इस स्थान का नाम उस समय लुअच्छगिरि था ।

89-[क] जैन मंदिर सं0 13 में तीर्थंकर मूर्ति का सिंहासन । [ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत, देवनागरी । [घ] अज्ञात । [ङ] इस मूर्ति के समर्पण का विवरण।

90-[क] जैन मंदिर सं0 14 का दांया प्रवेश द्वार [सिरदल] ।[ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत, देवनागरी ।[घ] अज्ञात ।[ङ] श्री नागसेन आचार्य द्वारा इस द्वार के दान कराने का विवरण ।

91-[क] जैन मंदिर सं0 14 के द्वार के बाहर । [ख] एक पंक्ति । [ग] संस्कृत, देवनागरी ।[घ] अज्ञात ।[ङ] दाता कल्हड़ ।

92-[क] जैन मंदिर सं0 15 में 4फी. 1इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति ।[ख] दो पंक्तियाँ । [ग] संस्कृत ,देवनागरी । [घ] अज्ञात । [ङ] मूर्ति समर्पण का विवरण ।

93-[क] जैन मंदिर सं0 16 के अर्ध-मण्डप का दांया स्तम्भ।[ख] चार अभिलेख । [ग] अशुद्ध संस्कृत ,देवनागरी ।[घ] अज्ञात । [ङ] चार विभिन्न श्रावकों द्वारा इस स्तम्भ के निमित्त किये गये दान का विवरण ।

94- [क] उक्त मंदिर के अर्धमण्डप का बांया स्तम्भ ।[ख] पांच अभिलेख ।[ग] अशुद्ध संस्कृत,देवनागरी । [घ] संवत् 1208 ।[ङ] विभिन्न भक्तों के द्वारा इस स्तम्भ के निमित्त किये गये दान का विवरण ।

95-[क] उक्त मंदिर के गर्भगृह का स्तम्भ । [ख] एक पंक्ति । [ग] अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी ।[घ] संवत् 1220 । [ङ] पं0 माधवनन्दी की वन्दना का विवरण।

96- [क] उक्त मंदिर के गर्भगृह के स्तम्भ पर उत्कीर्ण पद्मासन मूर्ति । [ख] दो पंक्तियाँ । [ग] हिन्दी, देवनागरी । [घ] बुधवार माघ सुदी 8 संवत् 1495 । [ङ] अस्पष्ट ।

97-[क] उक्त मंदिर के गर्भगृह का स्तम्भ । [ख] 8 पंक्तियाँ । [ग] अशुद्ध संस्कृत,

देवनागरी । (घ) बुधवार, माघ सुदी अष्टमी, संवत् 1495 । (ङ.) अस्पष्ट।

(98) (क) जैन मंदिर सं० 17 में स्थित 4 फी. ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति। (ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ङ.) प्रदाता सहिया ।

99- (क) जैन मंदिर सं० 18 के समक्ष चबूतरे पर अवस्थित मान स्तम्भ । (ख) तीन पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत देवनागरी । (घ) संवत् 1121, राज्यपाल । (ङ.) श्री यशस्कीर्त्याचार्य ने राज्यपालमठ (मंदिर सं०18) के समक्ष दो मानस्तम्भ स्थापित कराये । यह राज्यपाल मठ मंदिर सं०18 का प्राचीन नाम होना चाहिये ।

100- (क) जैन मंदिर सं० 19 में विद्यमान चक्रेश्वरी यक्षी की मूर्ति । (ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ङ.) इस मूर्ति का दान राज्यपाल की पत्नी ने किया ।

101- (क) जैन मंदिर सं० 16 के समीप प्राप्त अभिलिखित स्तम्भ । (ख) 12पंक्तियाँ अपूर्ण । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ङ.) आचार्य माघनन्दी और उनकी प्रभावोत्पादक व्याख्यान शैली का वर्णन किया गया ।

102- (क) जैन मंदिर सं० 19 में स्थित देवी मूर्ति । (ख) 6 पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) 11-(यह अभिलेख 12 वीं शती का होना चाहिये, इसमें ग्यारह के परिवर्ती दो वर्ण टूट गए हैं) । (ङ.) इस देवी मूर्ति का निर्माण त्रिभुवनकीर्ति की प्रेरणा से हुआ ।

103- (क) जैन मंदिर सं०19 में स्थित सरस्वती की मूर्ति । (ख) 8 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात । (ङ.) यह मूर्ति भी त्रिभुवनकीर्ति की प्रेरणा से निर्मित हुयी ।

104- (क) जैन मंदिर सं० 19 में स्थित पद्मावती यक्षी की मूर्ति । (ख) 6पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) संवत् 1126 । (ङ.) पद्मावती यक्षी की यह मूर्ति अमोहिनी के द्रव्य से प्रतिष्ठित हुयी । इस अभिलेख में उत्कीर्णकर्ता ने अपना नाम भी अंकित किया है - पं० गोपाल ।

105- (क) जैन मंदिर सं० 20 का प्रवेश द्वार । (ख) 3 पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत,

देवनागरी । {घ अज्ञात । {ङ. } अत्यन्त टूटा फूटा ।

106- {क} जैन मंदिर सं0 20 में स्थित शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति । {ख} ।पंक्ति {ग} अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ. } प्रदाता-त्रिभुवनकीर्ति ।

107- {क} जैन मंदिर सं0 20 में 4फी. ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} संवत् ।135 । {ङ. } प्रदात्री आर्यिका लवणश्री ।

108-{क} जैन मंदिर सं0 20 में 5फी. 9इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} दो पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ. } अस्पष्ट ।

109-{क} उक्त मंदिर में एक तीर्थंकर मूर्ति का सिंहासन । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ. } इस तीर्थंकर मूर्ति की प्रतिष्ठा लोकनन्दी के शिष्य द्वारा हुयी ।

110-{क} उक्त मंदिर में 4फी. 2 इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} अज्ञात।{ङ. } प्रदाता सोनासाह ।

111- {क} उक्त मंदिर में 4फी. 6 इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} ३पंक्तियाँ {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} संवत् ।136 । {ङ. } सर जासधरा के पुत्र द्वारा इस मूर्ति के समर्पण का विवरण ।

112-{क} जैन मंदिर सं0 21 के मण्डप की भित्ति । {ख} दो पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ}अज्ञात । {ङ. } श्री गुणनन्दी आदि का आदरपूर्वक उल्लेख है ।

113- {क} उक्त मंदिर में 4फी. ।।इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ. } अस्पष्ट ।

114- {क} उक्त मंदिर में चन्द्रप्रभुस्वामी की पद्मासन मूर्ति । {ख} दो पंक्तियाँ। {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} संवत् ।136 । {ङ. } आ.लोकनन्दी के शिष्य गुणनन्दी द्वारा यह मूर्ति प्रतिष्ठित हुयी ।

115-{क} उक्त मंदिर में 5फी. 4, 1/2 इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति । {ख}दो-दो पंक्तियों के दो अभिलेख । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ङ. } आ.

लोकनन्दी के शिष्य गुणनन्दी द्वारा यह मूर्ति प्रतिष्ठित हुयी ।

116-{क} उक्त मंदिर के मण्डप की भित्ति । {ख} दोलेखक एक पंक्ति {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात ।{ड.} लोकनन्दी के शिष्य गुणनन्दी द्वारा इस भित्ति के पुनरोद्धार का संकेत ।

117- {क} जैन मंदिर सं0 21 में 4फी. 7.1/2इंच ऊँची मल्लिनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति ।{ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी ।{घ} अज्ञात ।{ड.} प्रदाता प्रभाकर ।

118- {क} जैन मंदिर सं0 21 में 4फी. 10इंच ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति ।{ख}एक पंक्ति। {ग} संस्कृत देवनागरी । {घ} अज्ञात । {ड.} प्रदाता क्षुवान ।

119- {क} उक्त मंदिर में चन्द्रप्रभु की पद्मासन मूर्ति । {ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत, देवनागरी । {घ} अज्ञात ।{ड.} प्रदाता गुणनन्दी।

120-{क} उक्त मंदिर में संभवनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति ।{ख} एक पंक्ति। {ग} संस्कृत, देवनागरी ।{घ} अज्ञात ।{ड.} प्रदात्री लाभता ।

121-{क} जैन मंदिर सं0 22 के प्रवेश द्वार का सिरदल ।{ख}एक पंक्ति । {ग} संस्कृत ,देवनागरी ।{घ} अज्ञात ।{ड.}"श्री मानवन्नानमनात"केवल इतना अभिलेख उत्कीर्ण है ।

122-{क} जैन मंदिर सं0 28 में स्थित 9फी. 2इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति। {ख} चार पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत देवनागरी । {घ} अज्ञात ।{ड.} इस मूर्ति का निर्माण चतुर्विध संघ के लिये किया गया ।

123-{क} जैन मंदिर सं028 की पश्चिमी बहिर्भित्ति ।{ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी । {घ} आषाढ़ बदी त्रियोदशी संवत् 1496 । {ड.} केवल तिथि उत्कीर्ण है ।

124-{क} जैन मंदिर सं0 30 में स्थित 4 फी. 5इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थंकर मूर्ति का सिंहासन ।{ख} एक पंक्ति । {ग} संस्कृत,देवनागरी ।{घ} अज्ञात । {ड.} सहस्त्रकीर्ति का उल्लेख है ।

125-{क} जैन मंदिरों के कोट की उत्तरी दीवार ।{ख}पांच पंक्तियाँ । {ग} संस्कृत, देवनागरी ।{घ}अज्ञात।{ड.} इसमें उल्लेख है कि कुछ पंडितों

ने सामूहिक रूप से एक दानशाला का निर्माण कराया था ।

126-§क§ जैन मंदिरों के कोट की उत्तरी दीवार ।§ख§ दो पंक्तियाँ । §ग§ संस्कृत, देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ इसमें उल्लेख है कि एक गोष्ठी द्वारा दानशाला का निर्माण कराया गया था ।

127-§क§ जैन मंदिरों के कोट की उत्तरी दीवार । §ख§ तीन पंक्तियाँ । संस्कृत, देवनागरी । §घ§ अज्ञात ।§ङ.§ एक गोष्ठी का वर्णन किया गया है ।

128-§क§ जैन मंदिरों के कोट की उत्तरी दीवार ।§ख§ दो पंक्तियाँ ।§ग§ संस्कृत,देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ श्री नेमिदेव पंडित का वर्णन किया गया है ।

129-§क§ जैन मंदिरों के कोट की उत्तरी दीवार ।§ख§ तीन पंक्तियाँ । §ग§ संस्कृत, देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ एक दानशाला का वर्णन है ।

130-§क§ जैन मंदिर सं0 12 में स्थित तीर्थंकर मूर्ति । §ख§ तीन पंक्तियाँ । §ग§ संस्कृत, देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ जैन शासन से प्रभावित किसी नागेन्द्र आदि का वर्णन है ।अधिकांश अक्षर टूट गये हैं ।

131-§क§ जैन मंदिर सं0 12 में स्थित तीर्थंकर मूर्ति ।§ख§ पाँच पंक्तियाँ ।§ग§ संस्कृत, देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ आचार्य माधवदेव और उनके शिष्यों का उल्लेख है । बीच बीच में इस अभिलेख के अधिकांश अक्षर टूट गए हैं । इसके नीचे वाली पंक्तियों में उल्लेख है कि " जिनबिम्ब कारितम् कुमर ।"

132-§क§ जैन मंदिर सं0 12 में स्थित तीर्थंकर मूर्ति । §ख§ दो पंक्तियाँ । §ग§ संस्कृत, देवनागरी ।§घ§ अज्ञात ।§ङ.§ इस अभिलेख के अक्षर सुरक्षित होने पर भी अपाठ्य हो गये हैं । केवल प्रारंभिक शब्द "सिद्धी" पढ़ने में आता है । ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कुछ वर्ण बाद में उत्कीर्ण किए गए हैं ।

133- §क§ जैन मंदिर सं0 12 में स्थित तीर्थंकर मूर्ति ।§ख§ दो पंक्तियाँ ।§ग§ संस्कृत, देवनागरी । §घ§ अज्ञात । §ङ.§ उल्लेख है कि इस मूर्ति का निर्माण कलशान के पुत्र गणादेव ने कराया ।

134-§क§ जैन मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार का दाँया पक्ष ।§ख§चार पंक्तियाँ।

(ग) संस्कृत देवनागरी । (घ) संवत् 1051 । (ङ.) संवत 1051 में इस प्रवेश द्वार के नवीनीकरण का विवरण दिया है ।

135-(क) जैन चहारदीवारी पश्चिमी भित्ति (भीतरी ओर) में प्रवेश द्वार के दांये खड़ी हुयी तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मूर्ति ।(ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत , देवनागरी ।(घ) अज्ञात । (ङ.) ब्रह्मचारी नकल का प्रणाम उत्कीर्ण है ।

136-(क) जैन चहारदीवारी पश्चिमी भित्ति (भीतरी ओर) में प्रवेश द्वार के दांये खड़ी हुयी तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मूर्ति । (ख) एक पंक्ति ।(ग) संस्कृत, देवनागरी । (घ) अज्ञात ।(ङ.) जिनमति का प्रणाम अंकित है ।

137-(क) जैन चहारदीवारी पश्चिमी भित्ति(भीतरी ओर)में प्रवेश द्वार के दांये खड़ी हुयी तीर्थंकर की कायोत्सर्ग मूर्ति ।(ख) एक पंक्ति । (ग) संस्कृत,देवनागरी ।(घ) अज्ञात ।(ङ.) तागता का प्रणाम अंकित है।

138-(क) एक पत्थर की बावड़ी के निकट प्राप्त स्तम्भ का खण्डित अंश (ख) दस पंक्तियाँ । (ग) संस्कृत, देवनागरी ।(घ) शनिवार ,फाल्गुन बदी दसवीं संवत् 1631 ।(ङ.) कुछ पंडितों का वर्णन है ।

चाँदपुर - यहाँ संवत् 1207 का एक शिलालेख[1] प्राप्त हुआ है - "ओम। सम्वत 1207 ज्येष्ठ बदी 11, श्री माद प्रतिहारराज वच्छलि गोत्रे उदयपाल पुत्र .... ।" इससे ज्ञात होता है कि चाँदपुर के मंदिरों का निर्माता वच्छ(वत्सराज) के गोत्र में उदयपाल नामक व्यक्ति था।

मदनपुर - यहाँ निम्न अभिलेख[2] प्राप्त हुए हैं :-

1- मध्य ग्राम के शिखरबन्द विशाल जैन मंदिर में 6 पद्मासन पाषाण प्रतिमायें हैं और 6 धातु प्रतिमायें हैं । सभी पर प्रशस्तियाँ अंकित हैं ,जिनसे ज्ञात होता है कि 6 पाषाण प्रतिमायें 15वीं से 17वीं शताब्दी के बीच की हैं। औ 6 धातु प्रतिमायें 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच की हैं ।

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान ले० महेन्द्र वर्मा., पृ० 68 .

2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: कलातीर्थ मदनपुर,ले० विमलकुमार जैन सोरया, पृ० 79-81.

2- पंचमढ़ के पाँचों मढ़ों में एक-एक कायोत्सर्गासन प्रतिमायें हैं । प्रत्येक पर लेख अंकित हैं जिनसे पता चलता है कि प्रारंभ की दो मूर्तियाँ संवत् 1312 की हैं, मध्य की प्रतिमा जो इनसे भी प्राचीन है उसका लेख अस्पष्ट है, शेष दो मूर्तियाँ संवत् 1618 की हैं ।

3- शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मध्य में 10फी. ऊँची भगवान शान्तिनाथ की खण्डित प्रतिमा है । इस पर अंकित लेख के अनुसार इसका प्रतिष्ठाकाल वि0 संवत् 1204 था ।

4- पच्चोमढ़ में मध्य के मंदिर के गर्भगृह के मध्य की मूर्ति के लेख के अनुसार इसकी प्रतिष्ठा फाल्गुन शुक्ल 10 वि0 संवत् 1204 को हुयी थी ।

5- मोदीमढ़ के मध्य के मंदिर के गर्भगृह में तीन प्रतिमायें हैं, मध्य में भगवान शान्तिनाथ की, दायें कुन्थनाथ की और बायें अरनाथ की । तीनों प्रतिमाओं पर मूर्ति लेख है जिनसे ज्ञात होता है कि इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा फाल्गुन शुक्ल 4 संवत् 1688 में हुयी थी ।

बानपुर - यहाँ निम्न अभिलेख[1] प्राप्त हुये हैं :-

1- मंदिर सं0 1 के अन्दर की तक्षित वेदी पर संगमरमर की भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति पर लेख अंकित है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण वि0संवत् 1182 में हुआ था ।

2- मंदिर सं0 3 के अन्दर वेदी पर संगमरमर की पद्मासन तीर्थंकर मूर्ति पर लेख अंकित है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण संवत् 1541 में हुआ था।

3- मंदिर सं0 4 [शान्तिनाथ जिनालय]में शान्तिनाथकी मूर्ति के चरणपाद पर लिखा शिलालेख [अब तक अपठनीय] से निर्माण संवत् 1001 स्पष्ट होता है ।

4- पावागिरि - यहाँ निम्न अभिलेख[2] प्राप्त हुए हैं :-

1- जैन मंदिर के भोयरे [गुफा] के द्वितीय द्वार को पार करने पर एक लंबा गर्भगृह है, जिसकी वेदी पर सामने की ओर तीन मूर्तियाँ और बाँयी ओर तीन

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, नीरज जैन नाथ मड़ैया, पृ0 19-21,

2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0कमलेश कुमार, पृ0 52-53.

मूर्तियाँ हैं । सामने की तीन मूर्तियाँ पार्श्वनाथ, आदिनाथ और सम्भवनाथ की हैं । मूर्तियों की पादपीठ पर अंकित अशुद्ध भाषा के शिलालेख में वर्णित वंशावलि के नाम के साथ साथ संवत् 1299 एवं संवत् 1345 अंकित है, जिससे इन मूर्तियों के निर्माण तिथि का ज्ञान प्राप्त होता है । बांयी ओर की तीन मूर्तियों में से दो मूर्तियों [नेमिनाथ और अजितनाथ] के पादपीठ के लेख के अनुसार इनका निर्माण काल संवत् 1345 और एक मूर्ति [मल्लिनाथ]की पद्म-पीठ लेख के अनुसार इसका निर्माण काल संवत् 1299 ज्ञात होता है ।

2- खितिपाल[क्षेत्रपाल] की मढ़िया के एक कक्ष में प्राचीन मूर्तियाँ हैं, जो बावड़ी से खुदायी में मिली हैं । इनमें से एक मूर्ति, जो आ-दिनाथ की पौने दो फीट ऊँची है, के पादपीठ पर अंकित लेख में सं० संवत् 299 तथा पवा शब्द लिखा है । इससे उसका निर्माण काल मालूम पड़ता है ।

सेरोनजी - यहाँ के अभिलेख[1] निम्न हैं :

1- स्थानीय शान्तिनाथ मंदिर के दक्षिणी बरामदे में 5फी. 2,1/2इंच x 3फी. 4 इंच का एक शिलाफलक लगा है, जो अभिलिखित है । इसमें देवनागरी लिपि में एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें 46 पंक्तियाँ हैं । लेख की प्रारंभिक एवं अंतिम पंक्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं । यह लेख पहले सोरसर सरोवर [प्राचीन नाम सीयडोणि] के किनारे लगा था । वहाँ से उठवा कर इसे इस मंदिर के बरामदे पर प्रतिष्ठापित करा दिया गया है । इसमें आठ तिथियों का उल्लेख है । ये तिथियाँ संवत् 954 से संवत् 1005 तक की हैं । इसे भोजराज के पुत्र महेन्द्रपाल ने उत्कीर्ण करवाया था, इसमें सेरोन का इतिहास सुरक्षित है । इसे अभी पूरा पढ़ा नहीं जा सका है।

2- एक शिलालेख संवत् 1451 का प्राप्त हुआ है, जिस समय बावड़ी का जीर्णोद्धार किया गया था । लेख अस्पष्ट है ।

ललितपुर - यहाँ के क्षेत्रपाल मंदिर में निम्न अभिलेख[2] प्राप्त हुए हैं :

1- मंदिर सं0 3[अभिनन्दन नाथ का मंदिर] जो हाथी द्वार के सामने है, का लेख जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति संवत् 1243 में निर्मित हुयी थी ।

2- मंदिर सं0 4 का लेख, जिससे ज्ञात होता है कि सफेद संगमरमर की मूर्ति

1-भारत के दिगंबर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-[illegible]

मूर्तियाँ हैं । सामने की तीन मूर्तियाँ पार्श्वनाथ, आदिनाथ और सम्भवनाथ की हैं । मूर्तियों की पादपीठ पर अंकित अपभ्रंश भाषा के शिलालेख में वर्णित वंशावलि के नाम के साथ साथ संवत् 1299 एवं संवत् 1345 अंकित है, जिससे इन मूर्तियों के निर्माण तिथि का ज्ञान प्राप्त होता है । बांयी ओर की तीन मूर्तियों में से दो मूर्तियों [नेमिनाथ और अजितनाथ] के पादपीठ के लेख के अनुसार इनका निर्माण काल संवत् 1345 और एक मूर्ति [अभिनन्दननाथ] की पाद-पीठ लेख के अनुसार इसका निर्माण काल संवत् 1299 ज्ञात होता है ।

2- खिरिखात [खिनपाल] की मढ़िया के एक कक्ष में प्राचीन मूर्तियाँ हैं, जो बावड़ी से खुदायी में मिली हैं । इनमें से एक मूर्ति, जो आदिनाथ की पौने दो फीट ऊंची है, के पादपीठ पर अंकित लेख में (1) संवत् 299 तथा पवा शब्द लिखा है । इससे उसका निर्माण काल मालूम पड़ता है ।

सेरोनजी - यहाँ के अभिलेख [1] निम्न हैं :

1- स्थानीय शान्तिनाथ मंदिर के दक्षिणी बरामदे में 5फी. 2,1/2इंच x 3फी. 4 इंच का एक शिलाफलक लगा है, जो अभिलिखित है । इसमें देवनागरी लिपि में एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें 46 पंक्तियाँ हैं । लेख की प्रारंभिक एवं अंतिम पंक्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं । यह लेख पहले बोरार सरोवर [प्राचीन नाम सीयडोणि] के किनारे लगा था । वहाँ से उठवा कर इसे इस मंदिर के बरामदे पर प्रतिष्ठापित करा दिया गया है । इसमें आठ तिथियों का उल्लेख है । ये तिथियाँ संवत् 954 से संवत् 1005 तक की हैं । इसे भोजराज के पुत्र महेन्द्रपाल ने उत्कीर्ण करवाया था, इसमें सेरोन का इतिहास सुरक्षित है । इसे अभी पूरा पढ़ा नहीं जा सका है।

2- एक शिलालेख संवत् 1451 का प्राप्त हुआ है, जिस समय बावड़ी का जीर्णोद्धार किया गया था । लेख अस्पष्ट है ।

ललितपुर - यहाँ के क्षेत्रपाल मंदिर में निम्न अभिलेख [2] प्राप्त हुए हैं :

1- मंदिर सं0 3 [अभिनन्दन नाथ का मंदिर] जो हाथी द्वार के सामने है, का लेख जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति संवत् 1243 में निर्मित हुयी थी ।

2- मंदिर सं0 4 का लेख, जिससे ज्ञात होता है कि सफेद संगमरमर की मूर्ति

1-भारत के दिगंबर जैन तीर्थ प्रथम भाग: [illegible]

ई0 संवत् 1223 की है ।

3- मंदिर सं0 7 में पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति पर एक लेख उत्कीर्ण है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण संवत् 1706 में हुआ था ।

अध्याय - 6

जनपद ललितपुर की जैन मूर्तियों का विवेचन -

जिन उपासना की प्राचीनता :

जैन धर्म में मूर्ति पूजा के उल्लेख प्राचीनतम काल से पाये जाते हैं । पूजा पूज्य पुरुष की की जाती है । पूज्य पुरुष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बना कर उसकी पूजा की जाती है । इसलिए इतिहासातीत काल से जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्ति यों के निर्माण व उनकी पूजा के उल्लेख से सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है । जैन धर्म में मूर्तियों के दो प्रकार बताये गए हैं - अकृत्रिम और कृत्रिम । नन्दीश्वरद्वीप , सुमेरु , कुलाचल, वैताढ्य पर्वत , शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षारगिरि ,चैत्य वृक्ष, रतिकर गिरि , रुचक गिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत , इष्वाकार गिरि , अंजन गिरि, दधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक, और भवन वासियों के पाताल लोक में पाये जाने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों में अकृत्रिम मूर्तियाँ हैं । सौधर्मेन्द्र ने युग के आदि में अयोध्या में पाँच मंदिर बनवाये और उनमें अकृत्रिम मूर्तियाँ स्थापित कीं । कृत्रिम मूर्तियाँ सर्वप्रथम भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत ने अयोध्या और कैलाश में मंदिर बनवा कर उनमें स्वर्ण और रत्नों की मूर्तियाँ स्थापित कीं ।[1]

डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल के मतानुसार जैन प्रतिमाओं का आविर्भाव जैनों के तीर्थंकरों से हुआ । तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का प्रयोजन जिज्ञासु जैनों के न केवल तीर्थंकरों के पावन-जीवन , धर्मप्रचार और कैवल्य प्राप्ति की स्मृति को ही दिखाना था, वरन तीर्थंकरों के द्वारा परिवर्तित पथ के पथिक बनने की

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: लेखन-संपादन, बलभद्र जैन ,प्राक्कथन पृ0 14-15 .

प्रेरणा से भी था ।[1] डा० शुक्ल ने अन्तगड्दसाओ के आधार पर एक अन्य स्थल पर जिन पूजा परम्परा का सूत्रपात ई०पू० 600 वर्ष माना है ।[2]

इसी का समर्थन डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने भी किया है । उनके अनुसार जैन प्रतिमाओं की उपासना बुद्ध के पूर्व प्रचलित थी तथा जिन पूजा परम्परा महावीर के निर्वाण के एक शताब्दी पश्चात् प्रारंभ हो गयी थी ।[3]

जैन परम्परायें पहले 21 तीर्थंकरों को ई०पू० लाखों वर्ष मानती हैं तथा 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ को कृष्ण का चचेरा भाई मानती हैं ।[4] यद्यपि इस प्राचीनता से आधुनिक विद्वान सहमत नहीं हैं पर पुरातात्त्विक दृष्टि से जैन मूर्ति कला का इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है । सिन्धु घाटी की खुदाई में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से जो मूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं, उनमें मस्तक हीन नग्न मूर्ति तथा सील पर अंकित कायोत्सर्ग मूर्ति, जैन धर्म से सम्बन्ध रखती हैं । अनेक पुरातत्त्व वेत्ताओं ने तथा आधुनिक इतिहासकार सर जान मार्शल ने यह स्वीकार किया है कि कायोत्सर्गासन आदि जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की है ।[5] पर सतीश चन्द्र काला तथा अन्य इतिहासकार इस मत से सहमत नहीं हैं । उनके विचार में जिन उपासना का प्रचलन प्रथम शताब्दी ई० के पूर्व नहीं हुआ था ।[6]

तथापि भारत में उपलब्ध जैन मूर्तियों में सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुर के लयणों में स्थित पार्श्वनाथ की प्रतिमायें हैं जिनका निर्माण पौराणिक आख्यानों के अनुसार कलिंग नरेश करकण्ड ने कराया था, जो पार्श्वनाथ और महावीर के अन्तराल में हुआ था । यह काल ई०पू० सातवीं शताब्दी होता है ।[7]

1- प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० दिनेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 313.
2- वही वही पृ० 313.
3- स्टडीज इन जैन आर्ट भाग 2, ले० डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, भूमिका पृ० 39-40
4- स्टडीज इन जैन आर्ट भाग 1, ले० डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, पृ० 3-4.
5- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ० 15
6- स्टडीज इन जैन आर्ट भाग 1, ले० डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, पृ० 5.
7- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ० 15.

वैसे प्रमुखतः जिन उपासना का मूर्ति रूप में प्रचलन मौर्य एवं शुंग काल में प्रारंभ हो गया था । इस काल में निर्मित यक्ष की प्रतिमाओं का सम्बन्ध डा0 शाह ने जैन प्रतिमाओं से ही माना है ।[1] मौर्य काल में अनेक स्थानों में यथा लोहानीपुर , कुमराहार ,बुलन्दी बाग (पटना के निकट) आदि स्थानों में एवं शुंग काल में उदयगिरि, खण्डगिरि, उड़ीसा व हाथी-गुम्फा आदि स्थानों में तथा कुषाण काल में वैशाली व कंकाली टीला (मथुरा) आदि स्थानों में तीर्थंकरों ,यक्षों , आयागपट्टों आदि से सम्बन्धित प्रतिमायें प्राप्त होती हैं । गुप्तकाल में जैन प्रतिमाओं का निर्माण अनेक स्थानों पर प्रचुरता से हुआ । देवगढ़ , बूढ़ी चन्देरी ,अकोटा ,रोहतक और राजगिरि आदि स्थानों में जैन धर्म से सम्बन्धित अनेकों श्रेष्ठ प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं। गुप्तोत्तर काल (600 ई0 से 1200ई0 तक) में तो जैन मूर्तियाँ , जिस श्रेष्ठता को लिये हुए निर्मित हुयी थीं वह भारतीय मूर्ति कला के क्षेत्र में एक स्वर्णिम अध्याय कहा जा सकता है ।[2]

<u>जैन-मूर्तिकला में प्रतीकवाद</u> - हिन्दू एवं बौद्ध धर्म की भाँति जैन-पूजा-परम्परा में भी प्रतीकवाद की प्रधानता रही है । इन प्रतीकों में 24 तीर्थंकरों से सम्बन्धित घटनायें प्रमुख रूप में हैं । इन प्रतीकों में ,"अष्ट मंगल" (स्वास्तिक, श्रीवत्स, नंद्या, वर्धमानक, भद्रासन , कलश, दर्पण और मत्स्य) ,"समवसरण" (ज्ञान प्राप्त करने वाला स्थान) , "चैत्य) "चैत्यवृक्ष" , "आयाग पट्ट" , "नवदेवता या नवपाद") अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु,सम्यक ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र एवं सम्यक् तप), "कल्याणकारी स्वप्न" (तीर्थंकर के गर्भ में आने पर माता त्रिशला द्वारा देखे गए स्वप्न - श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार 14 और दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार 16 स्वप्न - गर्जना करने वाला सफेद बैल ,सिंह , दोनों बाजुओं से कलशाभिषेक करते हुए हाथी, लटकती हुयी दो पुष्प मालायें ,चाँदनी सहित पूर्ण चन्द्रमा ,उदीयमान सूर्य, सरोवर

1- स्टडीज इन जैन आर्ट भाग 1, ले0 डा0 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, पृ0 23

2- चाँदपुर दुधई की चन्देरी कला और संस्कृति :शोध प्रबन्ध : महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 290-91.

में क्रीडामग्न मत्स्य युगल, कमलाच्छादित स्वर्ण कलश, पद्म सरोवर ,उन्मत्त लहरयुक्त सागर ,रत्नजटित सिंहासन ,रत्नमणि जटित देव विमान ,नागेन्द्र भवन, प्रकाशमान रत्न राशि और धूम्र रहित प्रखर अग्नि ज्वाला ।) ,अष्टम पाद (वह पर्वत जिस पर ऋषभदेव ने निर्वाण प्राप्त किया ,सिंहनिषद्या , चौमुखा तीर्थ , सम्मेद शिखर ,पंचद्वीपों को प्रदर्शित करने वाले पंचमेरु (जम्बू द्वीप के मध्य में सुदर्शन ,धातकी खण्डद्वीप के पूर्व में विजय ,धातकिखण्ड के द्वीप के पश्चिम में अचल , पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व में मन्दर और पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम में विद्युन्मालि) , स्थानपाद (जिन भिक्षु द्वारा वार्तालाप किये जाने पर अपने को आचार्य के सम्मुख रखना) एवं नन्दीश्वर द्वीप (वह आनन्द दायक स्थल जहाँ तीर्थंकरों की पूजा के लिये देवताओं का आगमन होता है) प्रमुख प्रतीक माने गये हैं ।[1] डा० भागचन्द्र जैन के अनुसार अतदाकार प्रतीकों में मुख्य और परम्परागत हैं ।[2] - धर्मचक्र , स्तूप ,त्रिरत्न, चैत्य स्तम्भ, चैत्य वृक्ष ,पूर्णघट, श्रीवत्स, सराग -सम्पुट , पुष्प-पात्र, पुष्प-पडलक, स्वस्तिक ,आयागपट्ट (आयताकार या वर्गाकार शिलापट्ट जिस पर कुछ अन्य प्रतीक उत्कीर्ण होते हैं), समवसरण , सहस्त्रकूट , सिद्धचक्र , अष्टमंगल , अष्टप्रातिहार्य , 16 स्वप्न , चरणपादुका, नवनिधि (कालनिधि, महाकालनिधि , माणवक , पिंगल, नवसर्प्य, पद्म, पाण्डुक, शंख, सर्वरत्न) , नवग्रह, शार्दूल, मकरमुख, कीर्तिमुख, कीचक, गंगा-यमुना एवं नाग-नागी आदि । यह प्रतीक भिन्न भिन्न स्थानों में ,भिन्न 2 रूपों में जैन प्रतिमाओं में पर्याप्त रूप में देखने को मिलते हैं ।

<u>जैन प्रतिमाओं की विशेषतायें -</u>

जैन प्रतिमाओं की अपनी स्वयं की निम्न विशिष्ट विशेषतायें हैं -

अ- जैन प्रतिमायें प्रतीकवाद पर आधारित रही हैं । इस प्रतीकत्व के नाना कोषरों में

1-(अ) चाँदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति: शोध प्रबंध :महेन्द्रकुमार वर्मा , पृ0 288-290 .
(ब) स्टडीज इन जैन आर्ट भाग 2 ,ले0 डा0उमाकान्त प्रेमानन्द शाह,पृ097-119.
2- देवगढ़ की जैन कला,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 104-107 .

धर्म एवं दर्शन की ज्योति का दिग्दर्शन होता है ।[1]

ब- बृहद संहिता के आधार पर जैन प्रतिमाओं में निम्न विशेषताओं का होना अनिवार्य है[2]:-

आजानुलम्बबाहु : श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वाससस्तरुणो रूपवांश्च कार्यो र्हतां देवः ।।

अर्थात तीर्थंकर विशेष की प्रतिमा विधान में आजानुबाहु, श्रीवत्स, प्रशान्तमूर्ति, नग्नावस्था एवं तरुणावस्था ये पाँच लांछन होना वस्तुतः अनिवार्य है ।

स- इन तीर्थंकर की प्रधान मूर्ति के अलावा दक्षिण एवं वाम पार्श्व में एक यक्ष एवं एक यक्षिणी का भी प्रदर्शन आवश्यक है ।

द- अशोक वृक्ष के साथ साथ अष्ट प्रतिहार्यों § अशोक वृक्ष, पुष्प वर्षा ,दुन्दुभि, आसन, दिव्य ध्वनि ,त्रिछत्र , दो चँवर और प्रभा मण्डल § में से किसी एक का प्रदर्शन होना अनिवार्य है ।

य- त्रिछत्र एवं त्रिरथ से प्रतिमायुक्त होना चाहिये ।[3]

र- देवता की रथिका बनाने के लिये पाँच प्रकार के तोरण भी होना चाहिये।[4]

ल- रथिकायें भी सात प्रकार की बतायी गयी हैं । तथा-ललित,घंटिकाकार, त्रिरथ बलितोदर, श्रीपुंज , पंचरथिक एवं आनन्दवर्धन । रथिका में ब्रह्मा, विष्णु ,ईश, चण्डिका, जिन, गौरी और गणेश अपने स्थान में सुशोभित रहते हैं । [5]

व- प्रधान मूर्ति अशोक वृक्ष के पत्रों ,देवदुन्दुभि-वादकों ,सिंहासनों ,असुरादि, गजों एवं सिंहो आदि से अलंकृत रहती है ।मध्य में धर्म-चक्र होता है तथा पार्श्वों में यक्षिणियाँ बनी रहती है।[6]

1- प्रतिमा विज्ञान ,ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 315 .
2- बृहद संहिता -58;45 , ले०वराहमिहिर ;
3- रूप मण्डन , ले० बलराम श्रीवास्तव,अध्याय 6 ,पृ० 33 .
4- वही वही वही पृ० 6/37 .
5- वही वही वही पृ० 6138-39 .
6- वही वही वही पृ० 34-35 .

व- सभी तीर्थंकरों की मुद्रा एक समान नहीं होती । ऋषभनाथ, नेमिनाथ और महावीर की आसन मुद्रा कमलासन है, शेष तीर्थंकरों की मुद्रा कायोत्सर्गासन है, क्योंकि इन्हीं मुद्राओं में तीर्थंकरों को कैवल्य प्राप्त हुआ था ।[1]

श-सभी जिन तीर्थंकरों की महिमा समान रूप में है । तीर्थंकर प्रतिमा निर्देशनों में इस तथ्य का पोषण पाया जाता है ।[2]

ष - जैन प्रतिमाओं की यह एक प्रमुख विशेषता है कि जिनों के चित्रण में तीर्थंकरों का सर्वश्रेष्ठ पद प्रकल्पित होता है । ब्रह्मादिदेव भी गौण पद के ही अधिकारी होते हैं ।[3]

स- तीर्थंकर राग-द्वेष से रहित हैं, अतः इनकी प्रतिमायें प्रायः योगी रूप में ही निर्मित होती हैं । इन तीर्थंकरों की प्रतिमायें योगिराज दक्षिणामूर्ति शिव के समान विभाज्य है ।[4]

ह- जैन मूर्ति प्रतिष्ठा में मूल नायक अर्थात प्रधान जिन, प्रधान पद का अधिकारी होता है और अन्य तीर्थंकरों का पद अपेक्षाकृत गौण रहता है ।[5]

24 जैन तीर्थंकर -

जैन तीर्थंकरों एवं उनकी यक्ष-यक्षिणियों, ध्वज चिन्हों आदि का सुनियोजित विवरण रूपमण्डन तथा अपराजित पृच्छा में है । इन शास्त्रों में रूप मण्डन का विवरण श्वेताम्बर परंपरा से और अपराजित पृच्छा का विवरण दिगम्बर परंपरा से प्रभावित प्रतीत होता है ।[6]

जैन मतानुसार 24 तीर्थंकर हैं । उनके प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ{ऋषभ-नाथ और अंतिम तथा 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी हैं । रूपमण्डन[7] एवं

1- प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315.
2- वही वही पृ0 314.
3- वही वही पृ0 314.
4- वही वही पृ0 315.
5- वही वही पृ0 314.
6- हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 श्रीमती पंकज लता श्रीवास्तव, पृ0 358.
7- रूपमण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव 6/1-3 .

अपराजित पृच्छा[1] के अनुसार 24 तीर्थंकर निम्न हैं - 1- आदिनाथ[ऋषभनाथ] 2- अजितनाथ , 3- संभवनाथ , 4- अभिनन्दन नाथ , 5- सुमतिनाथ , 6-पद्मप्रभु, 7-सुपार्श्वनाथ , 8-चन्द्रप्रभु , 9- सुविधिनाथ , 10-शीतलनाथ , 11-श्रेयांसनाथ, 12-वासुपूज्य , 13-विमलनाथ , 14- अनन्तनाथ , 15-धर्मनाथ , 16-शान्तिनाथ, 17- कुन्थनाथ , 18-अरनाथ , 19-मल्लिनाथ , 20-मुनि सुव्रत , 21-नमिनाथ, 22-नेमिनाथ , 23-पार्श्वनाथ, 24-महावीर[वर्द्धमान] .

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान श्री क्लाउस ब्रुन ने क्रम सं0 9 पर अंकित सुविधिनाथ के स्थान पर पुष्पदन्त का उल्लेख किया है , शेष 23 तीर्थंकर उपरोक्त ही हैं ।

ये सभी तीर्थंकर पूज्य एवं सुखदाता हैं पर रूप मण्डन के आधार पर आदिनाथ,नेमिनाथ , पार्श्वनाथ एवं महावीर ये चार तीर्थंकर विशेष फलदायक है ।[3]

इनमें से कुछ तीर्थंकरों के वर्ण का उल्लेख रूप मण्डन एवं अपराजित पृच्छा में देखने को मिल जाता है । रूप मण्डन के आधार पर - वासुपूज्य का रंग लाल , चन्द्रप्रभु और सुविधिनाथ का वर्ण श्वेत, नेमि और मुनि का वर्ण काला , मल्लि और पार्श्व का वर्ण नीला तथा शेष सभी तीर्थंकरों का वर्ण सुनहरा है ।[4]पर अपराजित पृच्छा के अनुसार - चन्द्रप्रभु और सुविधिनाथ का वर्ण श्वेत , पद्मप्रभु एवं धर्मनाथ का वर्ण रक्त , सुपार्श्व व पार्श्वनाथ का वर्ण हरित , नेमिनाथ का वर्ण श्याम, मल्लिनाथ का वर्ण नील तथा शेष सभी तीर्थंकरों का वर्ण कांचनप्रभा है । [5]

1- अपराजित पृच्छा , ले0 आचार्य भुवन देव , सूत्र 221, पृ0 2-4.

2- स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग 1 :दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़ , ले0 क्लाउस ब्रुन , पृ0 26 .

3- रूप मण्डन , ले0 बलराम श्रीवास्तव , 6/25-26 .

4- वही वही 6/4 .

5- अपराजित पृच्छा , ले0 आचार्य भुवनदेव , 221/5-7 .

तीर्थंकरों के ध्वज चिन्ह -

रूप मण्डन के आधार पर 24 तीर्थंकरों के ध्वज चिन्ह क्रमशः वृष, गज, अश्व, कपि, क्रौंच, अज, स्वास्तिक, शशि, मकर, श्रीवत्स, गेंडा, महिष, शूकर, श्येन, वज्र, मृग, छाग, नन्द्यावर्त, घट, कूर्म, नीलोत्पल, शंख, फणी और सिंह हैं ।[1]

अपराजित पृच्छा के अनुसार सम्पूर्ण ध्वज चिन्ह क्रमशः वृष, गज, अश्व, कपि, क्रौंच, पद्म, स्वास्तिक, चन्द्र, मकर, श्रीवत्स, गण्डक, महिष, शूकर, शतावल, वज्र, मृग, अज, नन्द्यावर्त, कलश, कूर्म, नीलाब्ज, शंख, सर्प और सिंह हैं । [2]

जिनोपासक यक्ष -

24 तीर्थंकरों की भांति जैन मूर्ति कला में जिनोपासक 24 यक्ष भी बताये गये हैं । रूप मण्डन के अनुसार इन यक्षों के नाम क्रमशः गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षनायक, तुम्बरु, कुसुम, मातंग, विजय, जय, ब्रह्मा, यक्षेट, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड़, गन्धर्व, यक्षेट, कुबेर, वरुण, भ्रुकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातंग हैं ।[3]

पर अपराजित पृच्छा में इन 24 यक्षों के नामों में कुछ परिवर्तन हो गया है । अपराजित पृच्छा के आधार पर 24 तीर्थंकरों के लिए क्रमशः 24 यक्षों की जो नामावलि दी गयी है वह इस प्रकार है - वृषवक्त्र, महायक्ष, त्रिमुख, चतुरानन, तुम्बरु, कुसुम, मातंग, विजय, जय, ब्रह्मा, यक्षेत, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड़, गन्धर्व, यक्षेत, कुबेर, वरुण, भ्रुकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातंग ।[4]

रूप मण्डन में कुछ यक्षों के प्रतिमा लक्षण भी दिये गये हैं । जैसे ऋषभ के यक्ष, गोमुख का वर्ण हेम है तथा उनका मुख वृष की भाँति है। उनका एक हाथ वरद मुद्रा में है तथा तीन हाथों में क्रमशः अक्षसूत्र, पाश और बीजपूरक हैं ।[5]

1- रूपमण्डन, सं० बलराम श्रीवास्तव, 6/5-6.
2- अपराजित पृच्छा, सं० आचार्य भुवन देव, 221/8+30.
3- रूपमण्डन, सं० बलराम श्रीवास्तव, 6/12-14.
4- अपराजित पृच्छा, सं० आचार्य भुवन देव, 221/39-41.
5- रूपमण्डन, सं० बलराम श्रीवास्तव, 6/17.

पार्श्वनाथ के यक्ष पार्श्व कूर्मासीन हैं तथा उनका मुख गज की भाँति है । उनका वर्ण काला है तथा हाथों में बीजपूरक ,उरग, नाग और नकुल हैं ।[1] महावीर के यक्ष मातंग गजारूढ़ हैं तथा श्वेत वर्ण के हैं । दाहिने हाथ में नकुल और बायें हाथ में बीजपूरक लिये रहते हैं ।[2]

अपराजित पृच्छा में सारे 24 यक्षों की प्रतिमा लक्षण का विवरण जो दिया गया है वह निम्न प्रकार से है ।[3]

वृषवक्त्र चतुर्भुज हैं , उनके हाथों में वर,अक्ष , पाशर्व, और मातुलुंग हैं तथा श्वेत वर्ण , वृषमुखा एवं वृषासन हैं । महायक्ष - श्याम वर्ण एवं अष्ट भुज हैं, उनके हाथों में वरद,अभय, मुद्गर, अक्ष, पाशर्व,अंकुश, शक्ति और मातुलुंग हैं । त्रिमुख भी श्याम वर्ण, त्रिनेत्र तथा त्रिमुखधारी,षड्भुज एवं मयूरासन हैं , उनके हाथों में परशु,अक्ष, गदा,चक्र,शंख तथा वर हैं । चतुरानन के हाथों में नाग,पाशर्व,वज्र तथा अंकुश हैं एवं वे हंसासीन हैं । तुम्बरु गरुड़ासन हैं एवं उनके हाथों में दो सर्प तथा वर हैं । कुसुम मृगासीन हैं एवं उनकी दो भुजाओं में गदा और अक्ष शोभायमान हैं । मातंग मेषवाहन पर आसीन हैं एवं उनकी दो भुजाओं में गदा और पाशर्व हैं । विजय कपोत पर आसीन हैं तथा उनके हाथों में परशु,पाशर्व,अभय और वर हैं । जय कूर्मासन हैं एवं उनके हाथों में शक्ति,अक्ष,फल व वर हैं । ब्रह्मा अपने वाहन हंस पर आरूढ़ हैं तथा हाथों में पाशर्व, अंकुश, अभय एवं वर हैं । यक्षेत वृष पर आसीन हैं एवं श्वेत वर्ण वाले हैं तथा त्रिशूल,अक्ष,फल व वर धारे हैं । कुमार मयूरासीन हैं तथा धनुषबाण,फल व वर धारी हैं । षडमुख षड्भुज हैं तथा धनुषबाण, फल व वर धारी हैं । पाताल वज्र, अंकुश, धनुषबाण,फल व वर धारण किए हैं ।गरुड़ शुकासन हैं तथा पाशर्व,अंकुश,फल,वरधारी हैं ,किन्नर पाशर्व,अंकुश, धनुषबाण.फल ,वर धारी हैं । गन्धर्व शुकासन हैं तथा पद्म,अभय, फल व वर-धारी हैं ,यक्षेश वारासीन हैं एवं धनुषबाण,फ व वरधारी हैं । कुबेर चतुर्मुख

1- यक्ष मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, 6/20 .
2- वही वही 6/22 .
3- अपराजित पृच्छा ,ले 0 आचार्य भुवन देव , 221/ 45-56 .

तथा सिंहासीन हैं और पाश्र्व, अंकुश, फल व वर धारण किये हैं । वरुण पाश्र्व, अंकुश, धनुषबाण, सर्प वज्र धारण किये हुए हैं । भृकुटी अक्ष, शूल, शक्ति, वज्र, खेटक व डमरूधारी हैं । गोमेध यक्ष लुप्त हैं और उनका कोई प्रतिमानुकूल लक्षण स्पष्ट नहीं दिखायी देता । पाश्र्व धनुषबाण भुण्डि, मुद्गर, फल व वर धारी हैं एवं सर्प रूप, श्याम वर्ण तथा शान्ति प्रदाता हैं । मातंग गज पर स्थित हैं तथा अपने दो भुजाओं में फल एवं वर धारण किये हुए हैं ।

शासन देवियाँ [यक्षिणियाँ] –

24 तीर्थंकरों की संख्या के साथ 24 यक्षों की भाँति 24 शासन देवियाँ [यक्षिणियाँ] भी हैं, जो कि हर तीर्थंकर की प्रतिमा के प्रदर्शन में यक्ष के साथ अवश्य ही अंकित की जाती हैं । इन यक्षिणियों का जैन प्रतिमाओं में बड़ा ही महत्व है ।

रूपमण्डन के आधार पर यह 24 शासन देवियाँ इस प्रकार से हैं[1]– चक्रेश्वरी, अजितबला, दुरितारि, कालिका, महाकाली, श्यामा, शान्ता, भृकुटि, सुतारिका, अशोका, मानवी, चण्डी, विदिता, अंकुशी, कन्दर्पा, निर्वाणी, बाला, धारिणी, धरणप्रिया, नारदत्ता [नरदत्ता], गन्धर्वा, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका ।

पर अपराजित पृच्छा में इन शासनदेवियों की संख्या में समानता होते हुए भी उनके नामों में बहुत बड़ा परिवर्तन है । उसमें 24 शासन देवियों के नामों की जो तालिका दी गयी है वह इस प्रकार से है –[2]

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञा, वज्रशृंखला, नरदत्ता, मनोवेगा, कालिका, ज्वालामालिनी, महाकाली, मानवी, गौरी, गान्धारी, विराटा, अनन्तमति, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपा, चामुण्डा, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका।

1– रूपमण्डन, सं0 बलराम श्रीवास्तव, 6/14-16.

2– अपराजित पृच्छा, सं0 आचार्य भुवन देव, 221/ 10-14.

रूपमण्डन में कुछ यक्षों की भाँति कुछ यक्षिणियों के लक्षण एवं विशेषतायें देखने को मिलती हैं[1]। यथा - चक्रेश्वरी नामक यक्षिणी हेमवर्णा, गरुडारूढ़ा एवं अष्ट भुजा धारिणी हैं तथा उनके एक हाथ में वरद, शेष में बाण, पाश, चक्र व शूलादि हैं। जब वह द्वादश भुजा धारिणी होती हैं तब उनके आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और दो में मातुलुंग होते हैं तथा गरुड़ पर पद्मस्थ होती हैं। अम्बिका आम्रमंजरी युक्त, पीतवर्णा एवं सिंहारूढ़ा हैं तथा नाग-पाश, अंकुश एवं पुत्र-धारिणी हैं। पद्मावती तप्त लोहे अथवा ताँबे के सदृश वर्ण वाली हैं। वे चतुर्भुजा तथा कुक्कुटासीना हैं एवं हाथों में पद्म, पाश, अंकुश और बीजपूरक धारण किये रहती हैं। सिद्धायिका नीलवर्णा, चतुर्भुजा एवं सिंहारूढ़ा हैं। उनके हाथों में पुस्तक, अभय, बाण तथा मातुलुंग रहते हैं।

अपराजित पृच्छा में रूपमण्डन से भिन्न 24 यक्षिणियों की तालिका दी गयी है, जिनकी विशेषतायें निम्न प्रकार से देखने को मिलती हैं -[2]

चक्रेश्वरी - षट्पाद तथा द्वादश भुजायुक्त हैं। उनके हाथों में आठ चक्र, दो वज्र तथा मातुलुंग तथा अभय सुशोभित हैं और वे पद्मासना एवं गरुड़ पर स्थित हैं।

रोहिणी - श्वेतवर्णा, चतुर्भुजी तथा लोहासना अथवा रथारूढ़ा हैं और हाथों में शंख, चक्र, अभय एवं वर धारण किये हैं।

प्रज्ञा - श्वेतवर्णा षड्भुजी हैं तथा हाथों में अभय, वर, फल, चन्द्र, परशु और कमल धारण किये हुये हैं।

वज्रशृंखला - चतुर्भुजी रूप में हंसवाहिनी होती हैं तथा अपने हाथों में नाग-पाश, अक्ष, फल व वरद धारण किये रहती हैं।

नरदत्ता - श्वेत वर्णा चतुर्भुजी तथा गजारूढ़ा हैं और अपने हाथों में वज्र, अंकुश, वरद एवं फल धारण किये रहती हैं।

1- रूपमण्डन, सं० बलराम श्रीवास्तव, 6/18-23.

2- अपराजित पृच्छा, सं० आचार्य भुवनदेव, 221/ 15-38.

मनोवेगा - स्वर्णवर्णा ,चतुर्भजी व अश्वारूढ़ा रहती हैं तथा अपने हाथों में वज्र,चक्र,वर, फल धारण किये रहती हैं ।

कालिका - कृष्णवर्णा ,अष्टभुजी व महिषारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में शूल, पाशर्व, अंकुश ,धनुषबाण,चक्र, अभय और वरद धारण किये रहती हैं ।

ज्वालामालिनी - कृष्णवर्णा ,चतुर्भुजा,पद्मासना या वृषारूढ़ा रहती हैं और अपने हाथों में घंटा,त्रिशूल, फल और वरद धारण किये रहती हैं ।

महाकाली- कृष्णवर्णा ,चतुर्भुजी , एवं कूर्म पर स्थित रहती हैं तथा अपने हाथों में वज्र,गदा,अभय व वर धारण किये रहती हैं ।

मानवी - श्याम वर्णा ,चतुर्भुजी , तथा शूकर पर आरूढ़ रहती हैं और उनके हाथों में पाशर्व,अंकुश,वर एवं फल शोभा पाते हैं ।

गौरी - कनक तुल्य आभा वाली,चतुर्भुजी,कृष्ण-हरिणारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में पाशर्व, अंकुश ,ध्वज और वरद धारण किये रहती हैं ।

गान्धारी - श्यामवर्णा ,मकरारूढ़ा व द्विभुजा धारणी गान्धारी अपने हाथों में पद्मफल को धारण किये रहती हैं ।

विराटा - व्योमयानगता हैं , श्यामवर्णा हैं तथा अपनी षड्भुजाओं में खड्ग, खेटक, धनुष बाण तथा दो में वरद धारण किये रहती हैं ।

अनन्तमति - चतुर्भुजी , एवं हंसासना यह यक्षिणी अपने हाथों में धनुष-बाण,फल एवं वर धारण किये रहती हैं ।

मानसी - रक्तवर्णा ,षड्भुजा धारिणी एवं व्याघ्रारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में त्रिशूल,पाश ,चक्र, डमरू,फल व वर धारण करती हैं ।

महामानसी - गरुड़ारूढ़ा , स्वर्णआभा तेजुक्ता एवं चतुर्भुजा धारिणी इस यक्षिणी के हाथों में वर,धनुष,वज्र,एवं चक्र शोभा पाते हैं ।

जया - कनकाभा तेजुक्ता , कृष्ण शूकरारूढ़ा एवं षड्भुजा धारिणी यह जया अपने हाथों में वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल, और वरद धारण करती हैं ।

विजया - नग्ना ,स्वर्णवर्णा ,सिंहासना एवं चतुर्भुजा धारिणी विजय अपने हाथों में वज्र,चक्र,सर्प और फल धरण किये रहती हैं ।

अपराजिता - श्यामवर्णा एवं चतुर्भुजा धारिणी इस यक्षिणी के हाथों में खड्ग, खेटक, वर एवं फल शोभायमान रहते हैं ।

बहुरूपा - सर्पासना, स्वर्णवर्णा एवं द्विभुजा धारिणी होकर यह अपने हाथों में खड्गऔर खेटक धारण किया करती हैं ।

चामुण्डा - मर्कटासना, रक्तिमावर्णयुक्ता, अष्टभुजा धारिणी अपने हाथों में शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरू एवं अक्ष धारण करती हैं ।

अम्बिका - हरितवर्णा, सिंहारूढ़ा तथा द्विभुजा धारिणी अम्बिका अपने हाथों में फल और वर को धारण करती हैं एवं उनकी गोद में लड़का शोभायमान रहता है।

पद्मावती - पद्मासना, कुक्कुटासना, रक्तवर्णा, एवं चतुर्भुजा धारिणी पद्मावती अपने हाथों में पाश, अंकुश, पद्म तथा वर धारण करती हैं ।

सिद्धायिका - भद्रासन समन्विता सिद्धायिका द्विभुजा धारिणी हैं, जिनके हाथों में पुस्तक व अभय शोभा पाते हैं और जिनकी आभा कनक सदृश है ।

श्रुत देवियाँ -

जैन मूर्ति कला के अन्तर्गत तीर्थंकर, शासनदेव, शासन देवियों के अतिरिक्त श्रुतदेवियों का भी विशेष महत्व है । डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक प्रतिमा विज्ञान में जैन मूर्ति कला के अन्तर्गत 16 श्रुत देवियों अथवा विद्या देवियों का उल्लेख किया है । यह श्रुत देवियाँ निम्न प्रकार से हैं -[1]

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्रांकुशी, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, काली देवी, महाकाली, गौरी, गान्धारी, महाज्वाला, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी, महामानसी ।

इनके लक्षण भी यक्षिणियों से मिलते जुलते हैं ।[2] शान्तिदेवी के नाम से भी श्वेताम्बरों के ग्रन्थों में एक देवी हैं, जो जैनियों की एक नवीन उद्भावना कही जा सकती है।[3]

श्री (लक्ष्मी), सरस्वती और गणेश का भी जैन मूर्ति कला में विशेष प्रचलन है । आचार्य दिनकर में इनके लक्षण ब्राह्मण प्रतिमा लक्षण से मिलते जुलते

1- प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318.
2- वही वही पृ० 318.
3- वही वही पृ० 318.

है ।[1]

<u>योगिनियाँ</u> - ब्राह्मण प्रतिमाओं में उल्लिखित 64 योगिनियों की भाँति जैन प्रतिमा विज्ञान में भी 64 योगिनियों का उल्लेख मिलता है, पर इनमें ब्राह्मण प्रतिमा लक्षणों से वैलक्षण्य है । अहिंसक एवं परम वैष्णव जैनियों में योगिनियों का आविर्भाव उन पर तान्त्रिक आचार्य एवं तान्त्रिकों की पूजा का प्रभाव है ।[2]

<u>दिक्पाल</u> - ब्राह्मण प्रतिमाओं में दिक्पालों की संख्या 8 निर्दिष्ट है, जिनको अष्ट दिक्पाल की संज्ञा दी गयी है, पर जैनों में 10 दिक्पाल बताये गये हैं । आठ दिशाओं के अष्ट दिक्पालों के अलावा दो दिक्पाल ब्रह्मदेव एवं नागदेव और अधिक जुड़ गए हैं । ये दोनों क्रमशः ऊर्ध्व दिशा एवं अधो दिशा [पाताल] के दिक्पाल माने गये हैं । इन दस दिक्पालों के नाम - इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, नागदेव और ब्रह्मदेव हैं । इनके प्रतिमा लक्षण निम्न प्रकार से हैं ।[3]

इन्द्र - तप्त कांचन वर्ण, पीताम्बर, ऐरावत वाहन, वज्रहस्त हैं तथा पूर्व दिशा के स्वामी हैं ।

अग्नि - कपिल वर्ण, छागवाहन, नीलाम्बर, धनुर्बाण हस्त एवं आग्नेय दिक्पति हैं ।

यम - कृष्ण वर्ण, चर्मावरण, महिष वाहन, दण्ड हस्त एवं दक्षिण दिक्पति हैं ।

निर्ऋति - धूम्र वर्ण, व्याघ्रचर्मावृत्ति, मुद्गरहस्त, प्रेतवाहन एवं नैर्ऋत्यदिक्पति हैं।

वरुण - मेघवर्ण, पीताम्बर, पाशहस्त, मत्स्यवाहन एवं पश्चिमदिक्पति हैं ।

वायु - धूसरवर्ण, रक्ताम्बर, हरिणवाहन, ध्वजधारण एवं वायव्यदिक्पति हैं।

कुबेर - सकोषाध्यक्ष, कनकवर्ण, श्वेताम्बर, नरवाहन, रत्नहस्त एवं उत्तरदिक्पति हैं ।

ईशान - श्वेतवर्ण, गजाजिनावृत्त, वृषभ वाहन, पिनाकशूलधर एवं ईशानदिक्पति हैं।

1- प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318.
2- वही वही पृ० 318.
3- वही वही पृ० 317.

नागदेव - कृष्णवर्ण, पद्मवाहन , उरगहस्त, पातालाधीश्वर हैं ।

ब्रह्मदेव - कंचनवर्ण, चतुर्मुख श्वेताम्बर, हंसवाहन, कमलासन, पुस्तक, कमलहस्त अर्द्धलोकाधीश हैं ।

प्रतिहार एवं उनके प्रतिमा-लक्षण -

ब्राह्मण प्रतिमाओं की भाँति जैन प्रतिमाओं में भी प्रतिहारों का निर्देशन है । रूपमण्डन के अनुसार जैन प्रतिमाओं में आठ प्रतिहारों का उल्लेख मिलता है इन प्रतिहारों के नाम - इन्द्र, इन्द्रजय, महेन्द्र, विजय, धर्णेन्द्र, पद्मक, सुनाभ एवं सुरदुन्दुभि हैं ।[1] ये सभी प्रतिहार वीतराग एवं शान्तिप्रदाता हैं ।[2]

प्रतिमा लक्षण - इन्द्र और इन्द्रजय के हाथों में फल, वज्र, अंकुश और दंड रहते हैं । महेन्द्र और विजय के दो हाथों में वज्र और शेष दो हाथों में फल व दंड शोभायमान रहते हैं । धर्णेन्द्र और पद्मक की प्रतिमायें भी इन्हीं लक्षणों से युक्त हैं, पर इनके तीन या पाँच सर्प फण हुआ करते हैं । सुनाभ एवं सुरदुन्दुभि यक्ष के रूप एवं आकार के होते हैं एवं निधिहस्त हैं ।[3]

रूपमण्डन में इन आठों को क्रमशः वीतराग बनाने का निर्देश है एवं नगर, पुर तथा ग्रामादि में इनकी प्रतिमाओं को बनाना चाहिये क्योंकि ये सभी विघ्ननाशक माने गये हैं ।[4]

नवग्रह -

ब्राह्मण-प्रतिमाओं की भाँति जैन-प्रतिमाओं में भी " नवग्रह " बनाने का निर्देश है । ये नवग्रह ब्राह्मण-प्रतिमाओं की ही भाँति हैं, पर प्रतिमा-लक्षण की दृष्टि से ब्राह्मण-प्रतिमाओं में प्रतिष्ठापित नवग्रह की भाँति कहीं कहीं समान और कहीं कहीं असमान हैं । डा० जितेन्द्रनाथ शुक्ल की पुस्तक "प्रतिमा विज्ञान " में जैन नवग्रह का उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है ।[5]

1- रूपमण्डन, ले० बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6, पृ० 28.
2- वही वही पृ० 6/29 .
3- वही वही पृ० 6/29-31.
4- वही वही पृ० 6/32-33 .
5- प्रतिमा विज्ञान , ले० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318.

सूर्य – रक्त वस्त्र , कमलहस्त, एवं सप्ताश्वरथ वाहनधारी ।

चन्द्र – श्वेतवस्त्र , श्वेतदशवाजवाहन एवं सुधाकुम्भ हस्तधारी ।

मंगल –विद्रुम वर्ण ,रक्ताम्बर, शक्तिस्थित एवं कुद्दालहस्तधारी ।

बुध – हरितवस्त्र , कलहंस-वाहन, एवं पुस्तकहस्तधारी ।

बृहस्पति – कांचन वर्ण , पीताम्बर, पुस्तकहस्त एवं हंसवाहनधारी ।

शुक्र – स्फटिकोज्ज्वल, श्वेताम्बर, कुम्भहस्त एवं तुरगवाहनधारी ।

शनि – नीलवर्ण , नीलाम्बर,परशुहस्तएवं कमठवाहनधारी ।

राहु – कज्जलश्यामल, श्यामवस्त्र, परशुहस्त एवं सिंहवाहनधारी ।

केतु – श्यामांग , श्यामवस्त्र , पन्नगवाहन एवं पन्नगहस्तधारी

क्षेत्रपाल –

जिन-प्रतिमाओं में क्षेत्रपाल का उल्लेख मिलता है । यह ब्राह्मण -प्रतिमाओं की भाँति जिन प्रतिमाओं में एक प्रकार के भैरव हैं , जो योगिनियों के अधिपति हैं ।[1] आचार्य दिनकर में क्षेत्रपाल का लक्षण इस प्रकार से देखने को मिलता है – " ये कृष्णगौरकांचन – धूसरकपिलवर्ण , विंशतिभुजदण्ड, वर्बरकेश, जटाजूटमण्डित , वासुकीहार , तक्षककृतमेखल, शेषकृतनिर्योपवीत , तक्षककृतमेखल, सिंहचर्मावृत, नानायुधहस्त ,प्रेतासन, कुक्कुरवाहन एवं त्रिलोचन हैं ।[2]

जैन-देवों के विभिन्न वर्ग –

जैनों के प्राचीन देववाद में चार प्रकार के प्रधान वर्ग हैं [3]
[अ] ज्योतिषी, [ब] विमानवासी , [स] भवनपति ,और [द] व्यन्तर ।
ज्योतिषी में नवग्रह का स्थान है ।[4] विमानवासी दो उप-वर्गों में विभाजित हैं – [अ] उत्तर कल्प , [ब] अनुत्तर कल्प ।

1– प्रतिमा विज्ञान ,डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318.
2– वही वही पृ० 318.
3– वही वही पृ० 314.
4– वही वही पृ० 314.

उत्तर कल्प में सुधर्म ,ईशान, सनतकुमार व ब्रह्मा आदि 12 देव परिगणित हैं एवं अनुत्तर कल्प में पांच स्थानों के अधिष्ठातृदेव - इन्द्र के पांच रूप [विजय, विजयन्त, जयन्त, अपराजित एवं सर्वार्थ सिद्ध] सम्मिलित हैं ।[1]

भवन-पतियों में असुर,नाग, विद्युत, सुपर्ण आदि दस श्रेणियां हैं , जब कि व्यन्तरों में पिशाच,राक्षस, यक्ष,एवं गन्धर्व आदि 8 प्रकार की श्रेणियां हैं ।[2]

जनपद ललितपुर की जैन मूर्तियां और उनका विश्लेषण -

वर्तमान स्थिति - मूर्तियों का विवेचन करने से पूर्व उनकी वर्तमान स्थिति से अवगत होना समीचीन होगा । अनेक मंदिर काल के प्रवाह के साथ ध्वस्त हो गए , मूर्तियां बिखर गयीं , कुछ धरा के गर्भ में समाहित हो गयी और कुछ विनष्ट हो गयीं । बची हुयी इस कला राशि के कुछ नमूने आज भी यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। देवगढ़ में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का स्कल्पचर्स शेड है । यहाँ जैन संग्रहालय भी है। जिसमें जैन धर्म से संबंधित कुछ प्रतिमायें संग्रहीत हैं । सेरोनजी में सैकड़ों प्रतिमायें जैन समाज के अधिकार में संग्रहित हैं , यद्यपि यहां इनकी अपेक्षित व्यवस्था एवं सुरक्षा का पूर्ण अभाव है । दुधई ,चांदपुर के संरक्षित स्मारकों से लगभग 130जैन मूर्तियों को उठा कर झांसी स्थित रानी लक्ष्मीबाई महल संग्रहालय में सुरक्षित रखा दिया गया है । कुछ मूर्तियां अब भी प्राचीन मंदिरों में मौजूद हैं ।

कलागत विशेषतायें - देवगढ़ और सेरोनजी मूर्तियों के निर्माण केन्द्र थे । यहां से मूर्तियां अन्यत्र ले जायी गयी थीं । मूर्तियों का निर्माण यहाँ दीर्घकाल तक हुआ । मौर्यकाल की मूर्तियां आदि अब यहां दृष्टिगत नहीं होतीं या उनके लक्षण यहां की मूर्तियों में साधारणतः नहीं पाये जाते, तथापि यह मानना होगा कि उस समय यहाँ मूर्तियों का निर्माण प्रारंभ हो चुका था ।[3] गांधार कला का प्रभाव भी निश्चित रूप से यहां की अनेक मूर्तियों पर देखा जा सकता है। एक विशिष्ट मुखाकृति जो गांधार शैली की विशेषता है , यहां की तीर्थंकर और

1- प्रतिमा विज्ञान ,ले0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 314.
2- वही वही पृ0 314.
3- मंदिर सं0 12 के ग्रान शिलालेख में मौर्यकालीन ब्राह्मी का भी प्रयोग हुआ है : एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट भाग-2, 1918: दयाराम साहनी पृ0 10.

देव-देवियों की मूर्तियों में पर्याप्त सफलता से अंकित की गयी है । गुप्तकालीन और गुर्जरप्रतिहार कालीन अनेक मूर्तियां यहां उपलब्ध हैं । कलचुरि और चन्देल युग में यहां प्रचुरता से मूर्तियां निर्मित हुयीं तथा मुगल और बुन्देल काल तक यहां मूर्तियां निर्मित होती रहीं ।[1]

गुप्तकालीन प्रतिमायें प्रभावोत्पादक तथा सुन्दर हैं । आकृतियों के अंकन में गतिशीलता है । सौन्दर्य विधान के अवधारित मानदण्डों का प्रयोग कलाकारों ने प्रतिमा निर्माण में किया है । शरीर की स्थूलता समाप्त हो गयी और उसमें छरहरापन आ गया । अर्धमुकलित चक्षु, मुख का शान्त भाव आकर्षक केश विन्यास, पारदर्शक वस्त्र परिधान इस काल की अपनी विशेषतायें हैं । कुषाण काल की अपेक्षा गुप्त काल में अलंकारों की संख्या कम हो गयी है। एकावलि, अंगद, कंकण, नूपुर आदि कुछ चुने हुए आभूषण ही प्रदर्शित किए गये हैं ।[2]

प्रतिहार कला शैली की प्रतिमायें मध्यकालीन किसी भी अन्य शैली की कृतियों से अधिक सुन्दर और प्रभावोत्पादक हैं । मुख पर स्मितिभाव प्रदर्शित हैं, शरीर सुडौल और अलंकरणों का प्रयोग कम किया गया है ।[3]

कलचुरि कला शैली की मूर्तियों में आनुपातिक लम्बाई अधिक है । प्रायः पैर लकड़ी जैसे टेक की तरह लगे हुए हैं । कण्ठ तथा कमर के कुछ विशेष प्रकार के अलंकरण भी इस शैली की मूर्तियों की विशेषतायें हैं ।[4]

चन्देल कला शैली का मूर्ति शिल्प अत्यन्त सम्पन्न है । इस शैली की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं -[5]

1- कुछ मूर्तियों को छोड़ कर जिन्हें गर्भगृह तथा अन्य स्थानों में लगाया जाता था, अधिकांश कलाकृतियां किसी स्थापत्य का अंग रही हैं । इन्हें पटिया पर उकेर कर बनाया गया है, जिन्हें मंदिर की दीवारों पर स्थापित किया जाता था ।

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 95-96.
   [ब] भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागःसंकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ०191-97
2- उत्तरप्रदेश [पुरातत्व विशेषांक [वर्ष नौ अंक 12:बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा, ले० एस०डी० त्रिवेदी, पृ० 21.
3- वही वही पृ० 21.
4- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व,ले० एस०डी० त्रिवेदी, पृ० 45.
5- वही वही पृ० 44-45.

2- मानव मुखाकृति प्रायः अण्डाकार हैं जो ठोढ़ी के पास थोड़ा नुकीलापन लिये हुए हैं ।

3- सामने की मुखाकृति पर नथने बड़े 2 दिखाए गये हैं ।

4- चक्षु अर्धमुकलित और कभी 2 नीचे को झुके हुए हैं ।

5- भौंहों को एक लंबी धनुषाकार रेखा के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो नाक के ऊपर समाप्त होती है । परन्तु ये दोनों रेखायें प्रायः मिलती हैं ।

6- मोटे ओष्ठ प्रदर्शित किये गये हैं ।

7- गले में तीन या चार गहरे बड़े दिखाये गये हैं ।

8- अधिकांश प्रतिमायें स्थानक स्थिति में हैं परन्तु जैन तीर्थंकरों तथा कुछ अन्य देवी देवताओं को छोड़ कर आकृतियाँ समभंग नहीं हैं ।

9- नीचे से उगती हुयी कमल कलिका प्रायः प्रदर्शित की गयी है । कहीं कहीं इसे देव के लांछनों में सम्मिलित करके उनके हाथों में प्रदर्शित किया गया है ।

गुप्तोत्तर कालीन [600-1200 ई0] मूर्तियाँ शिलापट्टों पर उकेर कर उभार में बनायी गयी हैं । गोलायी में उकेरी हुयी मूर्तियाँ कम हैं । बहुत सी मूर्तियों का संयोजन एक सा है । दोनों ओर के किनारों पर कला-अभिप्राय बने रहते हैं जिनमें शार्दूल, मकर तथा कभी 2 उसके ऊपर किन्नर आकृतियाँ मिलती हैं । प्रभामण्डल के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं और उसके दोनों ओर शाखों के मध्य विद्याधरों को विहार करते हुए दिखलाया गया है । देवी देवताओं को अंलकृत स्तम्भों के मध्य प्रदर्शित किया गया है ।[1]

इस काल में [600-1200 ई0] कलाकार मूर्ति को अलंकरण और चमत्कार के घेरे में उलझाने लगते हैं, वे आकर्षण के नाम पर अलंकरण की सूक्ष्मता तो अवश्य प्रदर्शित करते हैं परन्तु मूर्ति के मुख-मण्डल से शान्ति और वैराग्य का भाव नहीं उभार पाते जो गुप्त कालीन कला की विशेषता थी । इस तथा ऐसे ही कलागत दोषों के लिये न केवल कलाकार उत्तरदायी थे बल्कि उनके आदेशकर्ता भट्टारक या उनसे प्रभावित श्रावक भी थे । तत्कालीन समाज

1- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , डॉ0 एस0डी0 त्रिवेदी , पृ0 45 .

को भी अलंकरण की बोझिलता रुचिकर थी । आभूषणप्रियता ,अन्धविश्वास आदि भी इसमें सहायक थे । चमत्कार को महत्व देने की परंपरा भट्टारकों में प्रारंभ से रही है । अतः जैसे अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक कथाओं को गढ़ने के साथ ही साथ उन्होंने कला में भी ऐसे ही तत्वों का समावेश प्रारंभ कर दिया । उन्होंने सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के साथ सर्प की फणावलि तो दिखाई ही [1], उनकी शय्या के रूप में [पृष्ठ भाग में] उसकी कुण्डली भी दिखायी ।[2] इतना ही नहीं , इन सबके अतिरिक्त ,देवगढ़ में पार्श्वनाथ की दो ऐसी मूर्तियाँ भी मिली हैं , जिनके आसन के रूप में सर्प की कुण्डली भी दिखायी गयी है । [3] इसी प्रकार कुछ मूर्तियों में तीर्थंकर की माता एक आकर्षक मुद्रा में लेटी हैं और देवियाँ विभिन्न प्रकार की सेवा में संलग्न हैं ।[4] माता के गौरव और स्नेह के प्रतीक चौबीसों तीर्थंकरों का भी अंकन इसमें द्रष्टव्य है ।

कुछ तीर्थंकरों के साथ जटाओं के अंकन में तो भट्टारक शिव को भी पीछे छोड़ देते हैं । शिव की जटायें लंबी अवश्य रहती हैं परन्तु वे प्रायः जूड़े में बंधी रहती हैं, किन्तु कुछ तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ जटायें इतनी अधिक और लंबी दिखायी गयी हैं कि वे जूड़े में बंधने के बाद भी बहुत बड़ी मात्रा में कंधों और पीठ पर बिखरी रहती हैं । [5] कभी कभी तो वे इतनी लंबी होती हैं कि पिण्डलियों

1- देवगढ़ में फणावलि, सुमतिनाथ [जैन चहारदीवारी के प्रवेश द्वार के दायीं ओर बाहर ऊपर इसके स्थान पर जड़ी गयी] तथा नेमिनाथ [मंदिर सं012 के महामंडप में दायें से बायें तीसरी] ,की मूर्तियों के साथ भी दिखायी गयी है । -देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 69 ,

2- ऐसी ही कुछ मूर्तियाँ मथुरा, चन्द्रमाल[ललितपुर] और सेरोनजी में भी हैं ।-देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 69 .

3- देवगढ़ में मंदिर सं0 15 के गर्भगृह में मूल नायक के बायें तथा मंदिर सं025 के गर्भगृह में अवस्थित मूर्तियाँ -देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 69 .

4- यह मूर्ति देवगढ़ के मंदिर सं0 4 के गर्भगृह की बायीं भित्ति में जड़ी है ।ऐसी ही एक अन्य मंदिर सं030 में भी विद्यमान है।-देवगढ़ की जैन कला,ले0भागचन्द्र जैन पृ0 69.

5- देवगढ़ में मंदिर सं0 12 के मण्डप में बायें से दायें बीसवीं मूर्ति तथा गर्भगृह की सीढ़ी पर अवस्थित मूर्ति , मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणा पथ में बायें से दायें 25वीं मूर्ति तथा जैन चहारदीवारी[दक्षिण] में जड़ी हुयी मूर्तियाँ ।-देवगढ़ की जैन कला, ले0, भागचन्द्र जैन पृ0 69.

को भी अलंकरण की बोझिलता रुचिकर थी । आडम्बरप्रियता ,अन्धविश्वास आदि भी इसमें सहायक थे । चमत्कार को महत्व देने की परंपरा भट्टारकों में प्रारंभ से रही है । अतः बीसों अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक कथाओं को गढ़ने के साथ ही साथ उन्होंने कला में भी ऐसे ही तत्वों का समावेश प्रारंभ कर दिया । उन्होंने सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के साथ सर्प की फणावलि तो दिखाई ही [1], उनकी तकिया के रूप में [पृष्ठ भाग में] उसकी कुण्डली भी दिखायी ।[2] इतना ही नहीं , इन सबके अतिरिक्त ,देवगढ़ में पार्श्वनाथ की दो ऐसी मूर्तियाँ भी मिली हैं , जिनके आसन के रूप में सर्प की कुण्डली ही दिखायी गयी है । [3] इसी प्रकार कुछ मूर्तियों में तीर्थंकर की माता एक आकर्षक मुद्रा में लेटी हैं और देवियाँ विभिन्न प्रकार की सेवा में संलग्न हैं ।[4] माता के गौरव और स्नेह के प्रतीक चौबीसों तीर्थंकरों का भी अंकन इसमें द्रष्टव्य है ।

कुछ तीर्थंकरों के साथ जटाओं के अंकन में तो भट्टारक शिव को भी पीछे छोड़ देते हैं । शिव की जटायें लंबी अवश्य रहती हैं परन्तु वे प्रायः जूड़े में बंधी रहती हैं, किन्तु कुछ तीर्थंकरों की मूर्तियों के साथ जटायें इतनी अधिक और लंबी दिखायी गयी हैं कि वे जूड़े में बंधने के बाद भी बहुत बड़ी मात्रा में कंधों और पीठ पर बिखरी रहती हैं । [5] कभी कभी तो वे इतनी लंबी होती हैं कि पिण्डलियों

1- देवगढ़ में पद्मावलि, सुमतिनाथ [जैन चहारदीवारी के प्रवेश द्वार के दायीं ओर बाहर ऊपर दूसरे स्थान पर जड़ी हुयी] तथा नेमिनाथ [मंदिर सं0 12 के महामंडप में दायें से बायें तीसरी] ,की मूर्तियों के साथ भी दिखायी गयी है । -देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 69 ,

2- ऐसी ही कुछ मूर्तियाँ दुधई, चेन्दपाल [ललितपुर] और सेरोनजी में भी हैं ।-देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 69 .

3- देवगढ़ में मंदिर सं0 15 के गर्भगृह में मूल नायक के बायें तथा मंदिर सं0 25 के गर्भगृह में अवस्थित मूर्तियाँ -देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 69 .

4- यह मूर्ति देवगढ़ के मंदिर सं0 4 के गर्भगृह की बायीं भित्ति में जड़ी है ।ऐसी ही एक अन्य मंदिर सं0 30 में भी विद्यमान है।-देवगढ़ की जैन कला,ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 69.

5- देवगढ़ में मंदिर सं0 12 के मण्डप में बायें से दायें बीसवीं मूर्ति तथा गर्भगृह की सीढ़ी पर अवस्थित मूर्ति , मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणा पथ में बायें से दायें 25वीं मूर्ति तथा जैन चहारदीवारी [दक्षिण] में जुड़ी हुयी मूर्तियाँ ।-देवगढ़ की जैन कला, ले0, भागचन्द्र जैन पृ0 69.

तक आ पहुचती है ।[1]

अधिक महत्व भट्टारकों की एक प्रवृत्ति शासन देवों और देवियों को अपेक्षा-कृत देने की भी रही थी । प्रारंभ में तीर्थंकर मूर्तियों के साथ उनकी शासन देव-देवियों का अंकन नहीं होता था परन्तु भट्टारकों के उक्त प्रवृत्ति के फलस्वरूप ऐसा होने लगा । इतना ही नहीं स्थिति यहां तक आयी थी कि तीर्थंकर मूर्ति की अपेक्षा शासन देवी की मूर्ति बीस गुनी तक बड़ी बनायी जाने लगी । देव-देवियों के प्रति भट्टारकों का यह आग्रह यहां तक बढ़ा कि नवग्रहों का अंकन, जो सर्वत्र प्रवेश द्वारों पर ही उपलब्ध होता था, तीर्थंकर मूर्तियों के साथ कराना भी प्रारंभ कर दिया गया ।[2] इससे तीर्थंकर मूर्तियों के ऐश्वर्य में वृद्धि न होकर विद्रूपता ही आयी है ।

इस प्रकार गुप्तोत्तर काल से चन्देल काल तक और उसके भी पश्चात् मुगल काल के पूर्व तक तीर्थंकर की मूर्तियों में सौन्दर्य और आकर्षण में अभिवृद्धि भले ही हुयी हो पर वैराग्य और शान्ति की अभिव्यक्ति का निरंतर ह्रास होता गया ।[3]

जैन मूर्तियां -

जनपद ललितपुर में जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त देव-देवियों, विद्याधरों, साधु-साधुनियों, यक्षों, श्रावक-श्राविकाओं, युग्म और मण्डलियों आदि की प्रतिमायें भी प्राप्त हैं । इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

जैन तीर्थंकरों की प्रतिमायें -

जनपद में अन्य मूर्तियों की अपेक्षा तीर्थंकरों की मूर्तियां अधिक प्राप्त हैं । बहुसंख्यक मूर्तियों पर लांछन अंकित नहीं है और कुछ पर अंकित लांछन

1- ऐसी मूर्तियां देवगढ़ में मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणापथ में बांये से दांये 25वें फलक पर तथा मंदिर सं0 13 के मण्डप में बांये से दांये बीसवें फलक पर निर्मित है- देवगढ़ की जैन कला, डॉ0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 69 .

2- देवगढ़ के मं0 सं0 13 के मण्डप में बांये से दांये सोलहवां फलक, मं0सं0 12 के महामंडप में दांये से बांये तीसरा फलक तथा इसी मंदिर के गर्भगृह के मूल नायक।-देवगढ़ की जैन कला, डॉ0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69.

3- देवगढ़ की जैन कला : डॉ0 भागचन्द्र जैन पृ0 68-69 .

शास्त्रीय मान्यताओं के विरुद्ध प्रतीत होते हैं । जैसे जटाधारविक मूर्तियों के साथ बंदर, शंका, चकवा आदि ।[1] प्रायः सभी मूर्तियाँ शिलापट्टों पर उत्कीर्ण की गयी हैं । द्वि-मूर्तिकायें, त्रि-मूर्तिकायें, सर्वतो-भद्रिकायें और चतुर्विंशति पट प्रचुरता से उपलब्ध हैं । द्वारों पर भी तीर्थंकर मूर्तियों का अंकन हुआ है। प्रायः सभी मूर्तियों के साथ भिन्न 2 रूप से कुछ परंपराओं का निर्वाह किया गया है ।

ऋषभनाथ [आदिनाथ, वृषभनाथ] - जनपद ललितपुर में ऋषभनाथ की प्रतिमायें निम्न हैं -

देवगढ़ मंदिर सं0 1 के मण्डप में सामने की ओर [पूर्व में] मध्य में वृषभनाथ की पद्मासन मूर्ति उल्लेखनीय है जिसका लंबा श्रीवत्स उसके बारहवीं शती के होने की पुष्टि करता है ।[2]

आठवीं शती ई0 के आस पास की आदिनाथ की एक पद्मासन मूर्ति देवगढ़ मंदिर सं0 2 में [बायें से दायें, नवें स्थान पर 4फी. 7इंच x 2फी. 7इंच के शिलाफलक पर उत्कीर्ण] अवस्थित है। अष्टप्रातिहार्यों के अतिरिक्त इसके परिकर में दायें एक अन्य लघु पद्मासन तीर्थंकर का अंकन इस मूर्ति की विशेषता है ।[3]

मंदिर सं0 2 में ही चौथे शिलाफलक [4फी. 5इंच x 2फी. 7इंच] पर आदिनाथ की ही एक और पद्मासन मूर्ति उल्लेखनीय है । इसके सिंहासन के नीचे एक पंक्ति का लेख है जिसमें संवत् 1052 और दाता का नाम उत्कीर्ण है ।[4]

मंदिर सं0 2 में ही दसवें शिलाफलक [4फी. 9इंच x 2फी. 10इंच] पर आदिनाथ की एक और पद्मासन मूर्ति है [दे॰ चित्र सं॰ 55] । इसके सिंहासन के नीचे एक पंक्ति के लेख में संवत् 1122 अंकित है तथा परिकर में तीर्थंकरों की 2 लघु आकृतियाँ

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 68.
2- वही वही पृ0 74.
3- वही वही पृ0 74.
4- वही वही पृ0 74.

{पद्मासन में } अभिलिखित है । अष्ट प्रतिहारियों में एक दूसरे की ओर सस्नेह देखते हुए दो विद्याधर युगल हमें बर्बस अपनी ओर आकृष्ट करते है।[1]

देवगढ़ मंदिर सं0 3 में अवस्थित कायोत्सर्गासन ऋषभनाथ की मूर्ति 2फी. 6इंच ऊँचे और 1फी. 3इंच चौड़े शिला फलक पर उकेरी गयी है, इसके हाथ, परिकर, अष्टप्रातिहार्य तथा कुछ अन्य अंश खण्डित हो गये हैं । सिंहासन में यक्ष युगल, श्रावक युगल, सिंह युगल और कुसुम का अंकन अत्यन्त सूक्ष्मता और सुन्दरता के साथ किया गया है । पादमूल में दो कमलधारी त्रिभंगी देव दोनों ओर खड़े हैं । इन्होंने अपने 2 हाथ के विकसित कमल ऊपर उठा कर इस ढंग से ले रखे हैं कि वे तीर्थंकर की दोनों हथेलियों में ऐसे जा लगे हैं मानों उन्हें स्वयं तीर्थंकर ने ले रखा हो । परिकर में दोनों ओर तीन-तीन कायोत्सर्गासन तीर्थंकरों की तीन-तीन पंक्तियाँ हैं ।अनुमान है कि इस शिलाफलक के खण्डित अंश में शेष पाँच तीर्थंकर भी अंकित रहे होंगे । इस प्रकार इस शिलाफलक को चौबीसी कहना उपयुक्त होगा । इसका भा मण्डल अशोकवृक्ष की अनुकृति पर बनाया गया है, जो इसकी अपनी विशेषता है । इसकी नाभि के नीचे की त्रिवली, नाभि की गहरायी, श्रीवत्स की लघुता, ग्रीवा की त्रिवली, मुखमण्डल की सौम्यता और अब भी चमकते हुए पालिश की स्निग्धतायें सब मिल कर इसे गुप्तोत्तर युग की सिद्ध करते हैं । यद्यपि सिंहासन पर तीर्थंकर के पादमूल में उत्कीर्ण दो पंक्तियों के अभिलेख में संवत् 1209 उल्लिखित है ।[2]

देवगढ़ मंदिर सं0 4 में समवसरण वेदी में विराजमान ऋषभनाथ की प्रतिमा दर्शनीय है ।[3]

देवगढ़ मंदिर सं0 27 के गर्भगृह के द्वार के ऊपर मध्य में कायोत्सर्गासन ऋषभनाथ अंकित हैं ।[4]

1- देवगढ़ की जैन कला, डॉ0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 74.
2- वही वही पृ0 73.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-सम्पादक बलभद्र जैन, पृ0 181.
4- वही वही पृ0 185.

मदनपुर में मोदीमढ़ के दायें कोने वाले मढ़,जो धराशायी हो गया है, में भगवान ऋषभ देव की आठ फीट कायोत्सर्गासन मूर्ति एक वृक्ष की जड़ के आधार से टिकी हुयी खड़ी है। मूर्ति सर्वांग सुन्दर है।[1]

बानपुर में मंदिर सं0 1 की आधुनिक ढंग से सज्जित वेदिका पर वि0 संवत् 1142 की संगमरमर पाषाण की भगवान ऋषभनाथ की भव्य मूर्ति विराजित है।[2]

पावागिरि में क्षितिपाल की मढ़िया के कक्ष में लगभग पौने दो फीट ऊँची आदिनाथ की मूर्ति है। यह मूर्ति ध्यानी मुद्रा में है। पादपीठ पर सर्पों के सुन्दर आलेखन हैं एवं दोनों ओर दो-दो आराधिकायें अंजलि मुद्रा में हैं। ऊपर दो विद्याधर हैं, जिनमें एक के सिर पर उष्णीष है। यह मूर्ति उत्तम भावों और मुद्राओं की दृष्टि से अनुपम है।[3]

दुधई में आदिनाथ के मंदिर में गर्भगृह के मुख्य द्वार के केन्द्र में ध्यानी मुद्रा में आदिनाथ की प्रतिमा है, जिसके बांयी ओर कटिहस्त मुद्रा में पुरुषाकृति है एवं पादपीठ पर ध्वज चिन्ह,वृषभ तथा दोनों ओर शासन देव व देवियां उत्कीर्ण हैं।[4]

इसी आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के अंदर लगभग 1फी. ऊंची विशालकाय आदिनाथ की भव्य एवं आकर्षक प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। इस मूर्ति की पादपीठ पर केन्द्र में एक वृषभ के अलावा एक हिरन अंकित है। आदिनाथ के सिर के चारों ओर कमलदल युक्त प्रभा मण्डल शोभायमान है।[5]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : कलातीर्थ मदनपुर, ले0 विमल कुमार जैन, सौंरया, पृ0 81.
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र,ले0कैलाश मड़वैया, पृ0 20
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 53.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69.
5- चाँदपुर दुधई की जैनकला और संस्कृति : शोध प्रबंध :महेन्द्र कुमार वर्मा पृ0 315-16.

इसी आदिनाथ मंदिर में मुख्य आदिनाथ की प्रतिमा के समीप बांयी और चंवरधारी युक्त आदिनाथ की एक अन्य प्रतिमा अंकित है ।[1]

प्रतिमा सं0 250 {दुबई} [2] यहाँ भी आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित हैं । उनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीन-तीन-तीर्थंकरों की छोटी प्रतिमायें अंकित हैं तथा आदिनाथ के पैरों के दोनों ओर एक-एक अलंकृत एवं उभंगी मुद्रा में प्रदर्शित चंवरधारी की सुन्दर आकृतियां हैं । आदिनाथ के शीर्ष की शोभा कमलदलों से युक्त कलात्मक प्रभा मण्डल के प्रदर्शन से और अधिक बढ़ गयी है । ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र अंकित है जिस पर एक अस्पष्ट तीर्थंकर की छोटी प्रतिमा है तथा उसके दोनों ओर माल्यधारी किन्नर आदि की आकृतियां अंकित हैं । सिंहासन पर बीच में उनका ध्वज चिन्ह वृष तथा उसके नीचे दो सिंह प्रदर्शित हैं । दांयीं ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासन देवी विराजी हैं ।

प्रतिमा सं0 231 {दुबई} [3] – इस प्रतिमा में भी आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में [illegible] हैं पर उनका सिर ध्वस्त है । उनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में चार-चार तीर्थंकरों की प्रतिमायें हैं , लेकिन इन तीर्थंकरों के ऊर्ध्व भाग नष्ट हो चुके हैं । आदिनाथ की मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर एक-एक अलंकृत चंवरधारी पुरुषों की आकृतियां अंकित हैं । सिंहासन के नीचे वृष युक्त दो सिंह अंकित हैं तथा उन्हीं के साथ में उनके एक पैर के नीचे दांयी ओर एक आराधक तथा बांयी ओर एक आराधिका प्रदर्शित हैं । दांयी ओर शासन देव तथा बांयी ओर शासन देवी उत्कीर्ण हैं ।

प्रतिमा सं0 247 {दुबई} [4] {चतुर्विंशति प्रतिमा} – दुबई की आदिनाथ की प्रतिमाओं में यह प्रतिमा कलात्मक दृष्टि से उत्तम है । इस प्रतिमा में मध्य में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित हैं । ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र तथा उसके आस-पास अभिषेक करते हुए कलात्मक सजीव गज तथा माल्यधारियों की सुन्दर

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में पांचपुर-दुबई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा पृ0 69 .
2- रानी लक्ष्मीबाई महल झांसी संग्रहालय .
3- वही वही
4- वही वही

आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं । दाहिनी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 9 सुरक्षित एवं 2 नष्टावस्था में प्रदर्शित छोटी-छोटी जिन प्रतिमायें हैं । बाँयी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 6 छोटी जिन प्रतिमायें पूर्ण सुरक्षित हैं , पर शेष प्रतिमाओं वाला भाग टूटा हुआ है । अतः इस ओर 12 जिन प्रतिमाओं का होना निश्चित ही है । उनके पैरों के समीप दोनों ओर एक एक बैठा हुआ आराधक है एवं 2 खड़े हुए पुरुषों की सुन्दर आकृतियाँ हैं । पादपीठ पर दो सिंह एवं उनका ध्वज चिन्ह अंकित है ,नीचे बाँयी ओर चक्रेश्वरी एवं दाहिनी ओर गोमुख प्रदर्शित हैं ।

प्रतिमा सं0 643 § दुबई § [1] इस प्रतिमा में केवल अधोभाग सुरक्षित है । दोनों पैरों को सीधे रूप में खड़े रखने से यह आभास होता है कि आदिनाथ की यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित हुयी होगी । मुख्य प्रतिमा के दोनों पैरों के दाहिनी ओर त्रभंगी मुद्रा में एक चंवरधारी व एक आराधक की आकृतियाँ अंकित हैं , जब कि बाँयी ओर की दोनों आकृतियाँ अस्पष्ट है । पादपीठ पर दो वृष एवं दो सिंह अंकित हैं ।

प्रतिमा सं0 616 §दुबई§ [2] - ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित आदिनाथ की इस प्रतिमा का शीर्ष , घुटनों एवं हाथों वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । पादपीठ पर वृषभ व दो सिंह अंकित हैं ।

प्रतिमा सं0 212 §दुबई § [3] - लगभग 4फी. 9इंच ऊँचाई में निर्मित आदिनाथ की ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित इस प्रतिमा में शीर्ष , बाँयी जँघा एवं भुजाओं वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। पृष्ठ भाग में कमलदलों से युक्त प्रभा मण्डल के चिन्ह से प्रभा मण्डल के होने का निश्चयीकरण होता है । दाहिनी ओर एक सजीव एवं कलापूर्ण गज पैर उठाये हुये खड़ा है , जिसके ऊपर एक चंवरधारी की सुन्दर आकृति है जिसका दाहिना हाथ एवं पैर §दोनों§ नष्ट हो चुके हैं । इससे स्पष्ट है कि यह पुरुष गज पर स्थित रहा होगा । सिंहासन सुन्दर कमलदलों एवं कीर्तिमुखों से अंकित है तथा मुक्तावलियों से अंकित कलापूर्ण पट पर शोभायमान है।

1- रानी लक्ष्मी बाई महल,झाँसी संग्रहालय .

2- वही वही .

3- वही वही .

दाहिनी ओर एक सिंह है तथा बांयी ओर वाले सिंह का केवल एक पिछला पैर अंकित है । इससे बांयी ओर भी सिंह का होना आवश्यक समझा जाता है । दाहिनी ओर गोमुख एवं बांयी ओर गरुड़वाहिनी चक्रेश्वरी की सुंदर एवं सजीव प्रतिमायें हैं ।

प्रतिमा सं0 214 (दुबई)[1] – कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित आदिनाथ की यह प्रतिमा सिर विहीन है । दाहिनी ओर छोटी-छोटी दो जिन प्रतिमायें हैं तथा बांयी ओर एक प्रतिमा अंकित है। लेकिन उसका ऊपर का भाग नष्ट है । पैरों के समीप दोनों ओर एक-एक चंवरधारी की आकृतियां तथा एक-एक अस्पष्ट आकृतियां अंकित हैं । भद्रासन पर वृषभ एवं दो सिंह प्रदर्शित हैं । बांयी ओर शासनदेवी तथा दाहिनी ओर शासन देव अंकित हैं ।

आदिनाथ के कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित उपरोक्त आदिनाथ की प्रतिमाओं के अलावा दुबई के मंदिरों के दक्षिणी समूह में " बड़ी बारात एवं छोटी बारात नामक मंदिरों के अवशेषों के बीच में आदिनाथ की एक प्रतिमा है , जिसका शीर्ष वाला भाग , घुटनों वाला भाग तथा भुजाओं वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । घुटनों के समीप दोनों ओर एक-एक गज व दाहिनी ओर एक चंवरधारी की आकृति अंकित है । पादपीठ पर वृषभ एवं आस-पास सिंह प्रदर्शित हैं ।[2]

प्रतिमा सं0 249 (चांदपुर)[3] – इस प्रतिमा में मध्य में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए हैं । दोनों ओर एक एक उन चंवरधारी की आकृतियां अंकित हैं , जो कि पूर्णरूपेण विविध प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं । केन्द्र में छत्र है , जिस पर ध्यानी मुद्रा में तीर्थंकर की एक छोटी अस्पष्ट प्रतिमा है । इसके दोनों ओर एक एक आराधक उपासना मुद्रा में है। पादपीठ पर (भद्रासन) पर केन्द्र में वृष एवं उसके आस पास एक एक सिंह की आकृतियां निर्मित हैं । दाहिनी ओर शासनदेव (यक्ष) वृषवक्त्र तथा बांयी ओर शासनदेवी (यक्षिणी) चक्रेश्वरी प्रदर्शित हैं । भाव-भंगिमाओं की दृष्टि से प्रतिमा अनूठी है ।

1– रानी लक्ष्मीबाई महल झांसी, संग्रहालय
2– चांदपुर-दुधई की चन्देल कला और संस्कृति:शोधप्रबंध:महेन्द्रकुमार वर्मा, पृ0312.
3– रानी लक्ष्मीबाई महल, झांसी संग्रहालय,

प्रतिमा सं० 182 §पांदुर§[1]- यह प्रतिमा ऊंचाई में लगभग 9 फी. है । प्रभा मण्डल से युक्त इस प्रतिमा में भुजाओं वाला भाग तथा मुख का कुछ भाग ध्वस्त हो चुका है । पैरों के दोनों ओर कटिहस्त मुद्रा में अंकुश एक एक परिचारक की कलात्मक आकृतियां प्रदर्शित हैं । चरणों के नीचे भद्रासन पर केन्द्र में वृषभ व उसके दोनों ओर एक एक सिंह कलात्मक मुद्रा में प्रदर्शित हैं। दाहिनी ओर एक दाढ़ीयुक्त आराधक एवं शासनदेव तथा बांयी ओर एक आराधिका एवं शासनदेवी की सुंदर कलात्मक आकृतियां अंकित हैं ।

प्रतिमा सं० 157 §पांदुर§ [2] - कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित आदिनाथ का शीर्ष वाला भाग ध्वस्त हो चुका है । कमल दलों से युक्त प्रभा मण्डल एवं उसके पास के किन्नरों तथा माल्यधारियों वाले भाग भी अधिकांशतः नष्ट हो चुके हैं केवल दो आकृतियों का कुछ भाग शेष है । आदिनाथ के पैरों के दोनों ओर अभंगी मुद्रा में एवं कटिहस्त एक एक अंकुश चंवरधारी की सुंदर आकृतियां हैं । दोनों ओर एक एक आराधक प्रदर्शित है , पर बांयी ओर के आराधक का ऊपरी भाग नष्ट हो चुका है । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यह पुरुष पात्र है अथवा स्त्री । भद्रासन पर वृष अंकित हैं तथा उसके नीचे दो सिंह प्रदर्शित हैं । नीचे दाहिनी ओर गोमुख तथा बांयी ओर चक्रेश्वरी निर्मित हैं ।

प्रतिमा सं० 229 §पांदुर§[3] - आदिनाथ की यह प्रतिमा ध्यानी मुद्रा में है । इस प्रतिमा में मुख्य प्रतिमा का शीर्ष एवं घुटनों वाला भाग नष्टावस्था में है । ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र के अलावा माल्यधारियों , किन्नर - किन्नरियों आदि की सुंदर आकृतियां अंकित हैं । इस प्रधान प्रतिमा के दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीन तीर्थंकर हैं ।

प्रतिमा सं० 452 §पांदुर§ [4] - ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित

1- रानी लक्ष्मीबाई, महल, झांसी संग्रहालय .
2- वही वही .
3- वही वही .
4- वही वही .

आदिनाथ की एकी. अंची प्रतिमा की भुजाओं एवं घुटने वाले भाग नष्ट हैं । कमलदलों से युक्त अंकुश एवं कलापूर्ण प्रभामण्डल के अंकन से प्रतिमा का सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया है । ऊपर केन्द्र में अंकुश त्रिछत्र के अलावा गजों ,माल्य-धारियों, आराधकों एवं घटधारियों की सुन्दर प्रतिमायें अंकित हैं । इन छोटी छोटी प्रतिमाओं के साथ साथ दोनों ओर ऊपर ध्यानी मुद्रा में छोटी जिन प्रतिमा प्रदर्शित हैं । कलापूर्ण आलेखनों से युक्त भद्रासन पर वृषभ अंकित हैं । उसके नीचे दो सिंहों की भग्नाकृतियां हैं । बांयी ओर गरुड़ासीना चक्रेश्वरी एवं दाहिनी ओर गोमुख की अस्पष्ट आकृति हैं।

प्रतिमा सं0 648 [चांदपुर] [1] - आदिनाथ की ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित इस प्रतिमा का शीर्ष एवं दाहिना हाथ ध्वस्त हैं । बांयी ओर एक चैवरधारी तथा दोनों ओर एक एक गज की आकृतियां हैं । भद्रासन पर दो सिंह अंकित हैं तथा बीच में उनका ध्वज चिन्ह वृषभ उत्कीर्ण है । भद्रासन के दोनों ओर शासनदेव एवं शासनदेवी अंकित हैं ।

प्रतिमा सं0 262 [चांदपुर] [2] - आदिनाथ की ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित यह प्रतिमा भव्य एवं कलात्मक है । मुख वाला भाग तथा भुजाओं एवं घुटनों वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । कमलदलों से युक्त अंकुश प्रभामण्डल के ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र के अलावा माल्यधारियों एवं किन्नरियों की जो छोटी छोटी प्रतिमायें अंकित हैं उनका अधिकांशतः भाग नष्ट हो चुका है । प्रभामण्डल के दोनों ओर घटधारियों से युक्त ध्यानी तीर्थंकर की प्रतिमायें सुशोभित हैं । मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर अभंगी मुद्रा में एक एक चैवरधारी प्रदर्शित हैं । दाहिनी ओर वाले चैवरधारी का दाहिना हाथ व चैवर का दण्ड तथा बांयी ओर वाले चैवरधारी का बांया हाथ नष्ट हो गये हैं । भद्रासन पर वृषभ एवं दो सिंह अंकित हैं । दोनों ओर शासनदेव तथा शासनदेवी की आकृतियां प्रदर्शित हैं ।

प्रतिमा सं0 224 [चांदपुर] [3] - शिर एवं भुजाओं से विहीन

1- रानी लक्ष्मीबाई ,महल,झांसी संग्रहालय .

2- वही वही .

3- वही वही .

आदिनाथ कीर्तिमुखों से युक्त अलंकृत भद्रासन पर ध्यानी मुद्रा में विराजे हुए हैं। बांयी ओर एक गज पर शिर-विहीन पर आभूषणों से अलंकृत अभंगी मुद्रा में एक पुरुष आकृति है। दाहिनी ओर केवल एक गज ही प्रदर्शित है। पादपीठ के नीचे बीच में वृषभ एवं आस पास दो सिंह प्रदर्शित हैं। दाहिनी ओर छत्रयुक्त शासनदेव एवं बांयी ओर छत्रयुक्त शासनदेवी अंकित हैं।

गिरार के ऋषभदेव के मंदिर के गर्भगृह में ऋषभदेव की एक विशाल प्रतिमा है।[1]

अजितनाथ – इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं :-

देवगढ़ मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के देहरी के सिरदल के मध्य में कमलाकृति आसन पर द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ [दे० चित्र सं० 22] का पद्मासन में और उनके दोनों ओर एक एक तीर्थंकर का कायोत्सर्गासन में अंकन है। उनके भी दोनों ओर तोरण के नीचे उड़ान भरते हुए पांच-पांच विद्याधर युगल और उनके भी ऊपर नवग्रह चित्रित हुए हैं।[2]

प्रतिमा सं0 235 [दुबई] [3] – शिर एवं भुजाओं से विहीन कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित अजितनाथ की यह कलात्मक प्रतिमा है। दोनों ओर ध्यानी मुद्रा में अंकित दो छोटी छोटी जिन प्रतिमाओं के अलावा चंवरधारी तथा बांयी ओर आराधिकाओं की कलापूर्ण आकृतियों का प्रदर्शन है। पाद-पीठ पर केन्द्र में गज के अलावा आस पास सिंहों का प्रदर्शन है। दाहिनी ओर शासनदेवी और बांयी ओर यक्ष की अस्पष्ट आकृति का अंकन है।

पावागिरि के चौथे मंदिर के गर्भगृह में 2फी. ऊँची वेदी पर बांयी ओर अजितनाथ की 2फी. ऊँची पद्मासन मूर्ति है। पादपीठ पर शिला-लेख है।[4]

1- भारत के दिगंबर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 195.
2- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 58.
3- रानी लक्ष्मीबाई, महल, झाँसी संग्रहालय.
4- बुंदेलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 विनोद कुमार पृ0 53.

सम्भव नाथ - जनपद में इनकी केवल एक ही मूर्ति उल्लेखनीय है :-

पावागिरि में चौथे मंदिर के गर्भगृह में 2फी. ऊँची वेदी पर सामने 2फी. ऊँची पद्मासन प्रतिमा है । पादपीठ पर अस्पष्ट भाषा का शिलालेख है ।[1]

अभिनन्दन नाथ - जनपद में इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं :-

देवगढ़ मंदिर सं0 9 के गर्भगृह में स्थित कायोत्सर्ग मुद्रा में [दे० चित्र सं 54] अभिनन्दन नाथ की मूर्ति स्निग्ध पालिश, अंगप्रत्यंग के समानुपाती अंकन तथा भावाभिव्यक्ति आदि के कारण गुप्त काल की कला - परंपराओं की रक्षा करती है । इसका निर्माण काल ईसा की सातवीं - आठवीं शती प्रतीत होता है । 2फी. 3 इंच लंबी इस तीर्थंकर मूर्ति के कन्धों पर जटायें लहरा रही हैं । इसके पादमूल में बन्दर का चिन्ह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । इस मूर्ति की एक और विशेषता यह है कि इसके कंधों के पार्श्व में तीर्थंकर का अभिषेक करते हुए दो इन्द्र कलश लिये हुए उपस्थित हैं । दुर्भाग्य से उनके सिर खण्डित हो गये हैं । पादपीठ पर भी दोनों ओर चंवरधारी इन्द्रों की भावपूर्ण मुख मुद्रायें दर्शनीय हैं ।[2]

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अंदर मंदिर सं0 3 में भगवान अभिनन्दन नाथ की श्यामवर्ण पाषाण की चार फी. उत्तुंग पद्मासन भव्य प्रतिमा संवत् 1243 की प्रतिष्ठित है जो अत्यंत मनोज्ञ है ।[3]

सुमतिनाथ - जनपद में इनकी केवल निम्न मूर्ति उल्लेखनीय है :-

देवगढ़ मंदिर सं0 7 के पश्चिम में जैन चहारदीवारी में फणावलि से युक्त सुमतिनाथ की एक सुंदर मूर्ति जड़ी हुयी है । इसमें इनका चिन्ह चकवा सुस्पष्ट रूप में देखा जा सकता है ।[4] [दे- चित्र सं. 53]

---

1. बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 [illegible] कुमार, पृ0 53.
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 73.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ भाग 1: लेखन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 200.
4- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 76.

पद्म प्रभु – जनपद में इनकी निम्न उल्लेखनीय मूर्ति है :-

प्रतिमा सं0 604 §दुधई§[1] – पद्म-प्रभु की कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित इस प्रतिमा का अधोभाग ही सुरक्षित है । इसमें भी तीर्थंकर का केवल बांया पैर ही शेष है । दूसरे पैर का चिन्ह मात्र शेष है । दोनों ओर त्रिभंगी मुद्रा में प्रदर्शित एक एक चँवरधारी की आकृतियाँ तथा दाहिनी ओर आराधक और बांयी ओर एक आराधिका की आकृति का अंकन है । पादपीठ पर केन्द्र में कमल एवं आस पास कलापूर्ण सिंहों का प्रदर्शन है । बांयी ओर शासनदेवी एवं दांयी ओर शासनदेव का प्रदर्शन है ।

सुपार्श्वनाथ – इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं :-

देवगढ़ मंदिर सं0 26 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर पांच फणा-वलि वाली कायोत्सर्ग सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है ।[2]

देवगढ़ मंदिर सं0 27 के मण्डप के प्रवेश द्वार के सिरदल पर बांये सुपार्श्वनाथ का कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकन हुआ है ।[3]

देवगढ़ मंदिर सं0 28 के अंग शिखर के देवकुलिका में बांये सुपार्श्वनाथ की पुरानी मूर्ति है ।[4]

दुधई के मंदिरों में दक्षिणी समूह के बड़ी बारात एवं छोटी बारात के भग्नावशेषों में ध्यानी मुद्रा में सुपार्श्वनाथ की सुन्दर प्रतिमा है पर उसका शीर्ष , भुजाओं एवं घुटने वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । घुटनों के समीप दोनों ओर एक एक सुन्दर गज प्रदर्शित है । दाहिनी ओर चँवरधारी है जिसका दाहिना भाग नष्ट हो चुका है । चँवरधारी के ऊपर गज एवं उसके ऊपर ध्यानी मुद्रा में तल्लीन तीर्थंकर की एक छोटी प्रतिमा अंकित है । पादपीठ पर केन्द्र में स्वस्तिक का चिन्ह तथा आस पास एक एक सिंह का अंकन है । मूर्ति के दोनों

1- रानी लक्ष्मी बाई , महल, झांसी संग्रहालय .
2- देवगढ़ की जैन कला , सं0 भाग चन्द्र जैन , पृ0 27 .
3- वही वही पृ0 27 .
4- वही वही पृ0 61 .

और शासनदेव एवं शासनदेवी का भी प्रदर्शन है ।[1]

चन्द्रप्रभ - इनकी मूर्तियाँ निम्न हैं :-

देवगढ़ स्तम्भ सं0 1 के ऊपर दक्षिणी देवकुलिका के नीचे चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति है । अर्ध-चन्द्र लांछन बना है ।[2]

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अंदर मंदिर सं0 3 के दालान के खम्भे में नीचे व ऊपर खण्डों में भी चन्द्रप्रभ स्वामी की प्राचीन मूर्तियाँ हैं ।[3]

शीतलनाथ - इनकी निम्न उल्लेखनीय प्रतिमा है :-

दुधई के मंदिरों में दक्षिणी समूह के बड़ी बारात और छोटी बारात के ध्वंसावशेषों में शीतलनाथ की एक प्रतिमा है जो नष्टप्राय अवस्था में है ।[4]

विमलनाथ - इनकी एक ही प्रतिमा प्राप्त है -

प्रतिमा सं0 647 [दुधई][5] कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित विमलनाथ की इस प्रतिमा का केवल अधोभाग ही सुरक्षित है, उसमें भी एक पैर नष्ट है । दोनों ओर कटिहस्त मुद्रा में एक एक चंवरधारी की आकृतियों का प्रदर्शन है पर दाहिनी ओर चंवरधारी का सिर एवं चंवर वाला भाग नष्ट हो चुका है । पादपीठ पर शूकर चिन्ह तथा आस पास सिंहों का प्रदर्शन है । दोनों ओर शासनदेव एवं शासनदेवी के रूप में क्रमशः षणमुख और वैरोटी [?] विराजमान हैं ।

1- चांदपुर-दुधई की चन्देलकालीन कला और संस्कृति : शोध प्रबंध: महेन्द्र कुमार वर्मा , पृ0 325 .
2- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 33 .
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ0 200.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर -दुधई का योगदान , ले0 महेन्द्र वर्मा , पृ0 70 .
5- रानी लक्ष्मीबाई, महल, झांसी संग्रहालय .

शान्तिनाथ - जनपद में इनकी निम्नांकित प्रतिमायें हैं -

[दे० चित्र सं० 47]

देवगढ़ सं० 12 के गर्भगृह में शान्तिनाथ की विशाल मूर्ति है। इसकी कुल ऊँचाई 12फी. 4इंच है। काल के कराल थपेड़ों से यह महत्वपूर्ण मूर्ति बहुत कुछ खण्डित हो गयी है परन्तु भक्तों ने उसकी यथा-संभव जुड़ाई करा दी है। इसे 16 वें तीर्थंकर शान्तिनाथ की मूर्ति मानकर इस मंदिर का नाम ही शान्तिनाथ मंदिर प्रचलित हो गया है, जब कि शान्तिनाथ का चिन्ह [हिरन] या यक्ष-यक्षी आदि कोई भी यहां दृष्टव्य नहीं होते।[1]

इस विशालकाय मूर्ति के दोनों ओर, प्रवेश द्वार के भीतर दोनों ओर तथा द्वार के बाहर ऊपरी भाग में दायें "अम्बिका" यक्षी की मूर्तियों और द्वार के नीचे बायें पार्श्व यक्ष की मूर्तियों के अंकन होने से यह संभावना अधिक है कि प्रस्तुत मूर्ति 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ की होगी। इसकी पुष्टि डा० भाग चन्द्र जैन और नीरज जैन ने की है।[2]

देवगढ़ मंदिर सं० 13 के मण्डप में विद्यमान 5 फी, 10इंच के शिलाफलक [बायें से दायें बीसवां] पर उत्कीर्ण शान्तिनाथ की 4फी. 7इंच [दे० चित्र सं० 56] ऊँची कायोत्सर्ग मूर्ति दर्शनीय है। इस मूर्ति की प्रथम विशेषता यह है कि उसके आसन में बायें सिंह और दायें हिरन का अंकन है जब कि अन्यत्र दोनों ओर सिंह का ही अंकन मिलता है। जटाओं की विशालता और विचित्रता इस मूर्ति की दूसरी विशेषता है। जटाओं को पीछे की ओर संवार कर उनकी पांच पांच लटें दोनों कंधों पर झुलायी गयी हैं, कुछ लटों की ऊपर की ओर उठी हुई चोटी बांधी गई है, और बहुत सी जटायें ऊपर दोनों ओर लटका दी गयी हैं जो इतनी लंबी है कि पिण्डलियों के भी नीचे तक आ पहुंची हैं।[3]

1- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 70-71.
   [ब] एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट : 1918 : दयाराम साहनी, पृ० 10.
2- [अ] देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 71.
   [ब] अनेकांत : वर्ष 17, किरन 4 : देवताओं का गढ़ देवगढ़, ले०नीरज जैन पृ० 168.
3- देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 75.

देवगढ़ मंदिर सं0 31 के प्रवेश द्वार के मध्य में तीर्थंकर शान्तिनाथ का अंकन है । उनके दोनों ओर देव-देवियों तथा नाग और नागी का अंकन है । [1]

बानपुर मंदिर सं0 4 [शान्तिनाथ जिनालय] में एक ही देशी प्रस्तर खण्ड से निर्मित तीर्थंकर शान्तिनाथ की 18फी. ऊंची विशाल कायोत्सर्गासन मूर्ति स्थापित है । यह सौम्य मुद्रा, अजानुबाहु औरआत्मोन्मुखा मूर्ति है । [2]

सेरोनजी में शान्तिनाथ के भोयरेनुमा मंदिर में 18फी, ऊंची मनोरम भव्य भगवान शान्तिनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति सुशोभित है । [3]

मदनपुर के शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मध्य में 10फी. ऊंची शान्तिनाथ की खण्डित प्रतिमा है । यह मूर्ति कायोत्सर्ग ध्यानस्थ मुद्रा में है । अष्टप्रातिहार्य भी अंकित हैं । [4]

मदनपुर के पंचमढ़ के मध्य के मढ़ में शान्तिनाथ की 7फी. ऊंची कायोत्सर्गासन प्रतिमा है । अष्ट प्रातिहार्य भी निर्मित हैं । [5]

मदनपुर में पंचमढ़ के दक्षिण की ओर अर्धभग्न मढ़ में शान्तिनाथ की 5फी. 6इंच ऊंची मूर्ति है । इसके हाथ टूटे हुए हैं । [6]

मदनपुर में मोदीमढ़ के मध्य के मढ़ में गर्भगृह में [मध्य में] 9 फी. ऊंची शान्तिनाथ की प्रतिमा है । [7]

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन , पृ0 29 .
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर ,ले0 कैलाश मड़बैया, पृ0 20 .
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी , ले0 भाग चन्द्र जैन राखेश, पृ0 38 .
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :कलातीर्थ मदनपुर,ले0विमलकुमार जैन सौरया, पृ0 80.
5- वही वही वही पृ0 80
6- वही वही वही पृ0 80
7- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग : संकलन-संपादन , बलभद्र जैन. पृ0 205 .

प्रतिमा सं0 165 §चाँदपुर§[1] ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित शान्ति- की इस प्र तिमा का ऊपरी भाग ,शीर्ष, दाहिनी भुजा, दोनों घुटने एवं चरण वाले भाग नष्ट हैं । दोनों ओर घुटनों के समीप बैठा हुआ एक एक गज प्रदर्शित है । पर दाहिनी ओर के गज का मुख वाला भाग नष्ट हो चुका है । कलापूर्ण कीर्तिमुखों से युक्त पादपीठ पर केन्द्र में मृग एवं आस पास दो सिंह अंकित हैं । दोनों ओर शासन देव एवं शासन देवी प्रदर्शित हैं।

प्रतिमा सं0 222 §चाँदपुर§ [2] – यह प्रतिमा भी कायोत्सर्ग मुद्रा में शिर विहीन है और पृष्ठ में कमल दलों से युक्त प्रभा मण्डल शोभायमान है । इसके दाहिनी ओर चटधारी और बांयी ओर अस्पष्ट लांछनयुक्त पुरुषाकृति है। यह प्रतिमा भी संभवतः चटधारी रही होगी । इसके दोनों ओर कीर्तिमुख पर स्थित प्रभामण्डल से युक्त ध्यानी मुद्रा में एक एक छोटी जिन प्रतिमा का अंकन है । शान्तिनाथ के दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक एक अन्य छोटी छोटी जिन प्रतिमायें अंकित हैं तथा दाहिनी ओर एक दण्डधारी प्रदर्शित है । बांयी ओर चँवरधारी की सुन्दर आकृति का अंकन है साथ ही में एक एक आराधक की दोनों ओर आकृतियां हैं । पादपीठ पर केन्द्र में हिरन एवं आस पास कलापूर्ण सिंह प्रदर्शित हैं । दाहिनी ओर यक्ष एवं बांयी ओ यक्षिणी का अंकन है ।

चाँदपुर में रेलवे लाइन के समीप ही उत्तर पूर्वी कोने पर शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के गर्भगृ ह का शिरदल ध्यानी तीर्थंकर शान्तिनाथ एवं नवग्रह की आकृतियों से अलंकृत है । इस मंदिर के मण्डप के एक ओर लगभग 12 फी. ऊँची शान्तिनाथ की विशालकाय कलात्मक मूर्ति है । इसमें शान्तिनाथ को कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखाया गया हैं । भद्रासन पर केन्द्र में दो हिरण एवं उनके आस पास सिंहों का प्रदर्शन है । एक ओर शासनदेव ,गरुड़ एवं दूसरी ओर शासनदेवी महामानसी §निर्वाणी§ उत्कीर्ण हैं । [3]

1– रानी लक्ष्मीबाई,महल ,झाँसी संग्रहालय .

2– वही वही वही .

3– चाँदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृत : शोध प्रबंध : महेन्द्र कुमार वर्मा पृ0 324 .

चाँदपुर के उपरोक्त शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के उत्तर पूर्व में शान्तिनाथ के द्वितीय मंदिर के गर्भगृह में लगभग 15 फी. ऊँची विशालकाय शान्तिनाथ की प्रतिमा है । यह प्रतिमा भी कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित है । इस प्रतिमा के सिंहासन पर केन्द्र में दो हिरन एवं आस पास सिंहों का प्रदर्शन है । उनके दोनों ओर एक एक ध्यानी मुद्रा में तल्लीन तीर्थंकर की अन्य प्रतिमायें हैं ।[1]

दुधई के आदिनाथ मंदिर के सम्मुख ही शान्तिनाथ के मंदिर के गर्भगृह के अन्दर लगभग 12 फी. ऊँची विशालकाय शान्तिनाथ की आकर्षक, भव्य तथा सजीव प्रतिमा है । यह प्रतिमा ध्यानी मुद्रा में है । इसके भुजाओं वाला भाग नष्ट हो चुका है ,पर पादपीठ पर केन्द्र में कीर्तिमुख तथा आस-पास एक एक हिरण और एक एक आराधक एवं एक एक विशालकाय शार्दूल की कलापूर्ण आकृतियों का अंकन है ।[2]

प्रतिमा सं० 220 {दुधई} [3]- कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित शान्तिनाथ की यह भव्य प्रतिमा भुजाविहीन है । पृष्ठ भाग में कमलदलों से युक्त प्रभामण्डल के अंकन से प्रतिमा की शोभा और अधिक बढ़ गयी है । इस प्रभामण्डल के आस पास पटधारी एवं माल्यधारी सुन्दर आकृतियां प्रदर्शित हैं । पैरों के समीप दोनों ओर अभंगी मुद्रा में प्रदर्शित एक एक चँवरधारी तथा एक एक आराधक का सुन्दर अंकन है । पादपीठ पर केन्द्र में हिरण अंकित है और आस पास कलापूर्ण सिंहों का प्रदर्शन है । बांयी ओरयक्षिणी एवं दायीं ओर यक्ष विराजे हैं ।

कुन्थुनाथ - इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं :-

चाँदपुर से लाकर रानी महल संग्रहालय ,झाँसी में संग्रहीत कुन्थुनाथ की मूर्ति दीर्घकाय है । इस मूर्ति की ऊँचाई 8 फी. है ।यह मूर्ति

1- चाँदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति: शोध प्रबंध: महेन्द्रकुमार वर्मा, पृ० 324.

2- वही वही पृ० 324.

3- रानी लक्ष्मी बाई महल ,झाँसी संग्रहालय .

दो भागों में टूटी हुयी है । कुन्तनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर खड़े हैं । पैरों के दोनों ओर चँवरधारी अंकित है । लटकते हुए पर्दे पर तीर्थंकर का चिन्ह अर्ज अंकित है । सिंहासन के नीचे विपरीत दिशाओं की ओर देखते हुए दो सिंह विराजमान हैं । निकट ही उपासकगण एवं यक्षों का चित्रण बहुत ही सजीव ढंग से किया गया है ।[1]

मदनपुर में शान्तिनाथ मंदिर की मुख्य प्रतिमा के दायें भगवान कुन्थनाथ की 7फी. ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति है ।[2]

मदनपुर के पंचमढ़ के दक्षिण में अर्धभग्न मढ़ के मध्य में कुन्थनाथ की 10 फी. ऊंची कायोत्सर्ग प्रतिमा है ।[3]

मदनपुर में मोदीमढ़ के अन्दर मुख्य मूर्ति के दायें कुन्थनाथ की 6 फी. ऊंची प्रतिमा है ।[4]

बानपुर मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ के मंदिर) में मुख्य मूर्ति के बांयी ओर कुन्थनाथ की 7 फी. ऊंची कायोत्सर्ग प्रतिमा स्थित है । इस प्रतिमा का केश विन्यास कंधों और बाहुओं के नीचे तक बिखरा हुआ है ।[5]

सेरोनजी में शान्तिनाथ के बोयरेनुमा मंदिर में शान्तिनाथ की प्रतिमा के बगल में में कुन्थनाथ की कायोत्सर्गासन प्रतिमा अंकित है ।[6]

अरनाथ - इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं :-

मदनपुर - शान्तिनाथ मंदिर के अन्दर मुख्य मूर्ति के बाँयें 7फी. ऊंची अरनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा है ।[7]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : झांसी संग्रहालय में जैन मूर्तियां, लालमोहन शाह, पृ0 49.
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : कलातीर्थ मदनपुर, ले0 विमलकुमार जैन सौरया, पृ0 80.
3- वही वही पृ0 80.
4- वही वही पृ0 81.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: अतिशय क्षेत्र बानपुर,ले0कैलाश मड़बैया, पृ020-21
6- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी, ले0 ताराचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.
7- बुन्देलखण्डतीर्थ क्षेत्र विशेषांक:कलातीर्थ मदनपुर, ले0 विमल कुमार जैन सौरया, पृ080.

मदनपुर में पञ्चमढ़ के दक्षिण की ओर अर्धभग्न मढ़ के अन्दर बांयी ओर अरनाथ की 7 फी. ऊँची कायोत्सर्ग प्रतिमा है ।[1]

मदनपुर में मोदीमढ़ के गर्भगृह में मुख्य मूर्ति के बांये अरनाथ की 6 फी. ऊँची प्रतिमा है ।[2]

बानपुर के मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ जिनालय) में मुख्य प्रतिमा के दांयी ओर तीर्थंकर अरनाथ की 7 फी. ऊँची मूर्ति स्थित है । यह कायोत्सर्ग मुद्रा में है ।[3]

सेरोनजी के शान्तिनाथ मंदिर में मुख्य प्रतिमा के बगल में अरनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति स्थित है ।[4]

मल्लिनाथ - इनकी निम्न उल्लेखनीय मूर्ति है :-

पावागिरि के चौथे मंदिर के गर्भगृह में 2फी. ऊँची वेदी पर बांयी ओर मल्लिनाथ की 2 फी. ऊँची पद्मासन प्रतिमा है । इस मूर्ति के केशगुच्छ, लम्बे कर्ण और मुख पर व्याप्त सौम्यता अवर्णनीय है ।[5]

मुनि सुव्रतनाथ = इनकी निम्नांकित उल्लेखनीय प्रतिमा है :-

दुबई से लाकर रानी महल संग्रहालय, झांसी में मुनि सुव्रतनाथ की एक श्रेष्ठ प्रतिमा संग्रहीत है, जिसमें तीर्थंकर कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर अकेले खड़े हैं । दांयी तथा बांयी ओर चँवर लिये एक एक यक्ष खड़ा है । सिर के पीछे प्रभामण्डल, ऊपर त्रिछत्रावली तथा उड़ते हुए गन्धर्व का अंकन बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है । पैरों के नीचे झूलते पर्दे पर तीर्थंकर का चिन्ह कूर्म अंकित है । नीचे पद्मपीठ पर यक्ष व यक्षी तथा दो सिंह विपरीत दिशाओं की

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक: कलातीर्थ मदनपुर, ले0 विमलकुमार जैन सोरया, पृ0 80.
2- वही वही वही पृ0 81.
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : अतिशय जैन बानपुर, ले0 कैलाश मड़वैया, पृ0 20-21
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 53.

और देखते हुए दर्शाये गये हैं ।[1]

नमिनाथ - इनकी एक ही प्रतिमा जनपद में प्राप्त है ।

देवगढ़ मंदिर सं० 28 में नमिनाथ की 8 फी. 3इंच ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति है । यह इस मंदिर के मूल नायक हैं । इनके पैरों से कमर तक की ऊंचाई 5फी. 1इंच, पैरों से कन्धों तक की ऊंचाई 6फी. 10इंच तथा एक कन्धे से दूसरे कन्धे तक की चौड़ाई 2फी. 10इंच है । आसन में कमल का चिन्ह स्पष्ट है । इसके परिकर और अलंकरण का संक्षेप, अष्ट प्रतिहारियों § भामण्डल के अतिरिक्त§ की अनुपस्थिति और कलात्मकता आदि के साथ हाथों और पैरों की सरलता इसे आठवीं शती की कृति सिद्ध करते हैं ।[2]

अरिष्टनेमि या नेमिनाथ - इनकी निम्न प्रतिमायें प्राप्त हैं :-

देवगढ़ मंदिर सं० 12 के महामण्डप में दायें से बांयी ओर तीसरी प्रतिमा नेमिनाथ की है । इसके ऊपर पद्मावलि है । इनका लक्षण पादपीठ पर अंकित है ।[3]

देवगढ़ मंदिर सं० 13 के गर्भगृह में तीसरी वेदी §बांये से दांये§ पर स्थित 5फी. 3इंच × 1फी. 11इंच के शिलाफलक पर नेमिनाथ की मूर्ति अंकित है । इनके मस्तक पर बीसों लटों को एक बड़े ही संयोजित और पेचीदा ढंग से गूंथा गया है । दो-दो लटें कन्धों पर और बीसों लटें पीछे दोनों ओर बिखेर दी हैं ।[4]

देवगढ़ मंदिर सं० 15 के गर्भगृह में 5फी. 1इंच × 2फी. 11इंच के शिलाफलक पर 2फी. 10इंच ऊंची और 1फी. 7इंच चौड़ी नेमिनाथ की [दे०चित्र क्र.56] पद्मासन मूर्ति है । इस मूर्ति की तक्षण परिकर और इन्द्र आदि बोलते से प्रतीत होते हैं । इसके प्रभामण्डल के चारों ओर अग्निशिखा का अंकन है । यह प्रतिमा गुप्तकाल की कला परंपराओं पर आश्रित है ।[5]

1- सिद्धक्षेत्र तीर्थ जैन चित्रावलि : झांसी संग्रहालय में जैन मूर्तियां, डा० नन्दमोहन बाजल पृ० 50.
2- देवगढ़ की जैन कला, डा० भागचन्द्र जैन, पृ० 74.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन पृ० 191.
4- देवगढ़ की जैन कला, डा० भागचन्द्र जैन, पृ० 75-76.
5- वही वही पृ० 72.

देवगढ़ मंदिर सं० 27 की प्रवेश द्वार के सिरदल पर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं । [1]

देवगढ़ मंदिर सं० 31 के गर्भगृह में वेदिका पर शंख चिन्ह से अंकित शिलापट्ट पर तीर्थंकर नेमिनाथ की विशालाकार पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है । [2]

रानी महल संग्रहालय झाँसी में दुधई और चाँदपुर से लाकर संग्रहीत मूर्तियों में नेमिनाथ की अनेक खण्डित मूर्तियाँ हैं । एक मूर्ति में नेमिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर दिखाये गये हैं । पैरों के दोनों ओर एक एक यक्ष खड़ा है तथा नीचे लटकते पर्दे पर शंख चिन्ह अंकित है । वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है । [3]

पावागिरि के चौथे मंदिर के गर्भगृह में 2फी. ऊँची वेदी पर बाँयी ओर मध्य में नेमिनाथ की 3फी. ऊँची प्रतिमा है ।[4]

पार्श्वनाथ - जनपद में इनकी निम्नलिखित प्रतिमायें प्राप्त हैं :-

[दे०चित्र सं. 51]

देवगढ़ मंदिर सं० 6 में पार्श्वनाथ की मूर्ति है । जिस पर सर्प का आलेखन चिन्ह , आसन , शैय्या या मस्तकाच्छादन के रूप में न होकर पादपीठ के ऊपर मूर्ति के पैरों के दोनों ओर दो स्वतंत्र सर्पों के रूप में हुआ है । महासर्प अपनी विकराल कुण्डली लगाये हुए आलिखित है ।[5]

देवगढ़ मंदिर सं० 25 के गर्भगृह में पाँचवें शिलाफलक पर पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति है [दे०चित्र सं.54] । इसके सर्प की कुण्डली अन्य मूर्तियों की भाँति पीछे न होकर आसन के रूप में नीचे है । मूर्ति के दायें सर्प की पूँछ दिखाती है । फिर 6 कुण्डलियाँ लगा कर वह मूर्ति के पीछे से ऊपर पहुँच

1- देवगढ़ की जैन कला , ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 27 .
2- वही वही पृ० 29 .
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : झाँसी संग्रहालय में जैन मूर्तियाँ , ले० लालमोहन बल्ल पृ० 50.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें. ले० कमलेश कुमार , पृ० 53.
5- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन पृ० 76.

जाता है और अपने सात फणों की आवलि फैला कर तीर्थंकर को छाया प्रदान करता है ।[1]

देवगढ़ मंदिर सं0 27 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर नेमिनाथ की मूर्ति के बगल में दायें एक पार्श्वनाथ की मूर्ति है । [2]

देवगढ़ मंदिर सं0 28 के प्रांगणद्वार में निर्मित देवकुलिका में दायें सप्तफणावलि सहित पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है । [3]

देवगढ़ लघु मंदिर सं0 4 के गर्भगृह में वेदी पर कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थित है ।[4]

देवगढ़ के श्री स्तम्भ सं0 5 पर पूर्व में सप्तफणावलि सहित पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है । [5]

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में वेदी पर सामने की ओर पार्श्वनाथ की 3फी. ऊँची पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति है । [6]

ललितपुर के क्षेत्रपाल मंदिर में मंदिर सं0 7 में लगभग 7फी. ऊँची भगवान पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति चट्टान में उत्कीर्ण है जिसके चरण से लेकर मस्तक के ऊपर सात फणों से युक्त सर्प चिन्ह बना हुआ है । इसकी पालिश चमकदार है तथा प्रतिमा अत्यन्त मनोज्ञ एवं आकर्षक है।[7] यहीं प्राचीन भोयरे में चट्टान में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की 6फी. ऊँची एक कायोत्सर्ग मूर्ति है । [8]

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 बालचन्द्र जैन , पृ0 76 .
2- वही वही पृ0 27 .
3- वही वही पृ0 61 .
4- वही वही पृ0 31 .
5- वही वही पृ0 35 .
6- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक :पावागिरि की जैन प्रतिमायें , ले0 कमलेश कुमार ,पृ0 53 .
7- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन,बलभद्र जैन पृ0 200 .
8- वही वही वही पृ0 200 .

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अन्दर मंदिर सं0 9 में जिन प्रतिमा के पास में ही एक वेदिका में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान है ।[1]

बानपुर जैन अतिशय क्षेत्र में एक शिलाखण्ड के मध्य में भगवान पार्श्वनाथ की फणावलियुक्त पद्मासन प्रतिमा है ।[2]

प्रतिमा सं0 244 [चाँदपुर] [3] - 4फी. 8इंच ऊँची और 1फी. 9इंच चौड़ी पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा कला की दृष्टि से बड़ी ही अनूठी एवं सजीव है । केन्द्र में कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ शोभायमान हैं जिनके मुखमण्डल पर फैली हुयी स्मित -मुस्कराहट बड़ी ही हृदयाकर्षक है। सर्प के फण भी उनके प्रभामण्डल के रूप में शोभायमान हैं । उनके सम्पूर्ण शरीर के दोनों ओर सर्प की सजीव कुण्डलाकृति बनी हुयी है । इस मुख्य प्रतिमा के दाहिनी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 11 तीर्थंकरों की छोटी प्रतिमायें तथा बांयी ओर 12 तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा में छोटी छोटी प्रतिमायें अंकित हैं । केन्द्र में त्रिछत्र है, जिस पर ध्वस्त छोटी मूर्ति है । दोनों ओर एक एक माला-धारी के अलावा कुछ किन्नर आदि की ध्वस्त मूर्तियाँ हैं । मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर अभंगी मुद्रा में एक एक चँवरधारी प्रदर्शित है । पद्मासन में केन्द्र में दो सिंह निर्मित हैं, बांयी ओर पद्मावती एवं दाहिनी ओर पार्श्व विराज-मान हैं ।[3]

प्रतिमा सं0 232 [चाँदपुर] [4] - सिर एवं भुजाओं से विहीन यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है । पार्श्वनाथ के दोनों ओर एक एक चँवर-धारी एवं एक एक आराधक प्रदर्शित हैं । चँवरधारी पुरुषों का एक एक हाथ कटिहस्त मुद्रा में है । बांयी ओर के चँवरधारी पुरुष का सिर एवं आराधक का सिर ध्वस्त है । बांयी ओर का आराधक भी ध्यानावस्था में है । चरणों के नीचे दो सिंह हैं । दाहिनी ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासनदेवी शोभायमान हैं।

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200.
2- शिलाखण्ड तीर्थ क्षेत्र विवरणिका : अतिशय क्षेत्र बानपुर, नि0 [illegible], पृ0 21.
3- रानी लक्ष्मीबाई महल, झाँसी संग्रहालय .
4- वही वही .

प्रतिमा सं0 158 {चांदपुर}[1] – इस प्रतिमा में पार्श्वनाथ का शीर्ष भाग, सप्त फण एवं किन्नरादि वाला भाग ध्वस्त हो चुका है। भुजाओं के दोनों ओर सर्पकुण्डलाकृति शेष है। पैरों के दोनों ओरकटिहस्त एवं अभंगी मुद्रा में चंवरधारी प्रदर्शित हैं। बांयी ओर वाले चंवरधारी के मुख वाले भाग की एवं चंवर का कुछ भाग भी टूटा हुआ है। वहीं पर दोनों ओर एक एक आराधक के ध्वस्त आकृति के चिन्ह भी वर्तमान हैं। मुख्य प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पादपीठ पर दो सिंहों के अलावा दाहिनी ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासनदेवी की आकृतियाँ प्रदर्शित हैं।

प्रतिमा सं0 215{चांदपुर}[2] – कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित फण-युक्त एवं शिरविहीन पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ है। ऊपर केन्द्र में अंकित त्रिछत्र है, जिसके आस पास किन्नर एवं गजारूढ़ों की सुन्दर आकृतियाँ हैं। फण के आसपास दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीन-तीन छोटी जिन प्रतिमायें अंकित हैं। पार्श्वनाथ के दोनों ओर गज पर स्थित एक एक शिरविहीन एवं अभंगी मुद्रा में प्रदर्शित चंवरधारी की सुन्दर व कलात्मक आकृति है। भद्रासन पर अंकित दो सिंहों के अलावा दाहिनी ओर यक्ष एवं बांयी ओर फणयुक्त यक्षिणी की आकृतियाँ शोभायमान हैं।

प्रतिमा सं0 271 {चांदपुर}[3] – चांदपुर से प्राप्त कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं में यह प्रतिमा बड़ी आकर्षक एवं हृदयग्राही है। सप्त फणों से युक्त, स्मित मुस्कराहट से परिपूर्ण इस प्रतिमा की हस्तमुद्रायें बड़ी ही कलापूर्ण हैं। ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र है, जिसके दोनों ओर एक एक गज तथा एक एक मालाधारी एवं एक एक किन्नरी आदि की प्रतिमायें हैं। पैरों के दोनों ओर एक एक चंवरधारी है जिसके अधोभाग नष्ट हो चुके हैं। बांयी ओर के चंवरधारी की प्रतिमा में चंवर का भाग सुरक्षित है पर शेष भाग नष्टावस्था में है। पार्श्वनाथ के चरण एवं पादपीठ वाला भाग पूर्णरूपेण नष्ट हो चुका है।

1- रानी लक्ष्मी बाई महल, झांसी संग्रहालय.
2- वही वही .
3- वही वही .

प्रतिमा सं0 268 §चाँदपुर§ [1] – पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा भी चाँदपुर की अन्य प्रतिमाओं की भाँति श्रेष्ठता लिये हुये है, यद्यपि इसका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है । सप्त फण युक्त पार्श्वनाथ के ऊपरी भाग में माल्यधारियों एवं त्रिछत्रों वाला भाग भी पूर्णरूपेण नष्ट हो चुका है । दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक एक जिन प्रतिमा एवं ध्यानी मुद्रा में चार-चार तीर्थंकरों की छोटी छोटी प्रतिमायें प्रमुख पार्श्वनाथ की प्रतिमा की शोभा बढ़ाने में अधिक सक्षम हैं । दोनों ओर एक एक चँवरधारी प्रदर्शित है और उन्हीं के समीप दाँयी ओर अस्पष्ट दो आराधकों की आकृतियाँ हैं ,लेकिन बाँयी ओर एक ही आराधक प्रदर्शित है । भद्रासन पर केन्द्र में दो सिंहों के अलावा दोनों ओर एक एक आराधक की आकृतियों के चिन्ह वर्तमान हैं । दाँयी ओर शासन देव एवं बाँयी ओर शासन देवी सुशोभित हैं ।

प्रतिमा सं0 161 §चाँदपुर§ [2] – यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित है । इसमें दाहिनी ओर के चँवरधारी का मुख भी बाँयी ओर के चँवरधारी के मुख की भाँति नष्ट हो चुका है । बाँयी ओर वाली चँवरधारी की मूर्ति के ऊपर त्रिमूर्ति का आकार दिखाता है , यह संभवतः ब्रह्मा प्रतीत होते हैं ।

प्रतिमा सं0 265 §चाँदपुर§ [3] – कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित यह पार्श्वनाथ की प्रतिमा काफी ध्वंसावस्था में है । यह विशाल प्रतिमा दो भागों में है पर दोनों को जोड़ कर उसको एक रूप में ला दिया गया है ।इस प्रतिमा का ऊपरी भाग एवं शीर्ष भाग नष्ट हो चुके हैं पर दोनों ओर सर्पकुण्डली के चिन्ह अवश्य ही दिखायी पड़ते हैं । दोनों ओ कटिहस्त मुद्रा में एक एक चँवरधारी प्रदर्शित है , पर उनका भी अधिकांशतः भाग नष्ट हो चुका है । उन्हीं के समीप दाँयी ओर एक आराधक एवं बाँयी ओर एक आराधिका प्रदर्शित है , जो कि काफी नष्ट हो चुके हैं । भद्रासन पर दो सिंह प्रदर्शित हैं ।नीचे दाहिनी ओर धरणेन्द्र एवं बाँयी ओर पद्मावती शोभायमान हैं ।

1- रानी लक्ष्मी बाई महल,झाँसी संग्रहालय .
2- वही वही .
3- वही वही .

प्रतिमा सं० 272 {चांदपुर} [1] - चैप तीर्थंकर के रूप में पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा भी जिन प्रतिमाओं में श्रेष्ठ है । सर्प के फण का ऊपरी भाग, तीर्थंकर का मुख वाला भाग एवं उनकी बांयी भुजा के साथ साथ बांया चरण नष्ट हो चुका है । मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित तीर्थंकर की एक एक प्रतिमा के अलावा कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रभामण्डल से युक्त एक एक अन्य तीर्थंकर की प्रतिमायें इस मुख्य प्रतिमा के आकर्षण को और अधिक बढ़ाने में सक्षम हैं । दोनों तीर्थंकरों के बीच में एक एक ध्वस्त आकृति दोनों ओर अंकित है । इनमें किन्हीं के कुछ भाग नष्ट हो चुके हैं । पैरों के दोनों ओर कटिहस्त मुद्रा में दो प्रतिमायें हैं,जो संभवतः परिचारक अथवा चैंवरधारी रहे होंगे । इन्हीं के समीप दाहिनी ओर एक आराधक एवं बांयी ओर एक आराधिका अंजलि मुद्रा में स्थित हैं । बांयी ओर की आराधिका का मुख वाला भाग नष्ट हो चुका है । भद्रासनपर दो सिंह प्रदर्शित हैं । उसके दाहिनी ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासनदेवी सुशोभित हैं ।

प्रतिमा सं० 270 {चांदपुर} [2] - पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा भी कायोत्सर्ग मुद्रा में है,पर शीर्ष,चरण एवं सर्प फण वाला भाग नष्टावस्था में है । सर्प कुण्डली सजीव व कलापूर्ण है । दोनों ओर एक एक चैंवरधारी प्रदर्शित हैं पर उनका अधोभाग नष्ट हो चुका है ।

प्रतिमा सं० 166 {चांदपुर} [3] - पार्श्वनाथ की इस प्रतिमा में अधोभाग सुरक्षित है । सर्पकुण्डली सुन्दर एवं सजीव है । दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक एक तीर्थंकर के अलावा एक एक चैंवरधारी प्रदर्शित हैं,पर दाहिनी ओर के आराधक का अधिकांशतः भाग व बांयी ओर के आराधक का शीर्ष भाग ध्वस्त हो चुका है । पादपीठ पर दो सिंह उत्कीर्ण हैं तथा दाहिनी ओर शासनदेव व बांयी ओर शासनदेवी विराजमान हैं ।

प्रतिमा सं० 617 {चांदपुर} [4] - पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा नष्टप्राय अवस्था में है , केवल फणयुक्त शीर्ष शेष है । अर केन्द्र में निहत है।

1- रानी लक्ष्मी बाई ,महल,झांसी संग्रहालय .
2- वही वही .
3- वही वही .
4- वही वही .

केन्द्र की यह ध्वस्त आकृति कटिहस्त मुद्रा में है तथा दोनों ओर एक एक गज के अलावा माल्यधारी एवं किन्नरियों आदि की सुन्दर आकृतियां प्रदर्शित है ।

प्रतिमा सं० 168 (चांदपुर)[1] - पार्श्वनाथ की इस प्रतिमा में शीर्ष , फण एवं घुटनों से नीचे वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । दोनों ओर एक एक ध्यानी तीर्थंकर , कायोत्सर्ग मुद्रा में तल्लीन एक एक अन्य तीर्थंकर की छोटी आकृतियों के अलावा एक एक पुरुषाकृति एवं एक एक चंवरधारी की आकृतियां प्रदर्शित हैं । दाहिनी ओर के चंवरधारी के शरीर का ऊर्ध्व भाग तथा बांयी ओर के चंवरधारी की जंघा का ऊपर वाला भाग ही सुरक्षित है। बांयी ओर के तीर्थंकर व पुरुषाकृति तथा ध्यानी तीर्थंकर के शीर्ष भाग नष्टावस्था में हैं ।

प्रतिमा सं० 274 (चतुर्विंशति प्रतिमा) (दुधई) [2] - इस प्रतिमा में पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित हैं । इस प्रतिमा में मुख वाला भाग नष्ट हो चुका है । बांयी ओर 12 तीर्थंकरों की छोटी छोटी प्रतिमायें अंकित हैं । दांयी ओर केवल एक तीर्थंकर वर्तमान हैं लेकिन बांयी ओर अंकन वाला अधिकांशतः भाग टूट गया है । अतः इस ध्वस्त भाग में तीर्थंकरों की दस मूर्तियों का होना स्वाभाविक जान पड़ता है । केन्द्र में छत्र तथा उसके साथ माल्यधारियों एवं किन्नरियों आदि की सुन्दर आकृतियां हैं , पर इनमें से कुछ भाग नष्ट हो चुके हैं । पार्श्वनाथ के दोनों ओर एक एक चंवरधारी प्रदर्शित हैं जो कि पूर्णरूपेण अलंकरण-युक्त हैं । इन चंवरधारी की प्रतिमाओं में चंवर वाला भाग टूटा हुआ है तथा दांयी ओर के चंवरधारी की दाहिनी भुजा तथा बांयी ओर के चंवरधारी की बांयी भुजा नष्ट हो चुकी है । इन्हीं चंवरधारियों के समीप आराधक एवं आराधिकायें बैठी हुयी हैं , पर उनके अधिकांशतः भाग नष्ट हो चुके हैं । चरणों के नीचे वाला भाग भी नष्ट हो चुका है ।

1- रानी लक्ष्मी बाई महल , झांसी संग्रहालय .
2- वही वही .

प्रतिमा सं0 615 {दुधई} [1] – पार्श्वनाथ की इस प्रतिमा में केवल फण युक्त शीर्ष शेष है । ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र है । केन्द्र की एक ध्यानस्थ आकृति कायोत्सर्ग मुद्रा में है तथा दोनों ओर एक एक गज के अलावा माल्य-धारी एवं किन्नरियों आदि की सुन्दर आकृतियां प्रदर्शित हैं । फण के दाहिनी ओर एक युगल नग्नाकृति व बांयी ओर दो युगल नग्नाकृतियां हैं ।

मंदिर सं0 246 {दुधई} [2] – ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित पार्श्व-नाथ की इस प्रतिमा में घुटनों एवं हाथों के अग्र भाग नष्ट हो चुके हैं । केन्द्र में त्रिछत्र के अलावा माल्यधारियों की अस्पष्ट आकृतियों के साथ साथ अंकुश गज की सुन्दर आकृतियां प्रदर्शित हैं । बांयी ओर गज के ऊपर ध्यानी मुद्रा में छोटी छोटी जिन प्रतिमायें प्रदर्शित हैं । गज के होने से यह अजितनाथ की प्रतिमा प्रतीत होती है । पार्श्वनाथ के दोनों ओर त्रिभंगी मुद्रा में एक एक पुरुष अंकित है , जिसके अधोभाग एवं भुजाओं वाले भाग नष्ट हो चुके हैं । बांयी ओर इस पुरुषाकृति के नीचे एक गज अंकित है । इससे यह प्रतीत होता है कि यह पुरुषाकृतियां गज के ऊपर स्थित रही होंगी । भद्रासन पर दो सिंह प्रदर्शित हैं । बांयी ओर बालनदेव विराजे हैं ।

दुधई में आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के अन्दर आदिनाथ की मुख्य मूर्ति के बांयी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की विशालकाय , भव्य एवं आकर्षक मूर्ति है । इस प्रतिमा की शोभा त्रिछत्र , माल्यधारियों , गजों एवं अन्य आकृतियों से और भी अधिक बढ़ जाती है । [3]

दुधई के इसी आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह में स्थित आदिनाथ की मूर्ति के दाहिनी ओर ध्यानी मुद्रा में पार्श्वनाथ की आकर्षक एवं भव्य मूर्ति है । पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा त्रिछत्र , चंवरधारियों , सिंह-व्याल, कुबेर

1– रानी लक्ष्मीबाई महल, झांसी संग्रहालय .

2– वही वही .

3– चांदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति {शोधप्रबंध} : महेन्द्र कुमार वर्मा पृ0 322 .

आदि की आकृतियों के अंकन से और भी अधिक दर्शनीय हो गयी है ।[1]

दुधई के शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह में शान्तिनाथ की प्रतिमा के दोनों ओर लगभग 8-8 फी. ऊंचाई में विशालकाय पार्श्वनाथ की प्रतिमायें है । ये प्रतिमायें चंवरधारियों , कटिहस्त मुद्रा से युक्त पुरुष-आकृतियों , मिथुन, माल्यधारियों , किन्नरों , गजादि एवं सर्पफणयुक्त सर्प के अंकरण से और भी अधिक आकर्षित हो गयी हैं । [2]

वर्धमान महावीर - जनपद में इनकी निम्न प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं:-

सेरोनजी में एक ऊँचे टीले के {जोकि एक विशाल मंदिर का खण्डहर है } के नालीदार विशाल वेदी पर भगवान महावीर की 9फी. ऊंची शिरविहीन पद्मासन प्रतिमा है जिसे लोग सिठादेव मान कर पूजते हैं ।[3]

सेरोनजी के शान्तिनाथ मंदिर के बाहर धर्मशाला के एक कमरे में एक चौबीसी है । यह 6 फी. ऊंची है । इसी पर मूल नायक महावीर की मूर्ति है । [4]

दुधई में महावीर की खण्डित अवस्था में एक मूर्ति प्राप्त है जिसमें तीर्थंकर महावीर पालथी मार कर सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हुए दिखाये गये हैं । इनके वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है । दांयी तथा बांयी ओर चंवर लिए एक एक यक्ष खड़ा है । पैरों के नीचे तीर्थंकर का चिन्ह सिंह अंकित है तथा दो सिंह विपरीत दिशाओं की तरफ देखते हुए विराजमान हैं । सिर के पीछे अंडाकृत प्रभामण्डल है और इसके दोनों ओर माला लिये तीन गन्धर्व हैं । [5]

1- चांदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति : शोध प्रबन्ध : महेन्द्रकुमार वर्मा , पृ0 322 .
2- वही वही पृ0 322 .
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश , पृ0 39 .
4- भारत के दिगंबर जैन तीर्थ प्रथम भाग: बलभद्र-जैन, कामता जैन, पृ0 195.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : झांसी संग्रहालय में जैन मूर्तियां , ले0 लाल मोहन बहल , पृ0 50 .

मदनपुर में पञ्चमठ के मध्य के मंदिर के गर्भगृह में मध्य मूर्ति के दोनों तरफ सात-सात फी. ऊँची भगवान महावीर की प्रतिमायें हैं। इनके चरणों के समीप 2,1/2 – 2,1/2 फी. के 6 इन्द्र और चँवरवाहक हैं। मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं।[1]

जनपद के तीर्थंकर मूर्तियों में वैविध्य दर्शनीय है। यहाँ द्वि-मूर्तिकायें, त्रिमूर्तिकायें, सर्वतोभद्रिकायें, चौबीसी, सहस्त्रकूट प्रतिमायें उपलब्ध हैं।

द्विमूर्तिकायें – कई स्थानों पर एक ही शिलापट पर दो तीर्थंकर मूर्तियों का निर्माण हुआ है। देवगढ़ में ऐसी द्विमूर्तिकायें मंदिर सं० 1, 2, 13, 17, 26, जैन चहारदीवारी, साहू जैन संग्रहालय तथा मंदिर सं० 12 के अंगशिखर में जड़ी हुयी हैं।[2]

त्रिमूर्तिकायें – इनमें एक ही शिलापट्ट पर तीन तीर्थंकर मूर्तियाँ होती हैं। देवगढ़[3] में मंदिर सं० 1, 2, 12 का महामण्डप, 28 का अंग-शिखर एवं जैन चहारदीवारी में; चाँदपुर[4] में शान्तिनाथ के द्वितीय मंदिर में, दुधई[5] में आदिनाथ के मंदिर और शान्तिनाथ के मंदिर में, पावागिरि[6] के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में, बानपुर[7] में मंदिर सं० 1 और 4 में, तथा मदनपुर[8] में शान्तिनाथ मंदिर, पञ्चमठ, पञ्चमठ के दक्षिण में अर्धभग्नावशेष मठ एवं मोदीमठ में त्रिमूर्तिकायें हैं।

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : कलातीर्थ मदनपुर, ले० विमलकुमार जैन सोरया, पृ० 80.
2- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 77.
3- वही वही पृ० 77.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा, पृ० 68-69.
5- वही वही पृ० 69.
6- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले० कमलेश कुमार, पृ० 52-53.
7- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले० कैलाश मड़बैया, पृ० 20-21.
8- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: कलातीर्थ मदनपुर, ले० विमल कुमार जैन, सोरया, पृ० 80-81

सर्वतोभद्रिकायें - इसके उदाहरण देवगढ़[1] में जैन चहारदीवारी तथा स्तम्भों और खण्डित तीर्थों पर प्राप्त होते हैं।

चौबीसी - इसके उदाहरण देवगढ़[2] में मंदिर सं0 4, 12, 25, 26, 29, एवं जैन चहारदीवारी और जैन धर्मशाला, साहू जैन संग्रहालय में, चांदपुर[3] में मंदिर के परकोटे में, सेरोनजी[4] के मंदिर सं0 2 में, और दुधई[5] से लाकर रानी लक्ष्मीबाई महल, झाँसी संग्रहालय में संग्रहीत प्रतिमा सं0 157, 244 और 247 में प्राप्त होते हैं।

सहस्त्रकूट - इसके उदाहरण देवगढ़[6] के मंदिर सं0 5 सहस्त्रकूट चैत्यालय में, बानपुर[7] में मंदिर सं0 5 सहस्त्रकूट चैत्यालय में और सेरोनजी[8] के शान्तिनाथ मंदिर के प्रवेश द्वार के दोनों ओर एक ही पत्थर पर सहस्त्रकूट चैत्यालय के दृश्य, देखने को मिलते हैं।

जटाओं के विविध रूप भी तीर्थंकर मूर्तियों में देखने को मिलते हैं। कहीं पाच लटें कन्धों पर लहरा रही हैं तो कहीं कन्धे पर आती हुयी दो लटें लटकते लटकते धीरे-धीरे लटों में बदल गयी हैं। कहीं सिर पर उठी हुयी लटों की चोटी बंधी दिखायी पड़ती है तो कहीं ये लटें पैरों तक पहुंच रही हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ आकर कला की धारा सारे विधि-विधानों और बन्धनों को तोड़ कर उन्मुक्त भाव से प्रवाहित हो उठी है। फणावलि वाली प्रतिमायें प्रायः पार्श्वनाथ की होती हैं किन्तु कुछ ऐसी फण वाली प्रतिमायें भी हैं, जो पार्श्व नाथ के अतिरिक्त अन्य तीर्थंकरों की भी हैं। मंदिर सं0 12 के महामण्डप में ﴾दायें से बायीं ओर तीसरी﴿ नेमिनाथ प्रतिमा, जैन चहारदीवारी के प्रवेशद्वार

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 77.
2- वही वही पृ0 77.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 201.
4- वही वही वही पृ0 196.
5- रानी लक्ष्मी बाई महल, झाँसी संग्रहालय.
6- देवगढ़ की जैन कला ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 77.
7- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बैया पृ0 21.
8- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : सेरोनजी ले0 लाल चन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.

के दायीं ओर बाहर और दूसरे स्थान पर सप्त सुमतिनाथ प्रतिमा के ऊपर फणावलि है, जब कि इन तीर्थंकरों का लांछन पादपीठ पर स्पष्ट अंकित है। पंचफणावलि वाली सुपार्श्वनाथ और सप्तफणावलि युक्त पार्श्वनाथ की अनेक मूर्तियां यहां पर हैं। सर्पकुण्डली के आसन पर बैठी पार्श्वनाथ की प्रतिमायें कई हैं। सप्तकुण्डली आसन बनाती हुयी और पीठ के पीछे होती हुयी ऊपर गर्दन तक गयी है। सिर पर फणावलि का छत्र तना हुआ है।[1]

देव-देवियों की प्रतिमायें - जैन देव शास्त्र में मौलिक और सर्वोपरि पूज्यता पंच परमेष्ठियों[2] को ही प्राप्त है। प्रारंभ में तीर्थंकरों {अरहन्तपरमेष्ठी} की ही मूर्तियां बनती थीं, बाद में हिन्दू देवताओं और कदाचित् बोधिसत्वों की मूर्तियों के अनुकरण या प्रतिस्पर्द्धा के कारण जैन देव एवं देवियों की भी मूर्तियां बनने लगीं। शास्त्रीय दृष्टि से चूंकि मोक्ष प्राप्ति मानव जीवन से ही संभव है, देव जन्म से नहीं।[3]अतः मानव को देवों से अधिक महत्व मिलता है। पंचपरमेष्ठी देव नहीं मानव ही होते हैं। अतः देव-देवियों की मूर्तियां बनने तो अवश्य लगीं परन्तु तीर्थंकरों के समान न तो उनकी पूजा ही होती थी और न मंदिर में उन्हें मुख्य स्थान प्राप्त होता था। उन्हें तीर्थंकरों के पंचधारी, आराधक एवं सेवक आदि के रूप में स्थान दिया गया तथा मंदिरों के प्रवेश द्वारों आदि विभिन्न स्थानों पर उन्हें अंकित किया जाने लगा। भट्टारकों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुयी आडम्बरप्रियता और भौतिकता के प्रति आकर्षण के फलस्वरूप देव-देवियों में यक्ष {तीर्थंकर के शासनदेव} तथा यक्षियों {शासन देवियों} का विशेष महत्व हो गया। भट्टारकों में से अधिकांश मंत्र-तंत्रादि पर विश्वास रखते थे जिनकी सिद्धि के लिये विभिन्न देवियों की उपासना अनिवार्य बतायी गयी है फलतः देवियों का महत्व बढ़ता ही गया। उन्हें तीर्थंकरों के पादमूल में स्थान मिल गया। परन्तु देवियों की शक्ति पर विश्वास और कदाचित् सांस्कृतिक, सामाजिक

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 191.
2- अरिहन्ता, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु.
3- जैन धर्मामृत, पं0 हीरा लाल सिद्धान्त शास्त्री, पृ0 315.

एवं धार्मिक कमियों तथा दबाओं के फलस्वरूप उनका महत्त्व इतना बढ़ा कि उनकी तीर्थंकर की मूर्ति से बीस गुनी तक बड़ी बनने लगी ।[1]

जैन देव-देवियों को निम्न पांच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :- 1-यक्ष [शासन देव] , 2- यक्षी [शासन देवी] , 3- विद्या देवी , 4- प्रतीकात्मक देव-देवियां , 5- अन्य देव-देवियां ।

1- यक्ष [शासन देव] - यहां मुख्य रूप से तीन यक्षों की उल्लेखनीय मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं : गोमुख , पार्श्व और धरणेन्द्र ।

गोमुख--ये प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के यक्ष हैं । इनका मुख मनुष्य के समान न होकर बैल के समान है[2]। इनकी कुछ मूर्तियां देवगढ़[3] में प्राप्त हुयी हैं , जिनमें से मंदिर सं0 3 , 12, 19, 22 उल्लेखनीय हैं । मंदिर सं0 3 की गोमुख यक्ष की मूर्ति तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्ति के साथ उत्कीर्ण है । गोमुख मूर्ति की आनुपातिक लघुता इस सम्पूर्ण मूर्तिफलक को गुप्तोत्तर युग का सिद्ध करती है । मंदिर सं0 12 की गोमुख मूर्ति 1फु. 1इंच ऊंची और 9इंच चौड़ी है । [दे० चित्र सं० 82] उसका मुख बैल के समान है और शेष शरीर मनुष्य के समान है । वह अपने चार हाथों में माला और कलश आदि लिये हैं । पायल, कटिबंध, हार , वीरमुकुट आदि आभूषण तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं ।

दुधई में आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मुख्य द्वार के केन्द्र में आदिनाथ के पादपीठ पर गोमुख का अंकन है ।[4]

पार्श्व - ये 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ के यक्ष हैं । इनकी कुछ मूर्तियां देवगढ़[5] में मंदिर सं0 12 , 13, 15 और 23 में उत्कीर्ण हैं । जैन मूर्ति शास्त्र ग्रंथों में इनका नामांतर गोमेध भी प्राप्त होता है ।[6]

धरणेन्द्र - ये तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के यक्ष हैं । इनकी मूर्तियां देवगढ़[7] में मंदिर सं0 24, 28 और अनेक स्तम्भों [स्तम्भ सं0 2, 19] पर स्वतंत्ररूप से

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 78 .
2- प्रतिष्ठा सारोद्धार, ले0 पं0आशाधर ,पृ0 3- 129 .
3- देवगढ़ की जैनकला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 81 .
4- ललितपुर दुधई की बुन्देली कला और संस्कृति:शोधप्रबंध :महेन्द्रकुमार वर्मा,पृ0315
5- देवगढ़ की जैन कला , ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 81.
6- प्रतिष्ठा सारोद्धार, ले0 पं0 आशाधर, पृ0 3-150 .
7- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 81.

निर्मित हुयी हैं । अन्य स्थानों में इनकी मूर्तियाँ पद्मावती के साथ अंकित हैं। कभी कभी इनके मस्तक पर फणावलि भी अंकित की गयी है । जैसे जैन चहारदीवारी मंदिर सं0 24 में जड़ी मूर्तियों में । जैन मूर्ति शास्त्र ग्रंथों में इनका नामांतर पार्श्व भी प्राप्त होता है ।[1]

2- यक्षी [शासनदेवी] - यक्षी की मूर्तियाँ तीर्थंकर मूर्तियों के साथ कम और स्वतंत्र रूप से अधिक निर्मित हुयी हैं । कुछ को प्रवेश द्वारों पर और मानस्तम्भों की देवकुलिकाओं में भी उत्कीर्ण किया गया है । सभी एक ही युग की देन नहीं हैं तथा सभी ने अपने 2 वर्ग में भी लाक्षणिक समानता नहीं है । प्रायः सभी बहुमूल्य वस्त्रों और रत्नाभूषणों से अंलकृत हैं । जनपद ललितपुर में प्राप्त कुछ उल्लेखनीय यक्षी मूर्तियों का विवरण निम्न है -

चक्रेश्वरी - इनकी प्रतिमायें कई स्थानों पर प्राप्त हुयी हैं । देवगढ़ में इनकी प्रतिमायें निम्न हैं+[2]

देव गढ़ के मंदिर सं0 2 के सामने पूर्व में ध्वंसावशेषों में 20 भुजी चक्रेश्वरी की शिरविहीन प्रतिमा है ।

देवगढ़ के 12वें मंदिर के अंतराल की बांयी भद्रिका से लाकर साहू जैन संग्रहालय में स्थापित की गयी इनकी मूर्ति अलौकिक है । [देखें चित्र सं0 84] 4फी. और एवं 2फी. 6इंच चौड़े शिलाफलक पर उत्कीर्ण 2फी. 11इंच ऊंची और 1फी. 11इंच चौड़ी यह गरूणवाहिनी देवी अपने एक हाथ में अक्षमाला , एक में शंख और साथ में चक्र धारण किये हुये हैं । उनके शेष 11 हाथ खण्डित हो गए हैं ।देवी के परिकर में दांये लक्ष्मी और बांये सरस्वती तथा मालाधारी विद्याधर युग्म उल्लेखनीय हैं । संगीत मण्डली द्वारा पूजित होते हुए तीन तीर्थंकर इस यक्षी के मस्तक पर विराजमान हैं । चक्रेश्वरी स्वयं शक्ति की अवतार सी प्रतीत होती हैं ।

देवगढ़ के साहू जैन संग्रहालय में ही स्थित एक अन्य 4फी. 4इंच ऊंचे और 2फी. 7इंच चौड़े शिलाफलक पर उत्कीर्ण इस गरूणवाहिनी यक्षी के [देखें चित्र सं. 84] सभी बीस हाथ सुरक्षित हैं , जिनमें चक्र,खड्ग,मुदगर, त्रिशूल ,धनुष आदि

1- [अ] अपराजित पृच्छा,सं0 आचार्य भुवनदेव, 221/40-41 .
[ब] रूप मण्डन, सं0बलराम श्रीवास्तव 6/13-14 .
2- देवगढ़ की जैन कला,सं0 भागचन्द्र जैन, पृ0 82-83.

विविध आयुध दिखाये गये हैं ।परिकर में दोनों ओर एक-एक चँवरधारी परिचारिका अंकित हैं । मस्तक पर पद्मासन तीर्थंकर को मालाधारी विद्याधरों द्वारा अर्चित दिखाया गया है । ऊपर के दोनों कोणों पर एक-एक कायोत्सर्गासन तीर्थंकर मूर्ति आलिखित है ।

देवगढ़ के मंदिर सं० 19 में स्थित 10 भुजी चक्रेश्वरी देवी के सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं । उनके वाहन गरुड़ की विशिष्ट रूपाकृति है । परिकर में दोनों ओर एक-एक चँवरधारिणी परिचारिका अंकित है।

देवगढ़ के स्तम्भ सं० 2 और 11 पर पूर्वी और 10 भुजी चक्रेश्वरी का मनोरम अंकन है ।[दे० चित्र सं० 91]

दुधई के आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मुख्य द्वार के केन्द्र में आदिनाथ के पादपीठ पर चक्रेश्वरी का अंकन है ।[1]

सेरोनजी में शान्तिनाथ के मंदिर के दायें-बायें स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में चक्रेश्वरी की एक मूर्ति है ।[2]

अम्बिका :- अम्बिका (बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की शासनदेवी) कदाचित् देवगढ़ की भी अधिष्ठात्री देवी रही प्रतीत होती हैं । तभी तो उनकी मूर्तियों की संख्या यहाँ कई सौ हैं । वह केवल नेमिनाथ के साथ न दिखाई जा कर ऋषभनाथ (देवगढ़ मंदिर सं० 4 की भीतरी पश्चिमी दीवार में जड़ी हुयी) और पार्श्वनाथ (देवगढ़ मंदिर सं० 12 के अर्धमण्डप में बायें से दायें तीसरी मूर्ति) के साथ भी अंकित की गयी हैं ।[3] ऋषभनाथ के साथ अम्बिका का अंकन कम से कम छठवीं शती में भी होता था ।[4] अम्बिका को मातृतत्व की देवी कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी ।

1- चांदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति :शोध प्रबंध ,महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ० 315.
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी ,ले०कमलचन्द्र जैन राकेश,पृ० 38.
3- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन , पृ० 83 .
4- स्टडीज़ इन जैन आर्ट ,ले० डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ,पृ० 19 .

देवगढ़ के मंदिर सं० 12 के गर्भगृह में प्रवेश द्वार के दायें 7फी. और 3फी. 2इंच चौड़े शिलाफलक पर निर्मित 5फी. 7इंच ऊंची तथा 2फी, 9इंच चौड़ी अम्बिका की मूर्ति है । इनका वाहन सिंह अपेक्षाकृत विशाल, सशक्त एवं स्वाभाविक बन पड़ा है । पार्श्व में खड़ा उनका एक बालक वस्त्राभूषणों से अलंकृत है । गोद में स्थित दूसरा बालक एक हाथ में आम्रफल धारण किए है और दूसरे से अपनी माँ के कण्ठाभरण से खेल रहा है । यक्षी के आभूषण और वस्त्र आदि तो कलागत समृद्धि के द्योतक हैं ही, उनकी क्षीण कटि, भावपूर्ण मुद्रा आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक है । पृष्ठ-भाग में आम्र-गुच्छक के ऊपर पद्मासन में एक तीर्थंकर [लघु आकृति] निर्मित है । इस लघु तीर्थंकर आकृति के दोनों ओर मालाधारी विद्याधरों की सशक्त उड़ान भी दर्शनीय है ।[1]

इस मूर्ति के अतिरिक्त, इसी गर्भगृह में इस यक्षी की तीन मूर्तियाँ और भी हैं । इन तीनों की टोपियाँ उक्त अम्बिका की टोपी से, जो सेनापति की टोपी से मिलती जुलती है, भिन्न हैं । इन्होंने उक्त यक्षी के समान चूड़ियाँ न पहन कर कंकण पहन रखे हैं । इनके अधोवस्त्र [साड़ियाँ] विशेष आकर्षक हैं ।[2]

इस यक्षी की सैकड़ों मूर्तियाँ जैन चहारदीवारी, विभिन्न मंदिरों में तथा उनके द्वारपक्षों पर और स्तम्भ सं० 2, 3, 4, 19 आदि पर देखी जा सकती हैं । इसकी बहुत सी मूर्तियाँ द्वितीयकोट के प्रवेश द्वार से मंदिरों की ओर जाने वाले मार्ग के दोनों ओर प्रस्तर निर्मित छोटे 2 चबूतरों पर भी दर्शनीय है । कुछ मूर्तियाँ साहू जैन संग्रहालय में प्रदर्शित है ।[3]

चांदपुर में अम्बिका यक्षी की निम्न दो मूर्तियाँ प्राप्त हैं जो वर्तमान में रानी लक्ष्मीबाई महल, झाँसी संग्रहालय में संग्रहीत है:-

प्रतिमा सं० 149 [चांदपुर]-ललितासन में विराजी द्विभुजा-धारिणी, सर्वाभूषणों से अलंकृत अम्बिका की यह प्रतिमा बड़ी सजीव एवं कलापूर्ण है । केशराशि का ऊर्ध्व भाग एवं स्तनों का ऊपरी भाग नष्ट हो चुका है।

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 83.
2- वही वही वही पृ० 83-84.
3- वही वही वही पृ० 84.

बाँयी जंघा पर एक बच्चा बैठा हुआ है , जिसको देवी अपने बायें हाथ से पकड़े हुए हैं । दाँये हाथ में अस्पष्ट लांछन है । देवी की शोभा प्रभा मण्डल के कारण और अधिक बढ़ जाती है । दोनों ओर अस्पष्ट पुरुषाकृतियाँ हैं । नीचे दाँयी ओर कटिहस्त मुद्रा में एक परिचारक एवं एक आराधक की आकृतियाँ अंकित हैं । बाँयी ओर कटिहस्त मुद्रा में एक परिचारक प्रदर्शित है । देवी की बाँयी जंघा के नीचे एक बैठी हुयी पुरुषाकृति है , जो अपने हाथों पर बच्चे के पैरों को रखे हुए है ।[1]

प्रतिमा सं0 186 {चाँदपुर} - यह प्रतिमा प्रतिमा सं0 149 की ही भाँति है । बाँयी ओर अभयुक्त मुद्रा एक पुरुषाकृति अंकित है और दाँयी ओर भी अस्पष्ट एक पुरुषाकृति अंकित है ।[2]

बानपुर में मंदिर सं0 5 {सहस्त्रकूट चैत्यालय} के बाह्य भित्ति पर अम्बिका का अंकन है इसमें इन्हें आयुधयुक्त मुनि वेश में हिंसा-अहिंसा की समन्वयक प्रतिमा के रूप में दर्शाया गया है ।[3]

पद्मावती - पद्मावती की मूर्तियाँ दो तरह की प्राप्त हैं : एक वे जिसमें केवल पद्मावती गोद में बालक को लिए बैठी होती हैं और दूसरी वे जिनमें वह अपने पति धरणेन्द्र के वाम पार्श्व में या गोद में बैठी होती हैं तथा उन दोनों की गोद में या उनमें से किसी एक की गोद में एक-एक बालक होता है । कभी कभी इन दोनों प्रकार की मूर्तियों में पेड़ भी दिखाये जाते हैं । धरणेन्द्र पद्मावती के इस रूप परिवर्तन ने अनेक कला मर्मज्ञों और इतिहासकारों को भी भ्रम में डाल दिया है । श्री दयाराम साहनी ने इन्हें कल्पद्रुम के नीचे स्थित युगमाकाल का युगरी युगल माना है ।[4] पर यह निरी कल्पना है क्योंकि इस प्रकार की मूर्तियाँ बनाने का न तो कोई विधान है और न परम्परा । डा0 स्टेला क्रेमरिश ने इस युग्म को गोमेध और अम्बिका माना है।[5]

1- रानी लक्ष्मीबाई,महल,झाँसी संग्रहालय .
2- वही वही वही
3- बुन्देलखंड तीर्थ क्षेत्र विभाग : अतिशय क्षेत्र बानपुर,नेमिचन्द्र महैया,पृ021.
4- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट भाग 2 : दयाराम साहनी .1918 .पृ0 9.
5- दि हिन्दू टेम्पिल्स ,ले0 डा0 स्टेला क्रेमरिश: जिल्द 2,पृ0 397 फलक 54.

डा० क्लाउज़ ब्रुन[1] और डा० उर्मिला अग्रवाल[2] ने भी इन्हें गोमेध और अम्बिका माना है । परन्तु यह विचारणीय है कि अम्बिका के दो बालक केवल उसी के साथ दिखाये जाते हैं और वह स्वयं किसी अन्य देव के साथ बैठी हुयी कभी नहीं दिखायी जाती । इसका कारण यह है कि 23वें तीर्थंकर के यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र-पद्मावती परस्पर पति-पत्नी भी है, जब कि अम्बिका और गोमेध {पार्श्व} नहीं । अतः यहां एक सम्मान्य और उत्तरदायित्व पूर्ण देवी को, विशेष रूप से साक्षात तीर्थंकर के चरणों में एक पराये देव के साथ सट कर बैठा हुआ दिखाया जाना भारतीय संस्कृति और परंपरा के सर्वथा विरुद्ध है । डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह के अनुसार यह युगल मूर्ति तीर्थंकर के माता-पिता की होनी चाहिये ।[3] यह कल्पना उस समय हास्यास्पद लगती है जब पति और पत्नी दोनों की गोद में एक-एक बालक होता है जब कि तीर्थंकर अपने माता पिता की इकलौती सन्तान होते हैं । वास्तव में ये युगल मूर्तियां धरणेन्द्र-पद्मावती की ही हैं ।[4]

पद्मावती की स्वतंत्र मूर्तियां निम्न हैं -

देवगढ़ में साहू जैन संग्रहालय में स्थित उसकी एक स्वतंत्र मूर्ति {धरणेन्द्र के बिना} 2 फी. 5इंच ऊँचे और 2फी. 2इंच चौड़े शिलाफलक पर अंकित है । यह प्रतिमा मंदिर सं० 12 के अंतराल की दांयी मढ़िया से यहां स्थानान्तरित की गयी है । उसका वाहन सिंह और गोद में बालक बैठा है । वह ललितासन में प्रदर्शित है । वह बांये हाथ से बालक को संभाले हैं और दांये हाथ में फल धारण किये है । आसन पर दोनों ओर एक एक स्त्री आकृति, उसके ऊपर एक-एक चंवरधारी पुरुषाकृति और उसके भी ऊपर उड़ान भरता हुआ माल्यधारी विद्याधर युगल आलिखित हैं । इन सबके ऊपर मध्य में पार्श्वनाथ और उनके दोनों ओर एक-एक कायोत्सर्गासन और एक-एक पद्मासन तीर्थंकर मूर्तियां अंकित हैं ।[5]

1- सन् 1926 ई० में देवगढ़ मेले में पढ़े गए क्लाउज़ ब्रुन के एक भाषण लेख से, पृ05
2- खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिग्नीफिकेंस, डा० उर्मिला अग्रवाल, पृ० 110 आकृति 82.
3- स्टडीज़ इन जैन आर्ट, ले० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, पृ० 21 फलक 17 आकृति 45-46.
4- देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 85.
5- वही वही पृ० 85.

सेरोनजी में शान्तिनाथ मंदिर के दायें बायें स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में पद्मावती की एक मूर्ति है । [1]

पद्मावती की युगल मूर्तियाँ §पद्मावती-धरणेन्द्र§ [देखें चित्र सं. 88-89] - इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं ।

देवगढ़ में मंदिर सं0 24 की पश्चिमी बहिर्भित्ति में जड़े हुए एक शिलाफलक पर पद्मावती-धरणेन्द्र की युगल मूर्ति अंकित है [देखें चित्र सं. 90] । दोनों की गोद में बालक और दायें हाथ में नारियल है ।[2]

इसी मंदिर सं0 24 के गर्भगृह में अंकित इसी युगल की एक अन्य मूर्ति है, जिसमें धरणेन्द्र [दे. चित्र सं. 87] और पद्मावती दोनों की गोद में आसीन बालक धोती पहने हैं । [3]

यहीं स्तम्भ सं0 2, 11, 18 पर भी इन दोनों की मूर्तियाँ अंकित हैं । [4]

बानपुर में मंदिर सं0 3 की बाह्य भित्तियों पर आलों की आकृति वाले आयतों में धरणेन्द्र पद्मावती की युगल मूर्ति अंकित है । [5]

चाँदपुर में भी इनकी निम्न युगल प्रतिमायें प्राप्त हैं, लेकिन ये प्रतिमायें वर्तमान समय में चाँदपुर से ले आकर रानी लक्ष्मीबाई महल, झाँसी संग्रहालय में संग्रहीत हैं -

प्रतिमा सं0 228 §चाँदपुर§ [6] - युगलिया में दोनों ललितासन में कल्पवृक्ष के नीचे विराजे हुए दिखाये गये हैं । देवी का शीर्ष भाग एवं दोनों की भुजाओं के अग्र भाग तथा बायें पैर वाले भाग खण्डित हैं । कलापूर्ण प्रभा-मण्डल दोनों के शीर्ष भाग के पृष्ठ पर अंकित है । कल्पवृक्ष के केन्द्र में धैर्यधारी

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: सेरोनजी, ले0 बालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 85 .
3- वही वही पृ0 85
4- वही वही पृ0 35, 37, 40 .
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बैया, पृ020
6- रानी लक्ष्मीबाई, महल, झाँसी संग्रहालय .

युक्त ध्यानी जिन प्रतिमा अंकित है ।

प्रतिमा सं0 167 [चांदपुर] [1] - यह युगलिया पूर्णरूपेण प्रतिमा सं0 228 की भाँति कलापूर्ण है । यहाँ ध्यानी जिन प्रतिमा के छत्र के स्थान पर प्रभामण्डल का अंकन है एवं चँवरधारियों का अभाव है । दोनों के अधोभाग नष्ट हो चुके हैं ।

प्रतिमा सं0 154 [चांदपुर] [2] - दोनों ही ललितासन में कल्पवृक्ष के नीचे विराजे हुए हैं । दोनों ही जटाजूट से युक्त एवं साधारण आभूषणों से अलंकृत हैं । दोनों अपने बाँये हाथ में बच्चों को धारण किये हैं । दाँये हाथ के आयुध अस्पष्ट हैं । दोनों के अग्र भाग खण्डित हैं । पादपीठ पर पाँच आराधक प्रदर्शित हैं ।

प्रतिमा सं0 156 [चांदपुर] [3] - यह प्रतिमा पूर्णरूपेण प्रतिमा सं0 154 की भाँति है । कल्पवृक्ष के केन्द्र में ध्यानी जिन प्रतिमा का प्रदर्शन यहाँ अवश्य दिखाता है ।

24 यक्षियों की मूर्तियाँ - उपरोक्त यक्षी मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में मंदिर सं0 12 की बाह्य भित्तियों पर यक्षी मूर्तियों के अलग-अलग 24 शिला-फलक जड़े हुए हैं । प्रत्येक शिलाफलक पर ऊपर तीर्थंकर की पद्मासन मूर्ति और नीचे यक्षी की खड़ी हुयी मूर्ति अंकित है । कुछ के वाहन भी प्रदर्शित हैं, जिन पर देवी को आसीन दिखाया गया है या जो देवी के निकट ही खड़े आलिखित हैं । यक्षी के नीचे उसका नाम और कभी कभी तीर्थंकर के नीचे उसका नाम उत्कीर्ण है । अक्षरों के कुछ अस्पष्ट हो जाने से पढ़े नहीं जा सके और जो पढ़े जा सके हैं वे क्रमशः निम्नलिखित हैं -[4]

1- चक्रेश्वरी , 4- भगवती सरस्वती , 6-सुलोचना, 8-सुमालिनी, 9-बहुरूपिणी
10- श्रीयादेवी ,11- वाहिनी ,12-अभोगरोहिणी, 13-सुलक्षणा, 14-अनन्तवीर्या,
15- सुरक्षिता, 16- श्रीयादेवी[अनन्तवीर्या] ,[मयूरवाहिनी], 17-अरकर्मा,

---

1- रानी लक्ष्मीबाई, महल, झाँसी संग्रहालय .
2- वही वही .
3- वही वही .
4- देवगढ़ की जैन कला, डा0 भागचन्द्र जैन , पृ0 85-86 .

18- तारादेवी, 19- भीमदेवी, 20-(नाम रहित), 21- (नाम रहित), 22- अम्बिका, 23- पद्मावती, 24- सिद्धायिका ।

यक्षियों की यह नामावली प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति, प्रतिष्ठासारोद्धार, प्रतिष्ठातिलक और अपराजितपृच्छा, आदि ग्रंथों की तथा यहाँ उत्कीर्ण नामावली में यक्षियों के नामों, क्रम, वाहनों, हाथों की संख्या और आयुधों आदि में अत्यधिक भिन्नता है । इसका कारण यह हो सकता है कि उन मूर्तियों के कलाकारों के सामने कोई ऐसा ग्रन्थ रहा होगा जो अब अप्राप्य है, या वे पर्याप्त शिक्षित और सावधान नहीं थे ।

3- विद्या-देवियाँ -

देवगढ़ के कलाकारों ने विद्या-देवियों के अंकन में भी पर्याप्त अभिरुचि दिखायी है । जनपद में अनेक विद्यादेवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं ।

महाकाली - इनकी उल्लेखनीय मूर्तियाँ निम्न हैं -

[दे० चित्र सं० 6]

देवगढ़ मंदिर सं० 5 के पूर्वी द्वार के ऊपर दाँये महाकाली का अंकन है । उनके तीन हाथों में वज्र, घंटिका और फल विद्यमान हैं जब कि चौथा अभयमुद्रा में है ।[1]

देवगढ़ में इनकी दूसरी मूर्ति मंदिर सं० 9 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर मध्य में उत्कीर्ण है । उनके ऊपर के दाँये हाथ में वज्र, बाँये में घंटिका तथा नीचे दाँया हाथ अभय मुद्रा में तथा बाँये में अक्षमाला है । उनका वाहन नर भी अंकित है ।[2]

देवगढ़ में इनकी तीसरी मूर्ति मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के सिरदल पर बाँये अंकित है । [दे० चित्र सं० 19-20] यहाँ इनका एक हाथ अभय मुद्रा में और दूसरा हाथ पूर्ण खण्डित हो गया है । उनके शेष दो हाथों में वज्र और घंटिका है । इनका वाहन नर भी अंकित है ।[3]

देवगढ़ स्तम्भ सं० 4 पर भी इनकी मूर्ति अंकित है ।[4]

1- देवगढ़ की जैन कला, डॉ० भाग चन्द्र जैन, पृ० 86.
2- वही, वही, पृ० 87.
3- वही वही पृ० 93 । 4- वही वही पृ० 97.

गौरी -

देवगढ़ में मंदिर सं० 5 के पूर्वी द्वार के बायें गौरी का अंकन है, जिनके हाथों में कमल, अक्षमाला, कुम्भ और मुकुल हैं। उनका वाहन गोधा भी अंकित है।[1]

महामानसी -

इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं -

देवगढ़ के मंदिर सं० 5 के पश्चिमी द्वार के सिरदल पर बायें महामानसी का अंकन है। इनके ऊपर के दायें हाथ में कृपाण और बायें में खेटक{ढाल} एवं नीचे के बायें हाथ में कमल है तथा दायाँ वरद मुद्रा में है। इनके साथ सिंह बैठा है।[2]

देवगढ़ स्तम्भ सं० 11 पर भी इनकी मूर्ति अंकित है।[3]

चाँदपुर में शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के बाहरी भाग में शान्तिनाथ की मूर्ति के पादपीठ पर महामानसी का अंकन है।[4]

4- प्रतीकात्मक देव-देवियाँ -

इस वर्ग में लक्ष्मी, सरस्वती, नवग्रह, गंगा-यमुना, नाग-नागी के नाम लिए जा सकते हैं, इन्हें प्रतीकात्मक कहा जाता है। उदाहरणार्थ- लक्ष्मी को सम्पत्ति का और सरस्वती को श्रुति देवता का प्रतीक कहा जा सकता है। इनका सूक्ष्म विवरण निम्न है -

लक्ष्मी - लक्ष्मी, धन-धान्य आदि समृद्धिदायिनी देवी मानी गयी हैं।[5] कला में इनका अंकन बहुत प्राचीन काल से प्राप्त होता है।[6]

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 86.
2- वही वही पृ० 87.
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग; संकलन-सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ० 188.
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा, पृ० 68.
5- प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा, ले० डा०राय, गोविन्दचन्द्र, सम्पूर्ण शोधप्रबंध.
6- त्रिपथगा, {नवम्बर, 1955 : भारतीय साहित्य और कला में लक्ष्मी, ले० कृष्णदत्त बाजपेयी पृ० 25-26 .

देवगढ़[1] में लक्ष्मी की मूर्तियाँ मंदिर सं० 12 के प्रवेश द्वार के सिरदल के बायें तथा जैन धर्मशाला में चौखवटी के ऊपर दायें आदि पर ही प्राप्त हुयी हैं । मंदिर सं० 12 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर उत्कीर्ण लक्ष्मी मूर्ति बहुत ही मनोरम और महत्वपूर्ण हैं। चतुर्भुजी इस देवी के ऊपर के दायें हाथ में सनाल कमल है जब कि नीचे का वरद मुद्रा में है । इसका बांया ऊपरी हाथ खण्डित है और नीचे वाले में सुन्दर कलश है । सुन्दर वस्त्रों के अतिरिक्त इनके पायल, पाँजपोश, कटिबन्ध , चूड़ियाँ, भुजबन्द, चन्द्रहार ,एकावलि, स्तनहार , कण्ठश्री ,कर्ण कुण्डल और रत्नजटित मुकुट दर्शनीय हैं ।

सरस्वती - सरस्वती को ज्ञान व श्रुति देवता का प्रतीक माना जाता है ।

देवगढ़ में इनकी निम्न प्रतिमायें प्राप्त हैं - [2]

मंदिर सं० 1 के पीछे बायें से दायें [उत्तर से दक्षिण] जो सातवीं मूर्ति खड़ी है उसके बायें पार्श्व में उत्कीर्ण की गयी मूर्ति सरस्वती [दे० चित्र सं० 64] खड़ी हैं । उनके ऊपर के हाथों में अक्षमाला और कमल है तथा नीचे के बायें में पुस्तक और दांया अभय मुद्रा में है ।

मंदिर सं० 11 के दूसरे खण्ड के प्रवेश द्वार पर बायें अंकित सरस्वती के हाथों में पुस्तक, वीणा और कलश हैं तथा एक हाथ अभय मुद्रा में है । मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर दायें सरस्वती उत्कीर्ण हैं [दे० चित्र सं० 22] इनके ऊपर के दायें हाथ में सूत्र से मजबूती के साथ लपेटी गयी पुस्तक और नीचे वाले में वीणा के तार हैं । ऊपर का बांया हाथ वीणा साधे हुए है और दायें में कलश विद्यमान है । इनके आभूषण तथा वस्त्र सूक्ष्मता के साथ निदर्शित हैं । इनकी केशराशि पीछे की ओर और जूड़ा ऊपर को सम्हाल कर बांधा गया है ।

मंदिर सं० 12 के अन्तराल की बांयी मढ़िया में सरस्वती की [दे० चित्र 79] मूर्ति स्थापित है । चतुर्भुजी इस देवी के दायें ऊपरी हाथ में माला है और

1- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 88-89 .

2- वही वही पृ० 87-88

नीचे का वरद मुद्रा में है, बायें ऊपरी हाथ में सनाल कमल है जब कि नीचे का ताड़पत्रीय ग्रंथ सम्हाले हुए है । इनके पायल, पायजेब, कटिबंध, कंगन, गौंहटा, आरसी, कंठश्री, स्तनहार, कर्णाभरण और मुकुट अत्यंत सुन्दरता से निदर्शित हैं । पादपीठ के ऊपर इनके पार्श्व में दोनों ओर दो-दो सेविकायें उत्कीर्ण हैं तथा ऊपर तीन पद्मासन तीर्थंकरों का अंकन है । देवी की मुख मुद्रा सौम्य और प्रसन्न है ।

मंदिर सं0 19 में सरस्वती की एक विशाल 5फी. x 2फी. 2इंच [देखें चित्र सं 80] खड़ी मूर्ति स्थित है । देवी का सिर व चारों हाथ खण्डित हैं । इनके पाद-पीठ में हंस वाहन के रूप में दिखाया गया है और इसके पार्श्व में एक दम्पति देवी की उपासना में रत है उसके ऊपर दो-दो चँवरधारी सेविकायें सेवा में प्रस्तुत अंकित की गयी हैं उनके भी ऊपर [दायें में अपने दायें हाथ में ग्रंथ और बायें में माला धारण किये आचार्य और [बायें] पीछी सहित आर्यिका उपासना में लीन है । उनके ऊपर दोनों ओर एक-एक कायोत्सर्गासन और उनके भी ऊपर एक-एक पद्मासन तीर्थंकर अंकित हैं । तत्पश्चात् दोनों ओर नभस्थ ऊर्ध्व उड़ान भरते हुए मालाधारी विद्याधरों के मध्य पद्मासन में एक तीर्थंकर का मनोरम आलेखन हुआ है । देवी के आभूषण भद्रता से निदर्शित हैं । इनके चारों हाथ खण्डित हो गये हैं ।

मंदिर सं0 31 के प्रवेश द्वार पर भी सरस्वती की सुन्दर मूर्ति अंकित है । यहाँ के साहू जैन संग्रहालय में पद्मावती की मूर्ति के ऊपरी भाग में बायें सरस्वती की एक मनोज्ञ मूर्ति अंकित है ।

बानपुर के सहस्रकूट चैत्यालय के उत्तरी प्रवेश द्वार की बाह्य भित्ति पर सरस्वती का अंकन है ।[1]

सेरोनजी में शान्तिनाथ मंदिर के दायें-बायें स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में सरस्वती की एक मूर्ति है ।[2]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बैया, पृ021.

2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी, ले0 लाल चन्द्र जैन राकेश, पृ0 38.

चाँदपुर,दुधई में भी सरस्वती की प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं ।[1]

[देखिये चित्र सं 56]

नवग्रह । - नवग्रहों का अंकन भारतीय कला में प्रचुरता से उपलब्ध होता है और इनका अपना विशेष महत्व भी है । [2] इनका आलेखन खड़े रूप में प्रायः मंदिरों के प्रवेश द्वारों तथा तोरणों पर और बैठे रूप में प्रायः मूर्ति फलकों पर प्राप्त होता है । जनपद में इनकी निम्न मूर्तियाँ प्राप्त हैं -

देवगढ़ में इनका अंकन मंदिर सं0 4,5,30 और 31 के प्रवेश द्वारों तथा तोरणों पर और मंदिर सं0 11 और 12 में मूर्ति फलकों पर प्राप्त होता है ।

सेरोनजी में मंदिर सं0 1 के प्रवेश द्वार के तोरण पर और मानस्तम्भ पर नवग्रहों का अंकन है । [4]

बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय के पूर्वी और पश्चिमी द्वारों के तोरणों पर नवग्रह का अंकन है । [5]

चाँदपुर में शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के गर्भगृह के सिरदल पर नवग्रहों का अंकन है । [6]

गंगा-यमुना और नाग-नागी - गंगा-यमुना और नाग-नागी का स्थापत्य से सम्बन्ध 300 ई0 से द्वार स्तम्भों से प्राप्त होता है । महाकवि कालिदास ने गंगा और यमुना के मूर्ति रूप का उल्लेख किया है ।[7] गंगा-यमुना के साथ नाग-नागी का सामीप्य भी गुप्त काल से प्राप्त होता है । [8]

1- चाँदपुर-दुधई की चन्देली कला और संस्कृति:शोध प्रबंध:महेन्द्र कुमार वर्मा,पृ0328.
2- वास्तुसार प्रकरण , ले0 ठक्कुर फेरु , पृ0 172-174 .
3- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन , पृ0 89-90.
4- वही वही वही पृ0 90
5- वही वही वही पृ0 90
6- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर,ले0 कैलाश मड़बैया पृ068.
7- कुमारसंभव : कालिदास ग्रंथावली : सम्पादित-[illegible] पाण्डे,सर्ग7 पद-42.
8- यक्षः भाग । : आनन्द कुमार स्वामी ।

गुप्त काल के द्वार स्तम्भों पर गंगा-यमुना बनाने की प्रथा थी ।[1]

देवगढ़[2] में गंगा-यमुना का अंकन मंदिर सं0 4, 5 {दो बार}, 9, 11 {दो बार}, 12, 15 {दोबार}, 16, 18 {दोबार}, 19, 20, 23, 24, 28 और 31 तथा लघु मंदिर सं0 4 में आकर्षक ढंग से हुए हैं ।

बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय की बाह्य भित्ति पर गंगा-यमुना का अंकन है ।[3]

चांदपुर-दुधई, सेरोन्जी में भी गंगा-यमुना की मूर्तियों का अंकन है ।[4]

इसी प्रकार नाग-नागी का अंकन देवगढ़[5] के मंदिर सं0 12, 15, 18, 19 और 31 में प्राप्त होता है ।

चांदपुर में शान्तिनाथ मंदिर सं0 1 के द्वार स्तम्भ के केन्द्र पर एक ओर नाग-नागी का अंकन है ।[6]

दुधई में आदिनाथ के मंदिर में मंडप के चारों स्तम्भ के ऊपर के शिलापट्टों पर नाग-नागियों का अंकन है ।[7]

5- अन्य देव-देवियां - इस वर्ग में इन्द्र-इन्द्राणी, उद्घोषक, परिचारक-परिचारिकायें, कीर्तिमुख, कीचक, द्वारपाल, क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं । तीर्थंकर के दोनों ओर {1} चंवर डुलाते हुए यक्षेन्द्र और उनकी इन्द्राणियां, {2} तीर्थंकर की वाणी को दुन्दुभि पीट2 कर तीनों लोकों में गुंजा देने वाला उद्घोषक[8], {3} उच्च श्रेणी के देव-देवियों की, छाया की भांति साथ रह कर, सेवा-टहल करने वाले परिचारक, परिचारिकायें, {4} स्तंभों,

---

1- मध्य प्रदेश सन्देश, 26 जनवरी, 1963ई0 : मध्य प्रदेश की कला का ऐतिहासिक परिशीलन, ले0 कृष्णदत्त बाजपेयी, पृ0 16.
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 90.
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़वैया, पृ0 21.
4- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 90.
5- वही वही वही पृ0 90.
6- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 68.
7- वही वही पृ0 69.
8- उद्घोषक के साधारणतः दो हाथ दिखाये जाते हैं लेकिन देवगढ़ म0सं0 के [illegible] शिखर पर इस उद्घोषक के चार हाथ दिखाये गए हैं । देवगढ़ की जैनकला, ले0 भाग चन्द्र जैन पृ0 91.

गवाक्षों और देवकुलिकाओं आदि के अंकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले कीर्तिमुख, §5§ भवन की छत का विपुल भार धारण करने वाले शक्तिशाली कीचक, §6§ अनधिकारियों और आततायियों को मंदिर के भीतर प्रवेश का निषेध करने वाले दण्डधारी द्वारपाल और §7§ समग्र तीर्थ क्षेत्र की रक्षा करने वाले क्षेत्रपाल [1] आदि की मूर्तियां देवगढ़ [2], बानपुर [3], पाँदुर [4], दुबई[5] आदि स्थानों में यथा स्थान प्राप्त होती हैं ।

विद्याधर की प्रतिमायें -

विद्याधर वे मनुष्य होते हैं, जो साधना या तपस्या के फलस्वरूप आकाशगामिनी आदि विद्यायें सिद्ध कर लेते थे । धर्म कथाओं के अनुसार ये अत्यंत रसिक और पर्यटन प्रेमी होते थे । साथ ही जिनेन्द्र देव के बहुत बड़े भक्त होते थे।

देवगढ़ में इनकी अनेक मूर्तियां प्राप्त हैं ।[6] मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के तोरण पर तथा मंदिर सं0 28 के अंग शिखर पर इन्हें उड़ान भरते हुए इन्हें अंकित किया गया है । मंदिर सं0 1 में उन्हें तीर्थंकर के मस्तक पर चंवर ढुलाते हुए अंकित किया गया है । मंदिर सं0 2 के दसवें फलक पर उन्हे अपनी प्रेयसियों के साथ चंवर ढुलाते अंकित किया गया है । मंदिर सं0 8 के दायें जैन चहारदीवारी में भीतर की ओर उन्हें माला लिए हुए दिखाया गया है ।

बावागिरि में क्षितिपाल की मढ़िया में आदिनाथ की मूर्ति के पादपीठ पर ऊपर की ओर दो विद्याधरहैंजिनमें एक के सिर पर उष्णीष है और एक हाथ नष्टावस्था में है, दूसरे का मुख वाला भाग नष्ट हो चुका है ।[7]

1- देवगढ़ में मं0 सं0 1 के पीछे स्थित मानस्तंभ पर और मं0सं0 12 के अर्धमंडप के स्तंभ पर तथा बानपुर में मं0सं0 3 के द्वार के ऊपरी तोरण पर भी क्षेत्रपाल की मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं ।
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन पृ0 90-91 .
3- बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0कैलाश मड़बैया, पृ020-22.
4- पाँदुर-दुबई की पत्थरों कला और संस्कृति:शोध प्रबंध:महेन्द्रकुमार वर्मा, पृ0310-28.
5- बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में पाँदुर-दुबई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा पृ0 69-70 .
6- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 92 .
7- बुन्देलखण्ड जैन तीर्थ विशेषांक : बावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार पृ0 53 .

दुधई के शान्तिनाथ मंदिर में मुख्य मूर्ति के दोनों ओर पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं के साथ विद्याधरों का अंकन है ।[1]

साधु - साध्वियां -

साधु-साध्वियों को मूर्ति रूप देने का विधान जैन प्रतिमा शास्त्रों में नहीं मिलता। उनकी चरण-पादुकाओं , निषई{निषेधिका} के निर्माण का विधान अवश्य है ।[2] पर इस विधान का अपवाद ऋषभनाथ के पुत्र भरत और बाहुबली की प्रतिमायें हैं । फिर देवगढ़ के कलाकारों के समक्ष तो शास्त्रीय विधानों से बढ़ कर भक्ति का उद्रेक था । इसीलिए कलाकारों की इस अपूर्व भक्ति भावना ने जनपद ललितपुर को साधु-साध्वियों की इतनी अधिक और विविध मूर्तियाँ प्रदान किया है ।

आचार्य -

देवगढ़ में आचार्य परमेष्ठी को प्राय: उपदेश मुद्रा में प्रस्तुत किया गया है । [दे० चित्र सं० 68] इनकी मूर्तियाँ मंदिर सं० 1, 4, द्वितीय कोट के प्रवेशद्वार तथा मान स्तंभ सं० 11 व अन्य मानस्तंभों में उत्कीर्ण हैं ।[3]

उपाध्याय - [दे० चित्र सं० 71-73]

इनके हाथ का ग्रंथ इनके उपाध्याय पद का प्रतीक होता है । देवगढ़ में इनकी मूर्तियाँ साहू जैन संग्रहालय , दिगम्बर जैन चैत्यालय, मं०सं० 1, 4, 12, 22, विभिन्न मान स्तंभ, हाथी दरवाजा और द्वितीय कोटि के प्रवेश-द्वार पर प्राप्त होती हैं ।[4] वे स्वयं कभी पढ़ते दिखायी देते हैं {द्वितीय कोट का प्रवेश द्वार, मं०सं० 1 ,4 और 12 के सामने पड़े अवशेष} , कभी दो या अधिक मिल कर तत्व चर्चा करते हुए दिखाये गये हैं {मंदिर सं० 1 का पृष्ठ भाग, मं०सं० 4, 22, के सामने पड़े अवशेष और विभिन्न मान-स्तंभ} और कभी साधुओं तथा श्रावकों को धर्मोपदेश देते हुए अंकित हैं { मं०सं० 1, 4, 12 के सामने पड़े अवशेष एवं विभिन्न मानस्तंभ} । वे कभी पाठशालाओं में शिक्षा देते हुए भी दृष्टिगत होते हैं । वे कभी भी उद्विग्न होकर क्रुद्ध नहीं होते हैं तथा स्वाध्याय नामक तप के

1- बुन्देलखंड जैन तीर्थ विशेषांक: जैन धर्म के उत्कर्ष में पांच्छुर-दुधई का योगदान, डॉ० महेन्द्र वर्मा पृ० 69-70 .
2- प्रति०सारोद्धार:पं० आशाधर पृ० 1, 108 .
3- देवगढ़ की जैन कला, डॉ० भागचन्द्र जैन, पृ० 93.
4- वही वही पृ० 93.

पाँचों अंगों का भलीभाँति पालन करते थे । [1]

साधु –

साधुओं में चक्रवर्ती भरत और कामदेव बाहुबली की मूर्तियाँ सबसे मुख्य और महत्वपूर्ण हैं । भरत की मूर्ति के साथ उनकी चक्रवर्तित्व की सूचक नौ निधियाँ (नौ घटों के रूप में) अंकित की गयी हैं । देवगढ़ में साहू जैन संग्रहालय में चक्रवर्ती भरत की अकेली मूर्ति प्रदर्शित है [दे० चित्र सं० 76], जिसकी केशराशि व मुख मुद्रा अत्यंत सुन्दर है । [2] इसके अतिरिक्त इनकी अधिकांश मूर्तियाँ द्विमूर्तिका के रूप में हैं, जिसमें दूसरी मूर्ति उनके अनुज बाहुबली की होती है । इसके विरुद्ध बाहुबली की मूर्ति स्वतंत्र रूप से अधिक मिली है । जैसे – देवगढ़ [3] में मं०सं० 2 [दे० चित्र 77], 11, 12 के अर्धमंडप के एक स्तंभ पर, मं०सं० 19 के उत्तरंग पर और साहू जैन संग्रहालय आदि में। यह मूर्तियाँ दसवीं से बारहवीं शती ई० मध्य की हैं ।

साहू जैन संग्रहालय में प्रदर्शित बाहुबली की मूर्ति [दे० चित्र सं० 74] के दोनों ओर एक-एक स्त्री (खड़ी हुयी) इनके शरीर पर चढ़ी हुयी लताओं को एक-एक कर के दूर कर रही हैं । कंधों तक आ पहुँची जटायें और सादा भा मण्डल इस मूर्ति की अन्य विशेषतायें हैं । कला की सूक्ष्मता, मुखाकृति की सजीव कान्ति, श्रीवत्स की लघुता एवं परिकर का अभाव इसे गुप्त काल के बाद निर्मित हुयी कृति सिद्ध करते हैं । [4]

यहीं मंदिर सं० 11 के दूसरे खण्ड के गर्भगृह में स्थित बाहुबली [दे० चित्र सं०] की ऐसी मूर्ति भी उपलब्ध है जिस पर सर्प, बिच्छू आदि रेंगते तो प्रदर्शित हैं परन्तु लताओं का आवेष्टन नहीं है। सर्पों को हटाते हुए कुछ भक्त-गण भी

1– "वाचना पृच्छना ऽनुप्रेक्षा ऽऽम्नाय धर्मोपदेशाः ।" –तत्त्वार्थ सूत्र:ले०उमास्वामी अ० 9 सूत्र 25.

2– देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 95.

3– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 94.
(ब) उत्तर प्रदेश (पुरातत्व विशेषांक) वर्ष 9 अंक 12: देवगढ़ में बाहुबली गोमटेश्वर, ले० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, पृ० 54.

4– उत्तर प्रदेश पुरातत्व विशेषांक, वर्ष 9, अंक 12 : देवगढ़ में बाहुबली गोमटेश्वर, ले० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, पृ० 54.

अंकित हैं । यह मूर्ति 12 वीं शती ई0 की है ।[1]

मंदिर सं0 2 में अवस्थित फलक क्रम 5 और 6 पर भरत-बाहुबली की दो उल्लेखनीय मूर्तिकायें हैं । पहली द्विमूर्तिका किसी भित्ति की कोने का अंग है क्योंकि उसके दो ओर मूर्तियां हैं । एक ओर बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्ति है , जिस पर लिपटी हुयी लतायें , रेंगते हुए सर्प और एक छिपकली अंकित है , दूसरी ओर चक्रवर्ती भरत का अंकन है , उनके दायें उनके विशेष चिन्ह नौ निधियां आदि अंकित हैं । दूसरी द्विमूर्तिका भी किसी भित्ति के कोने का अंग है और उसमें भी इसी प्रकार के अंकन हैं ।[2]

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर में प्राचीन चोंतरा में चट्टान पर भगवान बाहुबली की एक मूर्ति उत्कीर्ण है ।[3] सेरोनजी में भी शान्तिनाथ मंदिर के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में बाहुबली की एक अद्भुत प्रतिमा है ।[4]

इनके अतिरिक्त देवगढ़ में साधुओं की अनेक मूर्तियां भी प्राप्त हुयी हैं,जो निम्न हैं -[5]

मंदिर सं0 12 के गर्भगृह और प्रदक्षिणापथ के प्रवेश द्वारों के बायें पक्षों पर एक मुनि का अंकन है , मुनि खड़े हैं । [देखें चित्र सं. 24] भक्त उनके चरणों का प्रक्षालन कर रहा है और उसकी पत्नी कलश लिए खड़ी है । यह आहार दान का दृश्य है ।

मंदिर सं0 23 के प्रवेश द्वार के दायें पक्ष पर एक मुनि का अंकन , कदाचित विहार की स्थिति में हुआ है , किन्तु मार्ग में किसी भक्त श्राविका के द्वारा विनय प्रदर्शित करने पर उसे सम्बोधित कर रहे हैं । मुनि अपने बायें हाथ में कमण्डल लटकायें हैं , पीछी कन्धे पर है तथा दायें हाथ को उपदेश मुद्रा में सम्बोधित कर रहे हैं ,सामने एक श्राविका अंकित है ।

1- उत्तर प्रदेश {पुरातत्व विशेषांक} वर्ष नौ अंक 12 :देवगढ़ में बाहुबली गोम्मटेश्वर, ले0 मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी , पृ0 54 .
2- देवगढ़ की जैन कला , ले0 भाग चन्द्र जैन , पृ0 95 .
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन,बलभद्र जैन, पृ0 200 .
4- वही वही वही पृ0 196 .
5- देवगढ़ की जैन कला ,ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 98 .

मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के बांये पक्ष पर एक मुनि शूकर को सम्बोधित करते हुए अंकित है। [दि० चित्र सं० 23]

मंदिर सं० 12 के सामने पड़े हुए अवशेषों में एक द्वार पक्ष पर मुनि विहार का सुन्दर निदर्शन हुआ है। कोई भक्त उनका अनुगमन कर रहा है और दूसरा चरण वन्दना करता हुआ दिखाया गया है। [दि० चित्र सं० 78]

मंदिर सं० 12 के अर्धमण्डप के स्तंभों पर तपस्यारत मुनि का अंकन अत्यंत प्रभावोत्पादक है। दो कोष्टकों में मुनि के दोनों ओर खड़ी स्त्रियां उन्हें आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रही हैं।

मंदिर सं० 18 के महामण्डप के प्रवेश द्वार पर दो कोष्टकों पर एक-एक साधु लेटे हुए अंकित हैं। उनकी पीछी, कमण्डलु-दूर पड़े हैं और एक-एक स्त्री उनके दांये पैरों को ऊपर उठा कर संवाहन कर रही है। इसी द्वार पर एक अन्य अंकन में मुनि का संवाहन कोई भक्त पुरुष कर रहा है।

साध्वियां -

देवगढ़ की जैन कला में साध्वियों के अंकन अनेक रूपों में हुए हैं। कभी वे पाठशालाओं में उपस्थित दिखायी गयी हैं, कभी प्रवचन करती हुयी अंकित की गयी हैं तो कभी आत्मचिन्तन में लीन अभिलिखित हैं। देवगढ़ में इनकी मूर्तियां मिली हैं जो निम्न हैं -[1]

मंदिर सं० 10 के मध्यवर्ती तीन स्तंभों में से दक्षिणी स्तंभ के पूर्वी कोष्ठक में आर्यिका[2] [illegible] का उल्लेखनीय अंकन हुआ है। एक कोष्ठक में आर्यिका खड़ी है। दांये उनका कमण्डलु रखा है और पीछी उल्टी टंगी है। उनके बांये एक स्त्री कोने में दीवार से टिकी उकडूं बैठी है। उसकी कोहनियां घुटनों पर रखी छोड़ी है। हाथों के ऊपर का भाग खण्डित हो गया है, जिसमें कदाचित् पीछी रही होगी और वे अंजलिबद्ध भी रहे होंगे। आर्यिका के बांये रखा हुआ छोटा कमण्डलु कदाचित् इसी स्त्री का होगा। इस दृष्टि से यह स्त्री क्षुल्लिका या आर्यिका हो सकती है, श्राविका नहीं।

1- देवगढ़ की जैन कला, डा० भाग चन्द्र जैन, पृ० 99.

2- ग्यारह प्रतिमा के व्रत पालने वाली तथा साधु के समान आचरण करने वाली महिला को सफेद साड़ी, पीछी, कमण्डलु तथा शास्त्र का ही परिग्रह रखना [illegible]

प्रतीत होता है कि वरिष्ठ आर्यिका अपने अधीन कनिष्ठ आर्यिका या क्षुल्लिका को प्रतिक्रमण करा रही है ।

इसी मंदिर के मध्य के स्तंभ में भी नीचे ध्यानरत आर्यिका का अंकन है ।

यहाँ के स्तंभ सं0 11 के दक्षिणी ओर एक विदुषी आर्यिका साध्वियों तथा श्राविकाओं को सम्बोधित कर प्रवचन कर रही है उनके दोनों ओर एक-एक आर्यिका तथा दो-दो श्राविकायें बैठी हैं ।

यहाँ के स्तंभ सं0 3 पर दक्षिणी तथा पश्चिमी कोष्ठकों में आर्यिका संघ का अंकन हुआ है । दक्षिणी कोष्ठक में 6 आर्यिकायें अपनी पीछी कमण्डलु सहित विनयावनत मुद्रा में आलिखित हैं , जब कि दक्षिणी कोष्ठक में क्रमशः एक साधु के पश्चात् एक आर्यिका, इस प्रकार कुल तीन साधु और तीन आर्यिकायें अंकित हैं । इस कोष्ठक में सभी साधु-साध्वियां अपनी पीछियां तो बगल में दबायें हैं किन्तु उन सभी के कमण्डलु अदृश्य हैं ।

ऐलक -

देवगढ़ के मंदिर सं0 15 के महामण्डप में ऐलक की एक विशाल मूर्ति अवस्थित है । मूर्ति में मात्र कोपीन और कटिसूत्र स्पष्ट दिखायी देते हैं । मुख मुद्रा प्रशान्त ,निर्विकार और संसार से विरक्त अंकित है । [1]

श्रावक-श्राविकायें -

श्रावक - श्राविकाओं की मूर्तियों का विधान भी जैन मूर्ति शास्त्र में दृष्टिगत नहीं होता । इस दृष्टि से इसके उत्कीर्णन का सूत्रपात बाद काल में हुआ प्रतीत होता है । कदाचित इसी समय से दानदाताओं और दानदात्रियों की मूर्तियां भी बनने लगीं । तीर्थंकर की पूजा भक्ति करते हुए श्रावक युगल भी इसके पश्चात् अंकित किये जाने लगे । चन्देलों और कच्छपघातों का समय आने तक श्रावक -श्राविकाओं के दैनिक जीवन की विभिन्न झाँकियां धार्मिक क्षेत्र से दूर हो गयीं और उनका सामाजिक महत्व भी कम रह गया ।

1- देवगढ़ की जैन कला ,डा0 भागचन्द्र जैन , पृ0 98-99 .

लेकिन जनपद ललितपुर में प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं की मूर्तियों में धार्मिक तत्व ही अधिकतर हैं ।

उल्लेखनीय श्रावक-श्राविका मूर्तियाँ निम्न हैं -

1. <u>तीर्थंकर की माता</u> - देवगढ़ में श्रावक-श्राविकाओं की मूर्तियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय मूर्ति तीर्थंकर माता की है । इनकी एक मूर्ति फलक मंदिर सं0 के गर्भगृह की बांयी भित्ति पर जुड़ी हुयी है । आसन पर क्रमशः हाथी, सिंह, सिंह, हाथी और बालकधारिणी देवी अंकित हैं । इनके पार्श्व में खड़ी देवी तीर्थंकर की माता को चँवर डुला रही है । माता दांयी करवट लेटी हैं । उनकी दांयी कोहनी शैया पर टिकी है ।जबकि उठी हुयी हथेली पर सिर थमा है । माता का मुकुट, कर्णाभरण, मोहनमाला, ग्रीवा§कण्ठश्री§, केयूर, कंकण, मेखला और पायल अत्यन्त सूक्ष्मता से अंकित हैं । फलक पर फणामण्डित एवं पार्श्वनाथ सहित 24 तीर्थंकरों की प्रस्तुति है ।शैया के नीचे एक पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है उसमें इस मूर्ति के समर्पणकर्ता का नाम और निर्माणकाल संवत् 1030 §ई0 सन् 973§ का उल्लेख है ।[1] श्री दयाराम साहिनी ने भ्रमवश इसे संवत् 1803 पढ़ा था ।[2]

यहीं मंदिर सं0 30 के गर्भगृह में स्थित 1फी0 9इंच ऊँचे और 1फी0 4इंच चौड़े शिलाफलक पर तीर्थंकर की माता का अंकन है । सबसे नीचे दो सिंहाकृतियाँ अंकित हैं । उनके ऊपर स्थित शैया पर माता उपधान पर मस्तक रखे दांये करवट से लेटी हैं । उनके दोनों ओर खड़ी एक-एक देवी चँवर डुला रही हैं । माता के पीछे कल्पवृक्ष का अंकन है । इस पर विद्यमान आसन पर तीर्थंकर की एक पद्मासन मूर्ति और उसके दोनों ओर एक-एक चँवरधारी यक्ष अंकित है । [3]

1- देवगढ़ की जैन कला, भा0 भागचन्द्र जैन, पृ0 100.
2- ए0प्रो0आर0 : 1918 : परिशिष्ट ब अभिलेख क्रम 29, पृ0 14, दयाराम साहनी.
3- देवगढ़ की जैन कला, भा0 भागचन्द्र जैन, पृ0 100.

तीर्थंकर माता की इन दो मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में श्रावक-श्राविकाओं की और भी अनेक मूर्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत की गयी हैं -

भक्त श्रावक-श्राविका -

देवगढ़ मंदिर सं० 1 के मण्डप में जड़े हुये एक फलक पर आचार्य परमेष्ठी की सेवा में खड़े एक चंवरधारी श्रावक के कंधे पर झोली टंगी है। इसके दोनों हाथ कलाइयों के ऊपर से खण्डित हैं। इसका झुका हुआ खण्डित मस्तक है। आचार्य के दूसरी ओर एक श्राविका जो कदाचित उस श्रावक की पत्नी होगी, छत्र धारण किये खड़ी है। छत्र खण्डित हो गया है। श्राविका की वेश-भूषा और आभूषण सादे हैं किन्तु मोतियों के हैं। उत्तरीय पीछे हाथों में फंस कर फिर पीछे निकल आया है। मुखामण्डल खण्डित है।[1]

इसी मंदिर सं० 1 के मण्डप में एक मूर्ति फलक के पादपीठ में विनम्र श्राविका की वेशभूषा में एक अंकन है।[2]

विनयी श्रावक - [दे० चित्र सं० 102]

देवगढ़ में जैन चहारदीवारी में एक ऐसी श्रावक मूर्ति खड़ी हुयी है, जो वस्त्राभूषण, परिष्कृत अभिरुचि एवं विनम्र भाव-भंगिमा आदि की दृष्टि से विशेष कही जायेगी।[3]

उदासीन श्रावक -

देवगढ़ मंदिर सं० 10 की उत्तरी स्तंभ पर पूर्व की ओर बाह्य संसार से विमुख किन्तु आत्मचिंतन में लीन एक उदासीन श्रावक का अंकन हुआ है। यह श्रावक पद्मासन में बैठ कर आत्म-मनन कर रहा है। उसकी वेशभूषा में तनीदार दोहरी छाती की अंगरखा तथा सिर पर टोपा दर्शनीय है।[4]

अन्य अंकन -

इनके उपरोक्त मूर्त्यंकनों के अतिरिक्त पाठशालाओं में अध्ययनरत, अतिथियों की सेवा में संलग्न मूर्तियों का भी अंकन है।[5]

1- देवगढ़ की जैन कला, डा० भागचन्द्र जैन, पृ० 101.
2- वही वही पृ० 101.
3- वही वही पृ० 101.
4- वही वही पृ० 102.
5- वही वही पृ० 102.

पावागिरि में खितिपाल की मढ़िया में आदिनाथ की मूर्ति के पादपीठ पर दोनों ओर दो-दो आराधिकायें अंजलिमुद्रा में अंकित हैं ।[1]

दुधई में शान्तिनाथ मंदिर में मुख्य मूर्ति के पादपीठ के केन्द्र के दोनों ओर एक-एक आराधक की मूर्तियाँ अंकित हैं । [2]

युग्म और मण्डलियाँ -

जनपद ललितपुर के स्थापत्य में युग्मों और मण्डलियों का उपयोग सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति तथा अलंकरण के लिये हुआ है । प्रारंभ में उनका उद्देश्य धार्मिक रहा होगा और बाद में उसे सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर भी अंकित किया गया होगा । उत्तरवर्ती काल में स्थापत्य जब विकास की चरम सीमाओं का स्पर्श कर रहा था तब उसके स्तंभों , द्वार पक्षों ,तोरणों ,गवाक्षों ,देवकुलिकाओं और भित्ति-यों आदि पर अलंकरणों की आवश्यकता हुयी । इन अलंकरणों ने प्रारंभ में पत्रा-वलि-रचना तथा पशुपक्षियों का अंकन आदि प्राकृतिक तथा आखेट आदि सामाजिक दृश्यों को स्थान मिला इसके पश्चात् युग्मों और मण्डलियों का प्रचार बढ़ा । कापालिक साधुओं और कौल-कापालिकों की नीतियों के फलस्वरूप मण्डलियो' का प्रचार प्रायः कम हो गया लेकिन युग्मों का अंकन बहुत बढ़ गया । उस समय § ई० दसवीं से तेरहवीं शती तक § मदनिकों ,अप्सराओं और सुर-सुन्दरियों के अंकन बहुत लोकप्रिय हुये । इन्हें प्रसाधन ,पत्र लेखन ,कन्दुक-क्रीडा आदि के बहाने अनेक प्रकार की आकर्षक मुद्राओं में प्रदर्शित किया जाने लगा । स्थिति यहाँ तक बढ़ गयी कि मंदिर के शान्त और पवित्र वातावरण में काम-शास्त्र के विविध आसनों का मूर्तिगत प्रयोग होने लगा । जैसे खजुराहो, कोणार्क, भुवनेश्वर आदि स्थानों पर । लेकिन जहाँ तक देवगढ़, चाँदपुर,दुधई,सेरोनजी और बानपुर आदि जनपद ललितपुर के जैन तीर्थ कलाकेन्द्रों का प्रश्न है वहाँ उक्त स्थिति

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें , ले० कमलेश कुमार , पृ० 53 .
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चाँदपुर-दुधई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा , पृ० 69 .

अपने प्रारंभिक रूप में ही आकर रह गयी । यहाँ मदनिकाओं और सुर-सुन्दरियों आदि के अंकन बहुत मिलते हैं लेकिन युग्मों के कम । कुछ युग्म संभोग मुद्रा में भी दिखाये जाते हैं, पर उनकी मूर्तियों का आकार कहीं भी पाँच-छह इंच से अधिक नहीं है ।[1]

युग्म –

देवगढ़ में निम्न युग्म मूर्तियाँ प्राप्त हैं –[2]

साहू जैन संग्रहालय में प्रेमासक्त युग्मांकित एक फलक सुरक्षित है । इसमें प्रेमी और प्रेमिका का शारीरिक लावण्य तो आकर्षक है ही, उनकी भाव-पूर्ण किन्तु संयत मुद्रा और स्नेहाधीन दृष्टि भी उनके पारस्परिक अनुराग को व्यक्त कर रही है । [दे० चित्र सं० 99-100]

मंदिर सं० 11 के दूसरी मंजिल के बायें पक्ष, मंदिर सं० 12 के प्रदक्षिणापथ तथा गर्भगृह के प्रवेश-द्वारों पर, जैन चहारदीवारी, मंदिर सं० 18, 28 तथा मंदिर सं० 12 के सामने पड़े अवशेषों आदि में प्रेमासक्त युग्मों के कुछ अंकन प्राप्त होते हैं । ये अपनी प्रेमिका के प्रायः स्तन स्पर्श करते हुए दिखाये गये हैं जब कि कुछ स्थानों [मंदिर सं० 4 और मंदिर सं० 12 के द्वारों में] पर वे एक दूसरे को प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहार रहे हैं और प्रेमालाप भी कर रहे हैं ।

देवगढ़ में मंदिर सं० 11 के दूसरे खण्ड के महामण्डप के प्रवेशद्वार पर बायें एक ऐसा युग्म भी प्राप्त होता है जिसे सम्भोग मुद्रा में अंकित किया गया है [दे० चित्र सं० 101]

पानपुर के मंदिर सं० 3 के बाह्य भित्ति पर आलों की आकृति वाले आयतों में तथा मंदिर सं० 5 [सहस्त्रकूट चैत्यालय] के बाह्य भित्ति पर युग्म अंकित हैं ।[3]

चाँदपुर में शान्तिनाथ के द्वितीय मंदिर में मुख्य मूर्ति के पादपीठ के दाहिनी शिलापट्ट पर सबसे नीचे एक पुरुष-स्त्री की अभंगी मुद्रा में युग्म

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 102.
2- वही वही पृ० 102-103.
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र पानपुर, ले० कैलाश मड़बैया, पृ० 20-21.

अपने प्रारंभिक रूप में ही आकर रह गयी । यहाँ मदनिकाओं और सुर-सुन्दरियों आदि के अंकन बहुत मिलते हैं लेकिन युग्मों के कम । कुछ युग्म संभोग मुद्रा में भी दिखाये जाते हैं, पर उनकी मूर्तियों का आकार कहीं भी पाँच-छह इंच से अधिक नहीं है । [1]

युग्म -

देवगढ़ में निम्न युग्म मूर्तियाँ प्राप्त हैं - [2]

साहू जैन संग्रहालय में प्रेमासक्त युग्मांकित एक फलक सुरक्षित है । इसमें प्रेमी और प्रेमिका का शारीरिक लावण्य तो आकर्षक है ही, उनकी भाव-पूर्ण किन्तु संयत मुद्रा और स्नेहाधीन दृष्टि भी उनके पारस्परिक अनुराग को व्यक्त कर रही हैं । [दे० चित्र सं० 99-100]

मंदिर सं० 11 के दूसरी मंजिल के बायें पक्ष, मंदिर सं० 12 के प्रदक्षिणापथ तथा गर्भगृह के प्रवेश-द्वारों पर, जैन चहारदीवारी, मंदिर सं० 18, 28 तथा मंदिर सं० 12 के सामने पड़े अवशेषों आदि में प्रेमासक्त युग्मों के कुछ अंकन प्राप्त होते हैं । ये अपनी प्रेमिका के प्रायः स्तन स्पर्श करते हुए दिखाये गये हैं जब कि कुछ स्थानों [मंदिर सं० 4 और मंदिर सं० 12 के द्वारों में] पर ये एक दूसरे को प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहार रहे हैं और प्रेमालाप भी कर रहे हैं ।

देवगढ़ में मंदिर सं० 11 के दूसरे खण्ड के महामण्डप के प्रवेशद्वार पर बायें एक ऐसा युग्म भी प्राप्त होता है जिसे सम्भोग मुद्रा में अंकित किया गया है [दे० चित्र सं० 101]

थानपुर के मंदिर सं० 3 के बाह्य भित्ति पर आलों की आकृति वाले आयतों में तथा मंदिर सं० 5 [सहस्त्रकूट चैत्यालय] के बाह्य भित्ति पर युग्म अंकित हैं । [3]

चाँदपुर में शान्तिनाथ के द्वितीय मंदिर में मुख्य मूर्ति के पादपीठ के दाहिनी शिलापट्ट पर सबसे नीचे एक पुरुष-स्त्री की उभंगी मुद्रा में युग्म

1- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 102.
2- वही वही पृ० 102-103.
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र थानपुर, ले० कैलाश मड़बैया, पृ० 20-21.

मूर्ति अंकित है । [1]

मण्डलियाँ -

जनपद ललितपुर में अनुष्ठानों ,सामाजिक उत्सवों , विभिन्न आनन्ददायी अवसरों आदि पर नृत्य , वाद्य और संगीत की मण्डलियाँ सक्रिय रहती थीं । यहाँ इनका मूर्ति अंकन प्राप्त होता है ।

नृत्य मण्डली -

देवगढ़ में जैन चहारदीवारी की भीतरी [पश्चिमी] दीवार में प्रवेश-द्वार के दक्षिण में नृत्य मण्डली का बहुत सुन्दर अंकन हुआ है। [दे० चित्र सं० 88] वाद्य यंत्रों के लय और ताल पर पादविक्षेप करती हुयी नर्तकियों की हस्तमुद्रायें एवं मुखाकृतियाँ दर्शनीय हैं । इसी चहारदीवारी में ही नृत्य मण्डली का एक और प्रभावशाली अंकन है ।[2]

मंदिर सं० 12 के अर्धमण्डप के तोरणों पर नृत्य मण्डलियों के बहुत सुन्दर आलेखन हुए हैं ।[3]

देवगढ़ के नृत्यमण्डलियों में अनुराग में सराबोर पुरुष वर्ग भी कभी वाद्य देता था , तो कभी नृत्य में अपनी प्रेयसियों का साथ । यहाँ नृत्य मण्डलियों के अन्य अंकन मंदिर सं० 4 ,11, 22 आदि के द्वारों पर देखे जा सकते हैं, जिनमें नृत्यमग्न स्त्री-पुरुषों के भावपूर्ण औरसुरुचिसम्पन्न अंकन हुए हैं । [4]

बानपुर में मंदिर सं० 3 के बाह्य भित्तियों पर आयतों और छोटे-छोटे शिलाखण्डों पर नृत्यांगनाओं की मूर्तियाँ अंकित हैं ।[5]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक :जैन धर्म के उत्कर्ष में पौरपुर-दुबई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा , पृ० 68-69 .
2- देवगढ़ की जैन कला ,ले० भागचन्द्र जैन . पृ० 103-104 .
3- वही वही पृ० 103 .
4- वही वही पृ० 103-104 .
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैनविशेषांक:अतिशय जैन बानपुर, ले० कैलाश मड़बैया . पृ० 20 .

सेरोनजी के संग्रहालय की बड़ी दालान में एक नृत्यांगना मूर्ति अंकित है जिसके पैरों की पायलों के घुंघरू मानो बजने को हैं करधनी, अंगिया तथा अंगिया के डोरे की गठान तक संगतराश ने बखूबी तराशी है। हाथों में कंगन, बाजूबन्द और गले में हार है।[1]

दुबई में आदिनाथ मंदिर के मण्डप के चारों स्तंभों के ऊपर के शिलापट्टों पर नृत्यादि की विभिन्न मुद्राओं युक्त मूर्तियाँ अंकित हैं।[2]

वाद्य मण्डली -

वाद्य मण्डलियों के अत्यन्त कलामय एवं समृद्ध अंकन देवगढ़ की जैन कला में उपलब्ध होते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही इस प्रकार की मण्डलियों में सम्मिलित पाये गये हैं। यहाँ की मण्डलियों में झांझ, मजीरा, मृदंग, ढोलक, वीणा, इकतारा, तुरही, तम्बूरा, घंटा, शंख आदि अनेक वाद्य यंत्र प्रयुक्त पाये जाते हैं।[3]

संगीत मण्डली -

देवगढ़ में संगीत मण्डलियों के अनेक कलापूर्ण अंकन प्राप्त होते हैं। मंदिर सं० 12 के अर्धमण्डप [दे० चित्र सं० 98], जैन चहारदीवारी में जड़े हुए शिलाफलकों पर समृद्ध संगीत मण्डलियों के अंकन प्राप्त होते हैं [दे० चित्र सं० 52, 88]। संगीत मण्डलियों के और भी बहुत से दृश्य देवगढ़ में अंकित मिलते हैं।[4]

दुबई में आदिनाथ के मंदिर के मण्डप के चारों स्तंभों में ऊपर के शिलापट्टों पर संगीत की विभिन्न मुद्राओं युक्त मूर्तियाँ अंकित हैं।[5]

इनके अतिरिक्त पशु-पक्षियों और प्रकृति चित्रण के दृश्यों की मूर्तियाँ भी यथा स्थान निर्मित की गयी हैं।[6]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी, ले० नाथूराम जैन राकेश, पृ० 39.
2- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में पांडुपुर-दुबई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा, पृ० 69.
3- देवगढ़ की जैन कला, ले० भागचन्द्र जैन, पृ० 104.
4- वही वही वही पृ० 104.
5- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में पांडुपुर-दुबई का योगदान, ले० महेन्द्र वर्मा, पृ० 69.
6- देवगढ़ की जैन कला, ले० भाग चन्द्र जैन, पृ० 113-117.

===========

अध्याय - 7

जनपद ललितपुर के जैन मंदिर क्षेत्रों में पर्यटन विकास की सम्भाव्यता ।

जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों की स्थिति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यहाँ के विभिन्न स्थानों ‖देवगढ़, चाँदपुर-जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोन, सेरोनजी, गिरार, ललितपुर ‖ में भिन्न भिन्न समयों में अनेक जैन मंदिर निर्मित करवाये गये थे, जिनमें आज भी कुछ की हालत ठीक है लेकिन कुछ जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद हैं । यहाँ के जैन मंदिर धार्मिक, ऐतिहासिक और कलात्मक महत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं । जैनियों के अतिरिक्त यहाँ हिन्दुओं के धार्मिक केन्द्र स्थल और प्राकृतिक रमणीक स्थल भी दर्शनीय हैं ।

ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्व की पाषाण कला मंदिर और मूर्तियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण जनपद के उपरोक्त स्थल शोधकर्ताओं, तीर्थयात्रियों तथा पर्यटकों के लिए रुचिवर्धक हैं तथा पर्यटन विकास की उपलब्ध संभावनायें रखते हैं । परन्तु पर्यटन विकास सम्बन्धी अवरोध [जैसे - पर्यटक आवास, सुगम आवागमन, मनोरंजन तथा अन्य सुविधाओं का न होना] ही यहाँ के विकास में सबसे बड़ी बाधा है । अतः यह आवश्यक है कि पर्यटन विकास के मार्ग में बाधक मूलभूत अवरोधों की गम्भीरता से अध्ययन करके एक ऐसी विकास योजना बनायी जाए जो पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ ही साथ यहाँ के निवासियों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हो सके ।

जनपद ललितपुर के इन महत्वपूर्ण जैन मंदिर क्षेत्रों का उल्लेख साहित्य में नगण्य रहा है और अन्य स्रोत भी इस विषय में मौन रहे हैं । उपलब्ध अभिलेख ही इनके विषय में कुछ प्रकाश डालते हैं । धीरे धीरे

विद्वानों का ध्यान इनकी कला और संस्कृति के अध्ययन की ओर गया लेकिन देवगढ़ के अतिरिक्त अन्यत्र इनका कोई विशेष ध्यान नहीं गया है । देवगढ़ के अध्ययन , सुरक्षा व विकास के लिये विभिन्न स्तरों पर प्रयत्न हुए हैं ।

शासकीय प्रयत्नों के अन्तर्गत देवगढ़ के पुरातात्त्विक महत्व पर सर्वप्रथम श्री सैलेक्जेन्डर कनिंघम का ध्यान गया । उन्होंने भारत सरकार की ओर से 1874-75 और 1876-77 ई0 में यहाँ का सर्वेक्षण किया। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने दशावतार , शान्तिनाथ तथा कुछ अन्य मंदिरों का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित कराया ।[1] इससे देवगढ़ अन्य पुरातात्त्विक महत्व वाले स्थानों की भाँति अपने खण्डित ऐतिहासिक कड़ी से पुनः जुड़ गया । उनके पश्चात् डा0 ए0 फ्यूहरर ने 1891 ई0 में यहाँ का विवरण प्रकाशित कराया।[2] 1899 ई0 में श्री पूर्ण चन्द्र मुखर्जी ने एक पुस्तक में देवगढ़ के स्मारकों का परिचय दिया ।[3] सन् 1908 ई0 में इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया जिल्द ग्यारहवीं और 1909ई0 में झाँसी गजेटियर प्रकाशित हुए , जिनमें देवगढ़ का संक्षिप्त विवरण है । भारत के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण की 1914-15 ई0 की वार्षिक रिपोर्ट के प्रथम भाग में सर जान मार्शल ने इसका कुछ पंक्तियों में उल्लेख किया । सन्1915 की वार्षिक प्रगति की रिपोर्ट में यहाँ के सात शिलालेखों का विवरण प्रकाशित हुआ। 1916ई0 की वार्षिक प्रगति की रिपोर्ट में श्री श्री एच0 हरग्रीव्स ने 13 शिलालेखों का विवरण प्रकाशित किया ।

शासन ने अपने नोटीफिकेशन सं0 958 -एम0-367-47-111 दिनांक 10 सितम्बर , 1917 द्वारा देवगढ़ किले के जैन मंदिरों को सन् 1904 के"एन्शियेन्ट

1- ए0एस0आई0आर0 टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा इन 1874-75 एण्ड1876-77ई0, जिल्द 10 : ए0 कनिंघम , पृ0 100-110 .

2- ए0एस0आई0आर0 , दि मोनूमेन्टल एन्टीक्विटीज़ एण्ड इन्सक्रिप्शन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ एण्ड अवधः ए0 फ्यूहरर, पृ0 119-121 .

3- रिपोर्ट आन दि एन्टिक्विटीज़ इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, जिल्द पहली: पी0सी0 मुखर्जी.

मोनुमेन्ट्स प्रिज़र्वेशन एक्ट 7 " के अनुसार संरक्षित घोषित किया और नोटि-फिकेशन नं0 1162 -एम0-367-47-111, दिनांक 1 नवम्बर,1917 द्वारा अपने उक्त आदेश की सम्पुष्टि की तथा 1 नवम्बर,1917 को भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया ।[1] और राय -बहादुर दयाराम साहनी को वहाँ सर्वेक्षण के लिए भेजा । दिनांक 22-11-1917 ई0 से 17-12-1917 ई0 तक उन्होंने सर्वेक्षण करके स्मारकों,मूर्तियों और सैकड़ों अभिलेखों का महत्वपूर्ण विवरण तैयार किया ।[2] इन्होंने वहाँ के स्मारकों के जीर्णोद्धार के लिए प्रान्तीय और केन्द्रीय शासनों से कुछ राशि स्वीकृत करायी परन्तु जंगल की सफाई और स्मारकों के प्रारंभिक जीर्णोद्धार के अतिरिक्त कुछ न हो सका । जैसा कि सर जान मार्शल ने लिखा है कि इस ज़िले में अकाल पड़ जाने से कार्य को उस समय तक के लिए स्थगित कर देना पड़ा जब तक कोई अनुकूल स्थिति न आये । [3] इस बीच श्री डी0बी0 स्पोनर ने भी 1917-18 ई0 की वार्षिक रिपोर्ट के प्रथम भाग में इसकी चर्चा की ।[4]

सामाजिक प्रयत्नों के अन्तर्गत ललितपुर के कर्मठ युवक श्री परमानन्द वर्मा ने देवगढ़ के जीर्णोद्धार आदि में गहरी दिलचस्पी लेना प्रारंभ किया । उन्होंने शासन और समाज के सहयोग से इस क्षेत्र की दीर्घकाल तक सेवा की । इन्हीं के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप सन् 1918ई0 में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ रक्षा समिति ने इस क्षेत्र का प्रबन्ध अपने निर्देशन में ले लिया। सन् 1930ई0 में जाखलौन ,ललितपुर आदि के जैनों ने एक समिति गठित करके इस क्षेत्र का प्रबंध उपरोक्त समिति से अपने हाथ में ले लिया ।[5] इस समिति का

1- एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट,1920 :दयाराम साहनी परिशिष्ट"क" पृ014 .
2- ए0प्रो0रि0,हि,पु,भा,ना,स,द्वितीय खण्ड,1918:दयाराम साहनी,पृ05+80.
3- ए0एस0आई0आर0,1919-20:सर जान मार्शल, पृ0 6 .
4- ए0एस0आई0,ए0रि0 ,1917-18 प्रथम भाग:डी0बी0स्पूनर,पृ0 7,32 .
5- इसका पंजीयन ,धारा 21,सन् 1860 के अंतर्गत रजिस्ट्रार,ज्वाइंट स्टाक कं0, लखनऊ [उ0प्र0 द्वारा पंजीयन क्रमांक 26 ,30-36 द्वारा किया गया ।

नाम " श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी " रखा गया । इस संस्था ने भारत सरकार के पुरातत्व विभाग से दिनांक 4-3-1935ई0 को जैन स्मारकों को[1] तथा वन विभाग से दिनांक 11-6- 1938 ई0 को जैन स्मारकों के आस-पास की भूमि[2] का अधिकार प्राप्त किया ।

सर्वप्रथम इस क्षेत्र की दशा देखकर आगरा निवासी श्री गुलजमल उत्तमचंद जी बैनाड़ा ने इसका जीर्णोद्धार कराया तथा क्षेत्र पर बिखरी मूर्तियों को एक परकोटे में लगा कर उन्हें सुरक्षित किया।[3]

शोध ग्रंथों, अभिलेखों के अंतर्गत माधवस्वरूप वत्स और श्रीमती माधुरी देसाई ने देवगढ़ के दशावतार मंदिर पर ग्रंथ लिखे । सर्वश्री डा0 ज्योतिप्रसाद जैन ,डा0उमाकान्त प्रेमानन्द शाह , डा0कामताप्रसाद जैन, डा0 हीरालाल जैन, डा0 क्लाउज ब्रुन, पं0 परमानन्द जैन शास्त्री ,डा0कृष्ण-दत्त बाजपेयी , डा0 भाग चन्द्र जैन आदि ने विभिन्न शोध ग्रंथों और लेखों के माध्यम से देवगढ़ की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को उजागर किया। इनके अतिरिक्त प्रेमसागर की "देवगढ़ पूजन" , श्री कल्याणकुमार शशि का देवगढ़ काव्य" और श्री हरिप्रसाद हरि की "देवगढ़ " नामक काव्य में पुस्तिकायें और डा0 वृन्दावनलाल वर्मा का "देवगढ़ की मुस्कान" नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं ।

जनपद ललितपुर के कई पुरातात्विक स्थलों पर जैन धर्म से सम्बन्धित सैकड़ों की संख्या में प्रतिमायें सुरक्षित रखी हुयी हैं । इनमें देवगढ़, सेरोनजी ,बानपुर,मदनपुर,पावागिरि,चाँदपुर-जहाजपुर और दुधई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । कुछ समय पूर्व भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण आगरा के अधीक्षक डा0 डी0 आर0 पाटिल के निर्देशन में तकनीकी सहायक श्री ललनमोहन बहलस्वी कन्जरवेटिव असिस्टेंट श्री एस0एस0 सैनी के प्रयत्नस्वरूप चाँदपुर-दुधई से बिखरी प्राचीन मूर्तियाँ एकत्र करके रानी लक्ष्मीबाई महल ,झाँसी संग्रहालय में रख दी

1- श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी के पास इकरारनामें की प्रति मौजूद है उस पर पत्र संख्या आदि नहीं अंकित है किन्तु दिनांक 4 मार्च, 1935ई0अंकित है।
2- वन विभाग नोटीफिकेशन स0 मिसलि0, 702/14-395 दि0 21जून, 1968ई0 के आधार पर दि0 4 अगस्त, 1938 को श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी को जैन मंदिरों की सीमा हेतु लगभग 820एकड़ भूमि वन विभाग द्वारा सौंपी गयी।
3- देवगढ़ दर्शन , ले0 उत्तम चन्द्र राकेश शास्त्री , पृ0 मम निवेदन में पृ0 4.

गयी हैं । यहाँ से करीब 130 जैन धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ संग्रहित की गयी हैं ।[1]

देवगढ़ , एक पर्यटन केन्द्र -

स्वाधीनता के पश्चात् देवगढ़ के पुरावशेषों के महत्व को देखते हुये पुरातत्व विभाग द्वारा यहाँ एक संग्रहालय बनाया गया है तथा एक अन्य §साहू जैन संग्रहालय§ साहू ट्रस्ट की ओर से सन् 1969 में बनाया गया ।[2] वर्ष 1934, 1936, 1939, 1954, 1956, 1965, एवं 1979 में यहाँ मेलों का आयोजन किया गया था ।[3]

वर्ष 1979 में नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ,उ0प्र0,झांसी द्वारा सम्पन्न किये गये आर्थिक एवं सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर देवगढ़ की जनसंख्या 371 थी जब कि देवगढ़ डांग सरकार गैर आबाद था । देवगढ़ के धार्मिक एवं पुरातात्विक स्थल देवगढ़ एवं देवगढ़ डांग ग्रामों में ही पड़ते हैं। पर्यटन सुविधाओं का पूर्णतया अभाव होने के कारण देवगढ़ का विकास पर्यटन स्थल के रूप में सीमित रहा । यहाँ केवल एक धर्मशाला है जिसमें 40 कमरे हैं तथा धर्मशाला में केवल 6 फ्लश शौचालय एवं तीन स्नानगृह हैं । पेय जल की उपलब्धता केवल कुँए द्वारा होतीथी जो प्रायः गर्मी में सूख जाते थे । दैनिक आवश्यकताओं के लिये यहाँ के लोग जाखलौन पर निर्भर रहते थे ,कोई स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं थी । देवगढ़ में एक प्राइमरी स्कूल ,धर्मशाला में एक पुलिस चौकी तथा एक विश्रामगृह भी उपलब्ध थे । पर्यटन सुविधाओं के अभाव के कारण देवगढ़ आने वाले अधिकतर पर्यटक ललितपुर में ही ठहरते रहे हैं । प्रतिदिन चार बसें देवगढ़-ललितपुर मार्ग पर सेवारत थीं । इनमें से प्रतिदिन तीन बसें अपने 6 फेरों द्वारा ललितपुर -देवगढ़ के बीच तथा एक बस अपने दो फेरों द्वारा झांसी-देवगढ़ के बीच आती जाती थी ।[4]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक :झांसी संग्रहालय में जैन मूर्तियां,ले0मदनमोहन बहल, पृ0 47.
2- देवगढ़ दर्शन , ले0 उत्तम चन्द्रसेन शास्त्री पृ0 2.
3- देवगढ़ विकास योजना निर्मात्री झांसी सम्भागीय नियोजक खण्ड,नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ,उ0प्र0 ,झांसी,प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़,पृ010.
4- वही वही पृ0 10-11.

गयी हैं । यहाँ से करीब 130 जैन धर्म से सम्बन्धित मूर्तियाँ संग्रहित की गयी हैं ।[1]

देवगढ़ , एक पर्यटन केन्द्र -

स्वाधीनता के पश्चात् देवगढ़ के पुरावशेषों के महत्व को देखते हुये पुरातत्व विभाग द्वारा यहाँ एक संग्रहालय बनाया गया है तथा एक अन्य §साहू जैन संग्रहालय§ साहू ट्रस्ट की ओर से सन् 1969 में बनाया गया ।[2] वर्ष 1934, 1936, 1939, 1954, 1956, 1965, एवं 1979 में यहाँ मेलों का आयोजन किया गया था ।[3]

वर्ष 1979 में नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ,उ0प्र0,झाँसी द्वारा सम्पन्न किये गये आर्थिक एवं सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर देवगढ़ की जनसंख्या 371 थी जब कि देवगढ़ डांग सरकार गैर आबाद था । देवगढ़ के धार्मिक एवं पुरातात्विक स्थल देवगढ़ एवं देवगढ़ डांग ग्रामों में ही पड़ते हैं। पर्यटन सुविधाओं का पूर्णतया अभाव होने के कारण देवगढ़ का विकास पर्यटन स्थल के रूप में सीमित रहा । यहाँ केवल एक धर्मशाला है जिसमें 40 कमरे हैं तथा धर्मशाला में केवल 6 फ्लश शौचालय एवं तीन स्नानगृह हैं । पेय जल की उपलब्धता केवल कुँए द्वारा होतीथी जो प्रायः गर्मी में सूख जाते थे । दैनिक आवश्यकताओं के लिये यहाँ के लोग जाखलौन पर निर्भर रहते थे ,कोई स्वास्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं थी । देवगढ़ में एक प्राइमरी स्कूल ,धर्मशाला में एक पुलिस चौकी तथा एक विश्रामगृह भी उपलब्ध थे । पर्यटन सुविधाओं के अभाव के कारण देवगढ़ आने वाले अधिकतर पर्यटक ललितपुर में ही ठहरते रहे हैं । प्रतिदिन चार बसें देवगढ़-ललितपुर मार्ग पर सेवारत थीं । इनमें से प्रतिदिन तीन बसें अपने 6 फेरों द्वारा ललितपुर -देवगढ़ के बीच तथा एक बस अपने दो फेरों द्वारा झाँसी-देवगढ़ के बीच आती जाती थी ।[4]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ जैन विशेषांक :झाँसी संग्रहालय में जैन मूर्तियाँ,ले0मदनमोहन बहल, पृ0 47.
2- देवगढ़ दर्शन , ले0 उत्तम चन्द्रशेखर शास्त्री पृ0 2 .
3- देवगढ़ विकास योजना निर्माता झाँसी सम्भागीय नियोजन खण्ड,नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ,उ0प्र0 ,झाँसी,प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़,पृ010.
4- वही वही पृ0 10-11.

एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल, ऐतिहासिक कला केन्द्र एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से मनमोहक होने के कारण देवगढ़ को नियोजित ढंग से विकसित करने की आवश्यकता है। ललितपुर के जिलाधिकारी एवं अध्यक्ष नियंत्रक प्राधिकारी विनियमित क्षेत्र देवगढ़ के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप झाँसी सम्भागीय नियोजक खण्ड नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग, उ0प्र0, झाँसी ने उ0प्र0 [निर्माणकार्यविनियमन] अधिनियम 1958 के अधीन देवगढ़ विकास योजना [1981-91] का निर्माण कर शासन को भेजा है।[1] योजना निम्नवत है :

यद्यपि देवगढ़ मुख्यतः जैन मंदिरों तथा गुप्त काल के दशावतार मंदिर के लिए प्रसिद्ध है, तथापि यह अन्य पर्यटकों तथा आकस्मिक आगुन्तकों के भी आकर्षण का केन्द्र है। प्राचीन ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक महत्व के मंदिरों एवं मूर्तियों के कारण यह स्थान छात्रों, तीर्थ-यात्रियों तथा पर्यटकों के लिए रुचिवर्धक होने के साथ-साथ विकास की भी उज्जवल संभावनायें रखता है। संरक्षित वनों के मध्य उनकी भूमि परिस्थिति जैन मंदिर समूह तथा नीची भूमि दूर दूर तक फैली प्रसिद्ध भूमि बेतवा नदी के साथ मिलकर एक मनमोहक दृश्य उपस्थित करती हैं। जैन मंदिर समूह के दक्षिण में लगभग 100 मीटर नीचे बेतवा नदी के बहाव के मध्य स्थित हरे भरे वृक्षों से आच्छादित टापू प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हैं। देवगढ़ में प्राकृतिक दृश्यों की प्रधानता है तथा यहाँ स्वच्छ भावना विकसित होती है। समुचित पर्यटन सुविधाओं, जैसे पर्यटक आवास, सुरक्षा हेतु पुलिस चौकी, आवागमन, क्रय-विक्रय, पोस्टल तथा बैंकिंग सुविधाओं के साथ साथ सांस्कृतिक व अन्य तत्संबंधी सुविधाओं, जैसे नलों द्वारा पेयजल एवं बिजली का प्राविधान कर देने से इस उपेक्षित स्थान को नवजीवन मिल सकता, जिससे दूर-दूर से अधिकाधिक जैन तीर्थ यात्री तथा अन्य आकस्मिक आगन्तुक व पर्यटक भी यहाँ आकर्षित हो सकते हैं। दशावतार मंदिर के आस-पास का क्षेत्र खुला है जिसे व्यवस्थित रूप से सजाया सकता है। अवांछित विकास को रोकने के लिए यहाँ भूमि नियंत्रण कानून आसानी से लागू किये जा सकते हैं। नये मार्गों के किनारे विश्राम व पिकनिक स्थल आदि के बन जाने से इस पर्यटन केन्द्र को सुसम्पन्न बनाया जा सकता है। जैन मेले के अवसर पर अधिक संख्या में पर्यटक व तीर्थयात्री देवगढ़ आते हैं। परन्तु आने वाले पर्यटकों हेतु कैम्पिंग

1- देवगढ़ विकास योजना : प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 9.

के लिये कोई भूमि निश्चित नहीं है । इसके अलावा पानी और बिजली आदि की सुविधा भी पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हो पाती । अतः मेले के अवसरों पर पानी व बिजली की सुविधाओं का विशेष रूप से सावधान करने की आवश्यकता है। बसों का आवागमन अत्यंत कम है ,जिससे यहाँ आने वाले पर्यटकों को अत्यधिक समय व्यय करना पड़ता है । देवगढ़ में कोई पर्यटक सुविधा उपलब्ध नहीं है । आवास सुविधा निम्न स्तर की है ।[1]

पर्यटकों की वर्तमान प्रवृत्ति -

पर्यटन विभाग उ0 प्र0 द्वारा उपलब्ध कराये गये आँकड़ों के अनुसार 9,250 पर्यटक वर्ष 1978 में देवगढ़ आये । आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1975, 1976 तथा 1977 में क्रमशः 5,050, 6,180 तथा 8,159 पर्यटक देवगढ़ आये । इस प्रकार वर्ष 1975-76 , 1976-77 एवं 1977-78 के दौरान क्रमशः 22.3, 31.9 तथा 15.5 प्रतिशत पर्यटकों की वार्षिक वृद्धि हुयी है । अधिकांश पर्यटक देश के विभिन्न भागों से यहाँ आये । देवगढ़ में स्थानीय पर्यटकों की संख्या कम है। अधिकांश पर्यटक झाँसी व ललितपुर होकर देवगढ़ आते हैं । जैन धर्मशाला,देवगढ़ में उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार वर्ष 1979 में यहाँ रूकने वाले पर्यटकों का औसत समय एक या दो दिन है तथा रूकने वाले पर्यटकों की औसत दैनिक संख्या केवल एक है । देवगढ़ में स्थित जैन धर्मशाला में ठहरने वाले पर्यटकों की संख्या वर्ष 1979 में कुल 345 थी ,जिसका मासिक विवरण निम्न सारिणी में दर्शाया गया है ।[2]

सारिणी[3]- देवगढ़ में ठहरने वाले पर्यटकों का मासिक विवरण:वर्ष 1979.

माह	पर्यटक	माह	पर्यटक
जनवरी	33	जुलाई	20
फरवरी	29	अगस्त	21
मार्च	21	सितम्बर	22
अप्रैल	11	अक्टूबर	107
मई	10	नवम्बर	36
जून	12	दिसम्बर	23

1- देवगढ़ विकास योजना: प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़ ,पृ0 11 .
2- वही वही पृ0 12 .
3- जैन धर्मशाला रजिस्टर,देवगढ़ ,1979 .

पर्यटक सुविधा तथा इन्फ्रास्ट्रक्चर के अभाव के कारण पर्यटक प्रायः व्यक्तिगत कारों से आते हैं । कुछ पर्यटक बसों द्वारा भी आते हैं जो ललितपुर से देवगढ़ के बीच चलती है ।[1]

भावी पर्यटकों का अनुमान -

विगत पर्यटकों के बारे में कोई तथ्य , सही आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण भावी पर्यटकों का अनुमान लगाना कठिन है, फिर भी उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा प्रकाशित "देवगढ़ क्षेत्र पर्यटन विकास परियोजना, 1979" के अनुसार पर्यटकों की औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 21 प्रतिशत है। तदनुसार यह अनुमान लगाया गया है कि भावी वर्ष 1981 तक यह वृद्धि दर जारी रहेगी । पर्यटन सुविधाओं के विकास हो जाने के पश्चात् भावी दशक में यह वृद्धि दर बढ़ जाने की सम्भावना है । उपरोक्तानुसार यह अनुमान किया जाता है कि भावी दशक 1981-91 के दौरान पर्यटकों की वृद्धि दर 250 प्रतिशत हो जायेगी । तदनुसार वर्ष 1981 तक लगभग 15,000 तथा वर्ष 1991 तक लगभग 52600 पर्यटक देवगढ़ में आने का अनुमान लगाया गया है ।[2]

देवगढ़ के 125 कि0मी0 की दूरी पर स्थित झाँसी एक अत्यन्त विकसित नगर है, अतः आशा की जाती है कि अत्यधिक संख्या में आकस्मिक आगन्तुक पिकनिक करने तथा प्राकृतिक सुषमा के अवलोकन हेतु देवगढ़ आयेंगे । निम्नलिखित सारिणी देवगढ़ में आने वाले पर्यटकों का वृद्धिक्रम प्रस्तुत करती है।[3]

सारिणी :- देवगढ़ में आने वाले पर्यटकों का वृद्धि क्रम §1975-91§

वर्ष	पर्यटकों की संख्या	प्रतिशत
1975	5,050	-
1976	6,180	22.3
1977	8,150	31.9
1978	9,250	15.5
1989	15,000	21.0
1991	52,600	250.0

1- देवगढ़ विकास योजना §1981-1991§प्रकाशक नियंत्रक प्राधिकारी, देवगढ़, जनपद ललितपुर पृ0 12.

2- वही वही " पृ0 13.

देवगढ़ मेला - वर्तमान तथा भावी पर्यटन -

देवगढ़ में जैन समिति द्वारा वर्ष 1934, 1936, 1939, 1954, 1956, 1965 एवं 1979 में मेले आयोजित किए गये थे । उत्तर प्रदेश क्षेत्रीय पर्यटन कार्यालय, झाँसी के "देवगढ़" क्षेत्र पर्यटन विकास परियोजना प्रतिवेदन 1979-80 " के अनुसार वर्ष 1979 में आयोजित मेले के अवसर पर 7,000 पर्यटक देवगढ़ आये थे । देवगढ़ जैन मेला प्रबंध समिति से हुए वार्तालाप के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि अधिकतर पर्यटक जो क्षेत्र के बाहर से मेले के अवसर पर यहाँ आये तीन दिन तक देवगढ़ में ठहरे । अनुमानित है कि ऐसे पर्यटक लगभग 6000 अर्थात आने वाले पर्यटकों का 10 प्रतिशत थे । मेले में आने वाले अधिकतम पर्यटक आस-पास के क्षेत्र के थे जो अधिकांश संख्या में " गजरथ महोत्सव" [आखिरी दिन] वाले दिन देवगढ़ आते हैं तथा यहाँ नहीं ठहरते । अनुमानित है कि देवगढ़ में पर्यटन सुविधाओं के विकास के फलस्वरूप आयोजित मेले के अवसर पर आने वाले पर्यटकों की संख्या वर्ष 1991 में लगभग 1,00,000 हो जायेगी । यह अपेक्षित है कि साधारण पर्यटन सुविधाओं के प्रावधान के साथ साथ मेले के दिनों के लिए अतिरिक्त प्रस्तावित सुविधाओं जैसे शिविर स्थल, पानी, बिजली व पार्किंग की व्यवस्था के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों से आने वाले पर्यटकों में वृद्धि होगी । अतः अनुमान है कि ऐसे मेले के दिनों में देवगढ़ ठहरने वाले पर्यटकों की संख्या लगभग 15,000 अर्थात कुल आने वाले पर्यटकों का लगभग 15 प्रतिशत हो जायेगा ।[1]

वर्तमान एवं प्रस्तावित पर्यटक सुविधायें :

वर्तमान समय में देवगढ़ में स्थित जैन धर्मशाला में 40 मध्यमवर्गी एवं निम्न आय वाले पर्यटकों हेतु ठहरने की सुविधा है । यहाँ वन विभाग के विश्राम गृह में केवल 4 व्यक्तियों के ठहरने की सुविधा उपलब्ध है। वर्ष 1991 में प्रतिदिन आनेवाले कुल पर्यटक लगभग 230 होंगे । अनुमानित है कि लगभग 30 % अर्थात 69 पर्यटकों हेतु रात को देवगढ़ में ठहरने के लिए पर्यटक सुविधाओं की आवश्यकता पड़ेगी । यह भी अपेक्षित है कि विदेशी पर्यटक भी अधिकतर मध्यम

1- देवगढ़ विकास योजना [1981-1991] प्रकाशक नियंत्रक प्राधिकारी देवगढ़ जनपद ललितपुर, पृ0 13-14.

एवं उच्च आय वर्ग के होते हैं वे भी देवगढ़ आयेंगे । ठहरने की सुविधाओं का प्रावधान पर्यटकों के विभिन्न आय वर्गों के आधार पर किया गया है जिसका विवरण निम्न सारिणी में दर्शाया गया है :

सारिणी : वर्ष 1991 में अनुमानित पर्यटकों के लिये ठहरने की सुविधा

आय वर्ग	प्रतिशत	शैय्याओं की संख्या
उच्च आय वर्ग	30	22
उच्च -मध्यम आय वर्ग	25	18
निम्न -मध्यम आय वर्ग	25	18
निम्न आय वर्ग	20	14
	100	72

टिप्पणी

उच्च एवं उच्च मध्यम आय वर्ग टूरिस्ट लॉज में ठहरेंगे ।

निम्न -मध्यम एवं निम्न वर्ग धर्मशाला में ठहरेंगे ।

उच्च एवं मध्यम आय वर्ग के पर्यटकों के लिए ठहरने की सुविधा के शीघ्र प्रावधान करने की अत्यावश्यकता है । वर्तमान समय में यह सुविधा जैन धर्मशाला में सुधार करके प्रदान की जा सकती है तथा निकट भविष्य में 32 शैयाओं वाले पर्यटक आवास गृह के निर्माण का प्रावधान है । भविष्य में पर्यटकों की संख्या की बढ़ती हुयी आवश्यकता के अनुसार आवासगृह में शैयाओं के बढ़ाने की क्षमता रखी गयी है ।[1]

शिविर स्थल -

वर्तमान समय में शिविर स्थल हेतु कोई स्थान निर्धारित नहीं है अतः जहाँ पर स्थान मिलता है वहीं पर्यटक ठहर जाते हैं । 9 वर्गमीटर प्रति

1- देवगढ़ विकास योजना {1981-1991} :प्रकाशक -नियंत्रक प्राधिकारी देवगढ़, जनपद ललितपुर पृ0 14-15 .

ठहरने वाले पर्यटक की दर से 15,000 पर्यटकों हेतु लगभग 13.5 हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता पड़ेगी। अतः शिविर स्थल हेतु 7 हेक्टेयर भूमि 20 मीटर चौड़े बाई पास मार्ग बस्ती के पश्चिम की ओर एवं 6.5 हेक्टेयर भूमि बाई पास मार्ग पर दशावतार मंदिर के उत्तर की ओर आरक्षित रखने की आवश्यकता है।[1]

विकास प्रस्ताव -

नियोजन की रूप रेखा - जैन मंदिर समूह बेतवा नदी के तल से लगभग 100 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं। वर्तमान वनस्पति एवं आस-पास का क्षेत्र जैन मंदिर समूह के लिए अद्भुत पर्यावरण प्रदान करता है। दशावतार मंदिर कम ऊँचाई पर स्थित है तथा इसका विकास सुन्दरीकरण करके किया जा सकता है। नियोजन की रूप रेखा का मुख्य उद्देश्य पुरातात्विक संस्थाओं एवं स्मारकों को सुरक्षित रखने के साथ साथ उसका विकास करना है। वर्तमान गाँव की बस्ती एवं दशावतार मंदिर के इर्द गिर्द का क्षेत्र जो देवगढ़-ललितपुर मार्ग के पश्चिम की ओर स्थित है, भावी विकास हेतु उपयुक्त है।[2]

पर्यटन सुविधायें एवं अव स्थापना -

वर्ष 1991 के लिए पर्यटकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुविधाओं का प्रावधान किया गया है, जो पर्यटकों के साथ साथ स्थानीय जन-संख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करेगी।[3]

क- स्वागत केन्द्र एवं संबंधित सुविधायें :

1- स्वागत कक्ष : एक अच्छी प्रकार से विकसित सूचना केन्द्र जिसमें सभी संबंधित सूचनायें जैसे बैठने के लिये स्थान, शौचालय इत्यादि उपलब्ध हो, के लिये 90 वर्ग मीटर का क्षेत्र प्रस्तावित है।

2- रेस्टोरेन्ट :- एक रेस्टोरेन्ट जिसमें विभिन्न प्रकार के भोजन विभिन्न स्थानों से आने वाले पर्यटकों के लिए उपलब्ध हो का प्राविधान है। इसमें 50 व्यक्तियों के

1- देवगढ़ विकास योजना {1981-1991} प्रकाशक नियंत्रक प्राधिकारी देवगढ़, जनपद ललितपुर, पृ० 15.

2- वही वही पृ० 15.

3- वही वही पृ० 16-19.

एक साथ बैठने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए 170 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान रखा गया है ।

3- दुकानें : दस दुकानों हेतु 15 वर्ग मीटर प्रति दुकान की दर से 150वर्ग मीटर तल क्षेत्र प्रस्तावित है ।

4- पार्किंग :- 30 वर्ग मीटर प्रति वाहन की दर से 46 वाहनों के लिए 1380 वर्ग मीटर पार्किंग का प्रावधान है, जिसमें स्मारकों के समीप की जाने वाली क्षणिक पार्किंग भी सम्मिलित है । दस वाहनों के लिए दशावतार मंदिर के पास 16 वाहनों हेतु पर्यटक आवास गृह के सुविधाओं के समीप, 10 वाहनों के लिए जैन मंदिर समूहों के पास, 5 वाहनों के लिए बाराह मंदिर व 5 वाहनों के लिए राजघाटी के समीप पार्किंग का प्रावधान है ।

§ख§ पर्यटक आवास गृह :

उच्च एवं उच्च मध्यम आय वर्ग के पर्यटकों के लिए ठहरने की सुविधाओं का प्रावधान पर्यटक आवास गृह में किया गया है । इसमें एक स्वागत कक्ष तथा खाने पीने के लिए एक हाल का प्रस्ताव है । आवास गृह में विभिन्न प्रकार के एक शैया व दो शैयाओं वाले कमरों का संलग्न स्नान एवं शौचालयों की सुविधाओं के साथ प्रावधान रखा गया है । पर्यटक आवास गृह के विकास की रूप रेखा ऐसी रखना अपेक्षित है कि यदि भविष्य में इसके विस्तार की आवश्यकता पड़े तो कोई कठिनाई न हो । इसमें कुल 32 शैयाओं का प्रावधान रखा गया है तथा कुल 1.20 हेक्टेयर भूमि प्रस्तावित है ।

§ग§ ट्रेलर पार्किंग:- ट्रेलर पार्किंग हेतु 150 वर्ग मीटर प्रति ट्रेलर पार्किंग की दर से 1500 वर्ग मीटर भूमि का प्रावधान है ।

§घ§ संग्रहालय : आस-पास के क्षेत्र की विभिन्न प्रकार की मूर्तियों व शिलालेखों को भली भांति सुरक्षित रखने के लिए वर्तमान संग्रहालय स्थल को सम्मिलित करते हुए कुल 750 वर्ग मीटर भूमि प्रस्तावित है ।

§ङ.§ अन्य सुविधायें : पर्यटकों व स्थानीय जनसंख्या के लिए निम्नलिखित सुविधाओं का प्रावधान रखा गया है :-

अ- बैंक हेतु 108 वर्ग मीटर एवं पोस्ट आफिस हेतु 108 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है ।

ब- पुलिस पोस्ट हेतु 400 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है ।

स- डिस्पेन्सरी के लिए 400 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है ।

द- जूनियर बेसिक स्कूल का स्तर बढ़ा कर सीनियर बेसिक स्कूल के रूप में विकसित करने के लिये कुल 50 हेक्टेयर भूमि का प्रावधान है ।

य- विभिन्न सुविधाओं एवं पुरातात्विक विभाग में कार्य करने वाले व्यक्तियों एवं उनके परिवारों के लिये एक हेक्टेयर भूमि पर 32 स्टाफ क्वार्टर बनाने का प्रावधान किया गया है ।

{घ} सुन्दरीकरण :

सम्पूर्ण पर्यटन विकास क्षेत्रों में सुन्दरीकरण एक योजना के आधार पर पुरातात्विक स्थलों के आस-पास खूबसूरत एवं सौम्य वातावरण कायम रखने के लिए प्रावधान रखा गया है । वर्तमान प्रस्तावित मार्गों, स्मारकों तथा पर्यटक आवास गृह के साथ विभिन्न प्रकार के वृक्षों के लगाने का प्रावधान है । स्वागत कक्ष, पर्यटक आवास गृह एवं रेस्टोरेन्ट के इर्द-गिर्द छायादार एवं फूलों-फलों वाले वृक्षों के लगाने का प्रस्ताव रखा गया है । दशावतार मंदिर में जाने वाले मार्ग को पत्थरों से पक्का करने साथ-साथ भी छायादार वृक्ष लगाने तथा भलीभांति सुन्दरीकरण करने का प्रावधान है । स्टाफ क्वार्टरों के आस-पास भी वृक्ष लगाने का प्रस्ताव रखा गया है । बेंचों एवं अन्य सामुदायिक सुविधाओं को विभिन्न स्थानों पर पर्यटकों के लिये स्थापित किया जायेगा। देवगढ़ में स्थित तालाब को विकसित करने के साथ-साथ उसके इर्द-गिर्द छायादार वृक्षों का प्रावधान है ।

ड- उपयोगितायें एवं सेवायें -

देवगढ़ में इस समय पेय जल तथा बिजली की सुविधा उपलब्ध नहीं है । एकीकृत पर्यटन विकास की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उपयोगी सेवाओं का प्राथमिकता के स्तर पर प्रावधान किया जाये । पर्यटन समूह, मार्गों तथा सुन्दरीकृत क्षेत्रों में विद्युत सुनिश्चित की जाये । पेय जल की निरन्तर सुविधा सुनिश्चित करने हेतु एक समुचित-क्षमता का ओवर हेड टैंक बना कर रखा सही है पानी जमा किया जाए । 20 गैलन प्रति व्यक्ति प्रति दिन की दर से 24,600 गैलन

प्रति दिन की जलपूर्ति आवश्यकता का गणना किया गया है जो स्थानीय जन-संख्या तथा पर्यटकों के लिये वर्ष 1991 तक के लिये पर्याप्त होगी । इसके अतिरिक्त मेलों के अवसरों पर भी पेय जल तथा बिजली का सुविधा आवश्यकतानुसार की जाए। प्रत्येक प्रस्तावित सुविधा तथा पर्यटन समूह के लिए पृथक पृथक टैंक तथा सोक-पिट बनाये जायें ।

§ज§ प्रस्तावित मार्ग : -

1- दशावतार मंदिर तथा देवगढ़ की वर्तमान बस्ती के पश्चिम से होते हुए एक बीस मीटर चौड़ा बाई पास मार्ग प्रस्तावित किया गया है जो वन विश्रामगृह के निकट ललितपुर-देवगढ़ मार्ग से मिलेगा ।

2- वर्तमान स्थानीय कच्चे मार्गों को पक्का करके उन्हें वर्तमान तथा प्रस्तावित मार्गों से जोड़ने का प्रस्ताव है ।

3- पहाड़ पर स्थित जैन समूह से प्रारंभ करके किले की दीवार के साथ तथा नाहर घाटी, राजघाटी , सिद्ध गुफा व वाराह मंदिर के पास से होते हुए एक 12 मीटर चौड़ा वन मार्ग प्रस्तावित किया गया है ,जो अन्त में जैन मंदिर समूह को जाने वाले मार्ग से मिलेगा ।

§झ§ अन्य अभिप्रस्ताव :-

1. नाहर घाटी तथा उससे आगे बेतवा नदी के किनारे स्थित सती टीले के मध्य नौका विहार का प्रावधान किया जाये ।

2- पर्यटकों की सुविधा हेतु राजघाट व सिद्ध गुफा को जाने वाली सीढ़ियों का जीर्णोद्धार किया जाये ।

3- राजघाटी के पास बेतवा नदी पर घाट बनाये जायें जहां से नाहर घाटी तक नौका विहार सुविधा प्राप्त हो सके ।

4- मेले के अवसरों के लिए प्रस्तावित कैम्पिंग साइड , मेला स्थल,पार्किंग आदि के लिए निर्धारित भूमि को आरक्षित रखा जाये ।

5- जैन मंदिर के सामने की दीवारों का जीर्णोद्धार किया जाये ।

6- वर्तमान मूर्तियों ,मंदिरों तथा अन्य पुरातात्त्विक स्मारकों का नवीनीकरण तथा जीर्णोद्धार किया जाये ।

7- वर्तमान वन विश्रामगृह का अभिनवीकरण किया जाये ।

8- वर्तमान तथा प्रस्तावित मार्गों व पद मार्गों के किनारे फलदार व छायादार वृक्षों को नियोजित ढंग से लगाया जाये ।

विकास क्रम - [1]

देवगढ़ में पर्यटन विकास हेतु कोई भी प्राथमिक इन्फ्रास्ट्रक्चर एवं अन्य सुविधा उपलब्ध नहीं है । अतः विकास योजना में प्रस्तावित की गई इन सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु समयानुसार दो चरणों में विभाजित किया गया है । विकास के प्रथम चरण {1981-85} में जो इन्फ्रास्ट्रक्चर सुविधाओं के प्रावधान करने का सुझाव दिया गया है जो देवगढ़ में तुरन्त आवश्यक है । अन्य आवश्यक सुविधाओं को द्वितीय चरण में उपलब्ध कराये जाने का प्रस्ताव है ।

निम्नांकित सारिणी में प्रस्तावित योजना का विकास क्रम दर्शाया गया है ×

सारिणी प्रस्तावों का विकास क्रम {वर्ष 1981-90} -

विकास के चरण	विकास प्रस्ताव	विकास करने वाले विभाग
प्रथम चरण {वर्ष 1981-85}	1. दुकान - 5	पर्यटन विभाग उ0प्र0/सा0नि0वि0।
	2. कार/बस पार्किंग-20गाड़ियां	पर्यटक विभाग उ0प्र0/सा0नि0वि0।
	3. पर्यटक आवास, देवगढ़ में 16 शैय्याओं का तथा ललितपुर में 18शैय्याओं का.	पुलिस विभाग /सार्वजनिक निर्माण विभाग ।
	4. पुलिस चौकी	
	5. कर्मचारी आवास - 15 परिवार	सार्वजनिक निर्माण विभाग ।
	6. जैन मंदिर समूह से वाराह मंदिर तक तथा उसके आगे पुनः जैन मंदिर मार्ग तक 12 मीटर चौड़ा वन मार्ग	
	7. राजघाटी तथा सिद्धगुफा को जाने वाली सीढ़ियों का जीर्णोद्धार ।	पुरातत्व विभाग उ0प्र0 / केन्द्रीय

1. देवगढ़ विकास योजना {1981-1991}:प्र0 नियंत्रक प्राधिकारी ,देवगढ़ ,ललितपुर . पृ0 19-21 .

विकास के चरण	विकास प्रस्ताव	विकास करने वाले विभाग
	8. जैन मंदिर समूह तथा दशावतार मंदिर का नवीनीकरण	पुरातत्व विभाग उ०प्र०/केन्द्रीय
	9. दशावतार मंदिर के आस पास सौन्दर्यीकरण	उद्यान विभाग उ०प्र०/पुरातत्व विभाग उ०प्र०
	10. देवगढ़-ललितपुर मार्ग पर तथा टूरिस्ट लॉज के आस पास वृक्षारोपण	वन विभाग, उ०प्र०
	11. वन विश्रामगृह का नवीनीकरण	वन विभाग , उ०प्र०
	12. पेय जल सुविधा	जल निगम , उ०प्र०
	13. बिजली सुविधा	विद्युत परिषद, उ०प्र०
द्वितीय चरण {वर्ष 1986-90}	1. पर्यटक आवास - 16 शैय्याओं	पर्यटन विभाग उ०प्र०/सार्वजनिक निर्माण विभाग
	2. स्वागत केन्द्र	पर्यटन विभाग उ०प्र०
	3. रेस्टोरेन्ट	पर्यटन विभाग उ०प्र०/सा०नि०वि०
	4. दुकानें - 5	पर्यटन विभाग उ०प्र०
	5. ट्रेलर पार्किंग - 10ट्रेलर	पर्यटन विभाग उ०प्र०/सा०नि०वि०
	6. बैंक	स्टेट बैंक /सा०नि०वि०
	7. डिस्पेन्सरी - 5 शैय्याओं सहित	स्वास्थ्य विभाग उ०प्र०/सा०नि०वि०
	8. पोस्ट आफिस	डाक-तार विभाग
	9. कर्मचारी आवास -17 परिवार	पर्यटन विभाग उ०प्र०/सा०नि०वि०
	10. 20 मीटर चौड़े प्रस्तावित बाई पास मार्ग का निर्माण	सार्वजनिक निर्माण विभाग
	11. प्रस्तावित पद मार्गों पर पत्थर बिछाना	सार्वजनिक निर्माण विभाग
	12. वर्तमान तालाब,घाट, सतीटीला तथा नहर घाटी के आस पास सौन्दर्यीकरण	उद्यान विभाग /पुरातत्व विभाग उ०प्र० /वन विभाग
	13. प्रस्तावित बाई पास मार्ग तथा पदमार्गों के किनारे व विभिन्न विभागों के प्रस्तावित भवनों के आस पास वृक्षारोपण	वन विभाग उ०प्र०
	14. शिविर स्थल	पर्यटन विभाग/सा०नि०वि०

नोटः सार्वजनिक निर्माण विभाग अपने कार्यों के अतिरिक्त जिन दूसरे विभागों के कार्यों के निर्माण का कार्य करेगा उन कार्यों में लगाई धनराशि सम्बन्धित विभागों द्वारा सार्वजनिक निर्माण विभाग को उपलब्ध करायी जायगी। प्रथम चरण में किये गये विकास के आधार पर आने वाले पर्यटकों में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त द्वितीय चरण में विकसित की जाने वाली सुविधाओं का पुनरावलोकन व पुनरीक्षण किया जायगा ।

देवगढ़ में भूमि अधिग्रहण , विकास तथा भवन निर्माण की अनुमानित लागत 81,00,000 रु० है ।[1]

कार्यान्वयन [2] -

1- उत्तर प्रदेश § निर्माण कार्य विनियमन § अधिनियम ,1958 के अंतर्गत देवगढ़ के विनियमित क्षेत्र की घोषणा करने का अनुरोध शासन से किया गया है जिससे देवगढ़ तथा उसके आस पास के क्षेत्र में भूमि नियन्त्रण लागू किया जा सके । तदनुसार लगभग 45 हेक्टेयर भूमि देवगढ़ विनियमित क्षेत्र के अंतर्गत विकास हेतु निर्धारित की गयी है ।

2- उद्यान विभाग की सहायता से उत्तर प्रदेश पुरातत्व विभाग विकास योजना के अनुसार सम्पूर्ण विकास क्षेत्र पुरातत्व स्थलों में तत्सम्बन्धित कार्य सम्पन्न करेगा। कर्मचारी आवास तथा अन्य भवनों का निर्माण विकास योजना में प्रस्तावित स्थलों पर ही किया जायेगा । इसी प्रकार प्रस्तावित क्षेत्र के अंतर्गत तथा प्रस्तावित मार्गों के किनारे किसी अन्य प्रकार का निर्माण अथवा कृषित उपयोग के अन्य उपयोग में बदलने की अनुमति नहीं दी जायेगी ।

3- प्रस्ताव के अनुसार दशावतार मंदिर की तथा प्रस्तावित बाई पास मार्ग के किनारे बढ़ाई जायेगी ।

4- योजना का आकार तथा भवनों का समूह प्रस्तावों के अनुसार इस प्रकार होना है जिससे प्रस्तावित क्षेत्र में स्वच्छ वातावरण पूर्ववत बना रहे । सभी निर्माण एक शैली के हों जिससे पुरातात्विक स्थलों का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता रहे । विकास योजना के कार्यान्वयन में नियंत्रक प्राधिकारी के मार्गदर्शन हेतु सरकारी विभागों तथा व्यक्तिगत संस्थाओं की भी भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिये ।

निष्कर्ष :

इस विकास योजना के कार्यान्वित होने से देवगढ़ में पर्यटन सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं का विकास होगा और स्थानीय निवासियों को रोजगार के नये अवसर प्राप्त होंगे । अतः यह सुझाव है कि इन आर्थिक क्रियाओं का लाभ देवगढ़ के निवासियों को मिलना चाहिये । दुकानों के आवंटन में तथा ठेको ,

---

1. देवगढ़ विकास योजना §1981-91§प्र0नियंत्रक प्राधिकारी,जनपद ललितपुर,पृ021
2. वही वही पृ023

रेस्टोरेन्ट , यातायात आदि पर्यटन सुविधाओं में उन्हें रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान करने होंगे । रोजगार उपलब्ध कराने में देवगढ़ के मूल निवासियों को विशेष प्राथमिकता देनी होगी , जिनकी कृषि भूमि पर्यटन सुविधाओं के विकास हेतु अधिगृहीत की गयी हो । इस हेतु आवश्यकतानुसार उन्हें दीक्षा [ट्रेनिंग सुविधा] तथा वांछित वित्तीय सहायता भी देनी होगी । इस क्षेत्र के पर्यटन विकास में स्थानीय निवासियों की भागीदारी तथा सक्रिय सहयोग सुनिश्चित किया जाना चाहिये ।

उपरोक्त योजना के क्रियान्वयन की गति काफी धीमी है । 1987-88 में शासन द्वारा 46,000 रु0 देवगढ़ में पहाड़ी पर जैन मंदिरों तक मर्करी लैन्टर्न युक्त मय स्तंभ के लगाने हेतु स्वीकृत किये गये थे । 1990-91 में देवगढ़ का विद्युतीकरण कर मंदिरों के आस पास लैनटर्न लगाने का कार्य पूरा हो गया, साथ ही साथ देवगढ़ पहाड़ी पर शेड एवं बैंचों का निर्माण कार्य भी पूरा हो चुका है ।[1] देवगढ़ परकोटे के अंदर पहुँच मार्ग का निर्माण भी हो चुका है ।[2]

मुनिश्री सुधासागर जी एवं ऐलक निशंक सागर जी महाराज के सतत प्रेरणा , प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन के फलस्वरूप 30 जिनालय तथा 500 जिनबिम्बों का जीर्णोद्धार किया गया । इन्हीं के सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं पंच गजरथ समारोह 5 दिसम्बर से 11 दिसम्बर 1991 तक सम्पन्न हुआ । उ0 प्र0 शासन द्वारा इस महोत्सव के परिक्रमा मार्ग हेतु छः लाख रुपये , पेय जल व्यवस्था हेतु 14 लाख रुपये , विद्युत व्यवस्था के निमित्त 11 लाख रुपये , स्वास्थ्य एवं सफाई व्यवस्था के लिये एक लाख रुपये की धनराशियाँ प्रदान की गईं । गल्ला मंडी एसोसियेशन , ललितपुर द्वारा पहाड़ी पर एक लाख गैलन क्षमता की एक पानी की टंकी का निर्माण कराया गया ।[3] इस महोत्सव में वर्तमान 1993 की श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी के अध्यक्ष डा0 बाहुबलि कुमार जैन और महामंत्री श्री मुरारीलाल जैन , एडवोकेट के अनुसार प्राप्त सूचनाओं के आधार पर .

1- फ़ाइल , झाँसी मण्डल जिला योजना 1990-91 ई0 कार्यालय क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, झाँसी मंडल, वीरांगना होटल ,झाँसी ,उ0 प्र0 ।

2- व्यक्तिगत सर्वेक्षण .

3- श्री देवगढ़ जैन एवं जिनबिम्ब पूजा [सचित्र परिचय सहित] मुद्रकः दीपक प्रेस , ललितपुर, 1991 , पृ0 306 .

ढाई-तीन लाख पर्यटक व धर्म प्रेमी पधारे थे ।[1]

देवगढ़ में पर्यटन विकास के लिये उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है । देवगढ़ के अतिरिक्त जनपद ललितपुर के अन्य जैन मंदिर क्षेत्र निम्न हैं ,जहाँ पर्यटन विकास की सम्भावना है : -

मदनपुर -

मदनपुर नवीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक की जैन वास्तुकला का जीता जागता निदर्शन है । झाँसी से मदनपुर तक पक्की सड़क है और बसें बराबर आती जाती हैं । महरौनी से भी मदनपुर के लिये पक्का मार्ग बन गया है जो आगे जाकर बरौडिया कलाँ पर झाँसी-सागर राष्ट्रीय मार्ग से मिल जाता है । मदनपुर गाँव से जैन मंदिर क्षेत्र तक का मार्ग भी बहुत सुन्दर बन गया है । पञ्चमढ़ और मोदीमढ़ जाने का मार्ग भी बन गया है । जंगल कटवा दिये गये हैं ।[2]

इस गाँव में थाना भी बन गया है जो क्षेत्र से 3-4 फर्लांग दूर है । इससे अब असुरक्षा का भय बिल्कुल नहीं है । थाने के निकट ही सरकारी डाक बंगला भी बना हुआ है ।[3]

क्षेत्र पर फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी से पंचमी तक प्रति वर्ष मेला भरता है । इस मेले में आस पास के हजारों जैन - जैनेतर व्यक्ति आते हैं और जिनेन्द्र देव के दर्शन करके एवं अन्य धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होते हैं ।[4]

यहाँ 1989 में पंचकल्याणक और गजरथ महोत्सव हुआ था । पंचकल्याणक में पहला गर्भ कल्याणक, दूसरा जन्म कल्याणक , तीसरा दीक्षा कल्याणक ,चौथा ज्ञान कल्याणक और पाँचवा मोक्ष कल्याणक और गजरथ फेरी का महोत्सव आयोजित हुआ था । मदनपुर मैनेजिंग दिगम्बर जैन क्षेत्र समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री ज्ञानचन्द्र अल्पा के अनुसार इस अवसर पर एक लाख व्यक्ति उपस्थित हुए थे और मदनपुर जैन क्षेत्र विकास हेतु उ0प्र0 शासन की ओर से दो लाख रुपये की धनराशि प्रदान की गयी थी ।[5]

1- व्यक्तिगत साक्षात्कार [डा0भा0कु0जैन, श्री मु0ला0जैन] जुलाई, 1993.
2- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:लेखक-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 203.
3- वही वही पृ0 203.
4- वही वही पृ0 206.
5- व्यक्तिगत साक्षात्कार [श्री ज्ञानचन्द्र अल्पा से] जुलाई, 1993 .

श्री ज्ञान चन्द्र अलया के अनुसार इस क्षेत्र के विकास हेतु स्व० गणेश प्रसाद वर्णी ने विशेष योगदान दिया था । वर्तमान में इसके विकास के लिये पं० विमल कुमार सौंर्या ने भी बहुत कार्य किया है । इन्होंने इस जैन मंदिर क्षेत्र का प्रथम जीर्णोद्धार भी करवाया है तथा वर्तमान में परकोटा बनवा रहे हैं ।

बानपुर -

बानपुर क्षेत्र ललितपुर से 41 मील , महरौनी तहसील से 9मील और मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जनपद से केवल 6 मील की दूरी पर अवस्थित है । ललितपुर से महरौनी होकर सीधी बस सेवा है । टीकमगढ़ से बानपुर पहुंचने के लिये 6 मील की पक्की सड़क है । यहाँ से टैक्सी सुविधापूर्वक किराये पर मिल जाती है ।[1]

बानपुर की दक्षिणी दिशा से बानपुर-महरौनी मार्ग पर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्थित है । पुरातत्व की दृष्टि से यहाँ दसवीं शताब्दी से शिल्प कला दर्शनीय है ।[2]

वर्तमान में अतिशय क्षेत्र की स्थिति अत्यन्त असुरक्षित , अविकसित और जीर्ण-शीर्ण है । क्षेत्र के जीर्णोद्धार के लिये कोई स्थायी आय का स्रोत नहीं है । इतनी अधिक संख्या में प्राचीन कला, संस्कृति और आध्यात्म से संबंधित शिल्प के होते हुए भी मूर्तियाँ और शिलाखण्ड यत्र-तत्र -सर्वत्र बिखरे हुए हैं । उन्हें सुरक्षित रखने के लिये एक बड़ा कमरा तक उपलब्ध नहीं है । तीर्थ यात्री और पर्यटकों को थोड़ी देर विश्राम करने के लिए धर्मशाला भी नहीं है । अस्तु क्षेत्र पर एक वृहद संग्रहालय और धर्मशाला का निर्माण आवश्यक ही नहीं नितान्त अनिवार्य है । क्षेत्रीय प्रांगण में कुल तीन जर्जर कमरे हैं जिन्हें क्षेत्रीय कार्यालय और सामग्री संग्रह कक्ष आदि के रूप में ही प्रयोग करना ज्यादा आवश्यक होता है ।[3]

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक :अतिशय क्षेत्र बानपुर .कैलाश मड़वैया, पृ018.
2- वही वही पृ0 19.
3- वही वही पृ0 22.

कतिपय विशाल गौरवमयी मूर्तियों का अल्प अंग-भंग है, जिनका जीर्णोद्धार कराना प्राथमिक आवश्यकता है। 1964-65 ई0 में श्री शान्ति प्रसाद साहू जी ने थोड़ा सा जीर्णोद्धार कराया था परन्तु वह अत्यंत अल्प था।[1]

1974 ई0 में निर्वाचित दिगम्बर जैन समिति ने कुछ ठोस प्रगतिशील कदम उठाये थे। परिणामस्वरूप प्रथम बार बुन्देलखण्ड सम्भाग स्तर पर विशाल मेला आयोजित कराया गया था। मेले की सफलता का श्रेय झाँसी, ललितपुर, टीकमगढ़ एवं महरौनी की जनता के अतिरिक्त बानपुर की स्थानीय व निकटतम ग्रामों की उत्साही जनता को भी है, जिन्होंने तन मन धन से सहयोग दिया और क्षेत्र के विकास की नींव को सुदृढ़ बनाया।[2]

ग्राम में विद्युतीकरण हो गया है लेकिन क्षेत्र में अंधकार रहता है जब कि क्षेत्र में भी विद्युतीकरण आसानी से हो सकता है।[3] अभी तक क्षेत्रीय प्रांगण में आवश्यक निर्माण कार्य और उद्यान की जगह घास ही घास उगती आई है, जो पूजा, सौन्दर्य और आय का एकमात्र स्रोत रही है। आर्थिक अभाव और स्थानीय समाज में अशिक्षितों के छल-छद्म और शिक्षकों की उदासीनता से क्षेत्र के विकास की रुचि के लुप्तप्राय हो जाने के कारण बानपुर का पर्यटक कला-तीर्थ के रूप में विकास नहीं हो सका है, यद्यपि इसकी समर्थतायें यहाँ पूर्व से ही विद्यमान हैं।[4] अतः पुरातत्व विभाग, पर्यटन विभाग और प्रान्तीय सरकार के समुचित सहयोग से यह क्षेत्र पर्यटन की दृष्टि से विकसित हो सकता है।

पावागिरि -

पावागिरि ललितपुर से 48 कि0मी0 और झाँसी से 41 कि0मी0 है। मध्य रेलवे के तालबेहट या बसई स्टेशन से क्रमशः 14-13 कि0मी0 की दूरी

1- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बैया, पृ022.
2- वही वही पृ0 22
3- वही वही पृ0 22
4- वही वही पृ0 22-23.

पर पूर्व में है । बंडौरा तक सीमेंट रोड है । यहाँ से क्षेत्र केवल तीन किलोमीटर यह कच्चा मार्ग है लेकिन मोटर व जीप जा सकती हैं । क्षेत्र के पश्चिम में बेतवा नदी बहती है । उत्तर की ओर जो नदी बहती है उसे नाला कहा जाता है तथा उसके कई नाम हैं । नाले को बाँध के पास केला नाला कहते हैं और दूसरे बांध के पास इसका नाम केलीताल है । यह ताल बहुत बड़ा है । आगे पहाड़ी की परिक्रमा करता हुआ यह नाला बेलोना नाम से पुकारा जाता है । किन्तु थोड़ा और आगे चलकर इसे बेलना कहते हैं । ऐसा कहाजाता है कि यह बेलना चेलना का ही अपभ्रंश है । इस चेलना नदी का उल्लेख जैन पुराणों में कई बार हुआ है । चेलना नदी पर दो पुल बन चुके हैं ।[1]

यहाँ संवत् 299 से संवत् 1345 तक की मूर्तिकला और स्थापत्य कला दर्शनीय है ।[2]

यात्रियों के ठहरने के लिए यहाँ धर्मशाला बनी है । क्षेत्र का वार्षिक मेला मंगसिर कृष्णा 2 से 5 तक होता है ।[3] अप्रैल, 1970 ई0 में यहाँ एक विशाल गजरथ मेले का आयोजन हुआ था, जिसमें लाखों नर-नारियों ने इस पावन तीर्थ में आकर अपने को उपकृत किया ।[4]

यह जैन क्षेत्र पुरातत्व की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही पर्यटन की दृष्टि से भी इसके विकास की प्रबल संभावना है ।

सेरोनजी –

सेरोनजी ललितपुर के उत्तर-पश्चिम में लगभग 20 कि0मी0 दूर स्थित है । यहाँ तक ललितपुर से राजघाट होते हुए अथवा झाँसी से जखौरा होते हुए पहुँचा जा सकता है । जखौरा राजघाट राजमार्ग पर लगभग 2 कि0मी0 हट कर पूर्व में कच्ची सड़क से यह स्थान सम्बद्ध है ।[5] दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन , बलभद्र जैन, पृ0 198.
2- (अ) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार पृ0 52-53 .
(ब) झाँसी गजेटियर , 1965: ए0बी0जोशी, पृ0 359 .
3- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 199 .
4- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें , ले0 कमलेश कुमार , पृ0 54 .
5- बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , ले0 डा0एस0डी0त्रिवेदी, पृ0 84.

गाँव से कुछ दूर पर स्थित है । 20 कि0मी0 सड़क पक्की है शेष कच्ची । क्षेत्र के पीछे की ओर लगभग एक फर्लांग दूर एक छोटी सी नदी औडर बहती है ।

यहाँ विक्रम संवत् 954 से लेकर वि0सं0 1451 तक के पुरातत्त्व अवशेष (जिन मंदिर व मूर्तियाँ) प्राप्त होते हैं ।[1] यहाँ ठहरने के लिये धर्मशाला है ।[2]

26 नवम्बर से 2 दिसम्बर, 1992 ई0 तक यहाँ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव आयोजित हुआ था । सेरोनजी प्रबंधक दिगम्बर जैन समिति के अध्यक्ष के अनुसार यहाँ इस महोत्सव में 50,000 से 60,000 तक श्रद्धालु और पर्यटक आये थे, जिसमें अंतिम दिन 2 दिसम्बर, 1992 ई0 को गजरथ फेरी के दिन सबसे अधिक भीड़ थी । इन्हीं के अनुसार उ0प्र0 शासन से 14 लाख रुपये की धनराशि सेरोनजी क्षेत्र के विकास हेतु प्राप्त हुयी थी ।[3] यहाँ पर्यटन विकास की और भी अधिक सम्भावना है ।

ललितपुर -

ललितपुर नगर जनपद ललितपुर का मुख्यालय है । मध्य रेलवे के झाँसी-बीना जंक्शन के बीच ललितपुर स्टेशन है । यह नगर जैन तीर्थ क्षेत्रों का जंक्शन है क्योंकि इसके चारों ओर मामूली दूरी पर अनेक प्रसिद्ध जैन तीर्थ क्षेत्र हैं ।

ललितपुर नगर में वर्ष 1706, 1849, 1955 तथा 1979 में पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें एवं गजरथ महोत्सव हुए थे । शाहजाद नदी के लोहा घाट के निकट बनी प्रतिष्ठा वेदिकायें इनके स्मारक हैं ।[4] दिसम्बर 1993 ई0 में भी यहाँ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव मनाये जाने की योजना है जिसके लिए तैयारियाँ की जा रही हैं ।

1- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 195-97.
2- वही वही पृ0 195.
3- व्यक्तिगत साक्षात्कार (सेरोनजी प्रबन्धक जैन समिति के अध्यक्ष श्री बाजुरिया से) जुलाई, 1993 ई0 ।
4- भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादन), बलभद्र जैन, पृ0 200.

चाँदपुर – जहाजपुर –

चाँदपुर गाँव ललितपुर जनपद के बालाबेहट परगने में मध्य-रेलवे के ललितपुर –बीना लाइन पर धौर्रा स्टेशन से लगभग 3 कि0मी0 पूर्व की ओर स्थित है । यह रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता है । यहाँ देवगढ़ जाने वाली बस से भी जाया जा सकता है परन्तु इसके लिए सेपुरा गाँव में उतर कर लगभग 4 कि0मी0 की दूरी पैदल तय करनी पड़ती है ।[1] यहाँ के जैन मंदिर व मूर्तियाँ 10 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी के मध्य की हैं । ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से ये स्थान महत्वपूर्ण हैं ।

दुधई –

दुधई ललितपुर से दक्षिण में लगभग 27 कि0मी0 दूर है और धौर्रा स्टेशन से 10, 1/2 कि0मी0 दक्षिण-पश्चिम की ओर घने जंगल के मध्य स्थित है । यहाँ पहुँचने के लिये यह रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता है ।[2] यहाँ भी दसवीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी के जैन मंदिर व मूर्तियाँ हैं । ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से यह स्थान महत्वपूर्ण है ।

इसके अतिरिक्त जनपद ललितपुर के महरौनी नगर से 6 कि0मी0 और 16 कि0मी0 दूरी पर क्रमशः सिरौन और गिरार के जैन मंदिर क्षेत्र हैं । धार्मिक, ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से इनका भी महत्व है लेकिन अभी तक इनका महत्व क्षेत्रीय ही है । गिरार में मार्च महीने में प्रति वर्ष एक मेला भी लगता है ।[3] इन्हें भी पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है ।

जनपद के जैन मंदिर क्षेत्रों को पर्यटन की दृष्टि से विकसित करने के लिये केन्द्रों पर बिखरी हुयी सामग्री (पुरातत्व) को एकत्र करके क्षेत्र में ही संग्रहालय में सुरक्षित करा कर उनको प्रदर्शित किया जाना चाहिए । मूर्ति भंजकों द्वारा काटे गये मूर्तियों के जो सिर वापस मिले हैं उन्हें संग्रहालय में प्रदर्शित न करके सम्बद्ध मूर्तियों से यथा स्थान संयुक्त करा देना चाहिये । जैन कला की

1– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , ले0 डा0 एस0डी0 त्रिवेदी, पृ0 88 .
2– वही वही पृ0 87 .
3– झाँसी गजेटियर, 1965 (ई0बी0 जोशी) , पृ0 341–42 .

सुरक्षा न केवल धर्म विशेष के कारण प्रत्युत प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व के सन्दर्भ में अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इसके लिए प्रशिक्षित प्रदर्शक , प्रदर्शिका-पुस्तिका और चित्र-कार्डों की व्यवस्था की जानी चाहिये। कुछ महत्वपूर्ण मूर्तियों की " पेरिस-प्लास्टर§ की प्रतिकृतियां निर्मित करायी जानी चाहिये तथा उनकी बिक्री की व्यवस्था भी की जानी चाहिये ।

साथ ही साथ उपरोक्त क्षेत्रों में पक्की सड़कों, यातायात के समुचित साधनों , सुरक्षा की व्यवस्थाओं , निवास , बिजली तथा भोजन की समुचित व्यवस्थाओं और प्रचार के माध्यम साधनों का विकास कर पर्यटन को विकसित किया जा सकता है क्योंकि यहां इसकी सम्भावनायेंपूर्व से ही मौजूद हैं । इन क्षेत्रों के धार्मिक, ऐतिहासिक, पुरातत्व के महत्व से सम्बन्धित सस्ते साहित्य की व्यवस्था करना, पर्यटकों को आकर्षित करने वाले रमणीक स्थानों को विकसित कर उनका प्रचार करना और पत्र-पत्रिकाओं में इनका विवरण प्रकाशित करवाना आवश्यक है । इन सारे कार्यों में जहां तक सम्भव हो स्थानीय और क्षेत्रीय लोगों का सहयोग लिया जाना चाहिए जिससे उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर भी ऊँचा उठ सके ।

जनपद ललितपुर के जैन मंदिरों के अतिरिक्त यहां के हिन्दुओं के धार्मिक स्थल भी पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इनमें सबसे मुख्य हैं देवगढ़[1] में दशावतार मंदिर, वाराह मंदिर , सिद्ध गुफा , नाहर घाटी और सती स्तंभ , पाली[2] के निकट नीलकण्ठेश्वर का भव्य प्राचीन मंदिर , बानपुर[3] में भारत प्रसिद्ध 22 भुजाओं वाली पार्वतीनन्दन गणेश जी की विशालकाय मूर्ति आदि ।

इसी प्रकार जनपद में अनेक प्राकृतिक , रमणीक स्थल भी हैं, जो पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । जाखलौन और देवगढ़ के बीच स्थित "बंदर-गुढ़ा[4]" जो मई -जून की धधकती लू-लपट में भी आरामदेह शीत स्थली बना रहता है।

1- देवगढ़ की जैन कला , ले0 भाग चन्द्र जैन , पृ0 42-47 .
2- साप्ताहिक "जागृति" वर्ष 27, अंक 24, 14जून,1993,प्रधान सम्पादक,डा0आशुतोष कुमार जैन , ललितपुर , पृ0 1 .
3- बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : अतिशय क्षेत्र बानपुर,ले0कैलाश मड़बैया, पृ0 19
4- श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिन बिम्ब पूजा§संक्षिप्त क्षेत्र-परिचय सहित§ :मुद्रक भक्ति प्रेस, ललितपुर , 1991 .

तथा जिसके एक ओर लघु पर्वतीय श्रृंखला स्थित है और दूसरी तरफ सघन वन, सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र बन सकता है। इसी पर्यटन-परिक्षेत्र से जुड़ जाते हैं सरकार द्वारा स्वतंत्रता पश्चात् निर्मित अनेक बाँध[1]- राजघाट, माताटीला, गोविन्द सागर, सुमेरा ताल, शहजाद बाँध, जामनी बाँध तथा सजनाम बाँध।

इन सबको पर्यटन की दृष्टि से विकसित कर पर्यटकों के आकर्षण और मनोरंजन का केन्द्र बनाया जा सकता है।

1- श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिन-बिम्ब पूजा {संक्षिप्त क्षेत्र-परिचय सहित}
: मुद्रक - शक्ति प्रेस, ललितपुर, 1991.

===========

अध्याय - 8

उपसंहार

जनपद ललितपुर ,जो कि पुराने जनपद चन्देरी एवं नरहट ताल्लुका का एक भाग एवं बानपुर व शाहगढ़ के राजाओं का पुराना कस्बा था ,1860ई० में ब्रिटिश सरकार के प्रशासन का एक नया ज़िला बना । लेकिन दिसम्बर,1891ई० में जनपद ललितपुर का विलीनीकरण झाँसी जनपद में हो गया था । एक मार्च , 1974 ई० को जनता की माँग पर समुचित विकास हेतु झाँसी जनपद से ललितपुर, महरौनी तहसीलों को अलग कर नया जनपद ललितपुर बनाया गया । इस जनपद में पूर्व ऐतिहासिक काल से लेकर अंग्रेज़ी शासन काल तक के क्रमिक पाषाण काल, ब्राह्मण काल , चेदि काल , अभिरत काल , कलत काल, गोंड काल, चन्देल काल , मुस्लिम काल , बुन्देला शासन काल और अंग्रेज़ी शासन काल के साक्ष्य प्राप्त होते हैं ।

वर्तमान काल का यह पिछड़ा और गरीब जनपद प्राचीन और मध्य कालों में सामाजिक दृष्टि से सभ्य , सरल, शान्त, धार्मिक उदारता तथा निष्ठा से सम्पन्न और आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न था । यहाँ जैन धर्म का काफी प्रभाव रहा था । फलस्वरूप जैनियों की संख्या भी यहाँ अधिक रही थी । सामाजिकआर्थिक सम्पन्नता के कारण ही यहाँ जैन स्थापत्य और मूर्ति कला का सम्यक विकास सम्भव हो सका है । यहाँ की जैन स्थापत्य और शिल्प सामग्रियाँ दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं । विभिन्न लेखों से स्पष्ट है कि यहाँ के अधिकांश जैन मंदिर और मूर्तियाँ लोगों के दान और सहयोग से ही निर्मित हुए है । यहाँ जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ ही प्रमाण प्राप्त होते हैं ।

जनपद ललितपुर में देवगढ़, चांदपुर-जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोन , सेरोनजी, गिरार तथा ललितपुर जैन मंदिरों और मूर्तियों के केन्द्र स्थल हैं । इनका निर्माण गुप्त काल से उत्तर मुगल काल

तक होता रहा था । देवगढ़ मंदिर सं0 12 के महामण्डप से प्राप्त एक अभिलेख [शान्ति जिला] की लिपि मौर्यकालीन दाक्षिणी लिपि से पर्याप्त समानता रखती है । इसी प्रकार पावागिरि की बावड़ी की खुदायी में प्राप्त एक तीर्थंकर मूर्ति पर संवत् 299 अंकित है । यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि यहाँ गुप्त काल में जैन मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण हुए थे । देवगढ़ मंदिर सं0 12 के अर्द्धमण्डप के दक्षिण-पूर्वी स्तंभ पर उत्कीर्ण वि0 सं0 919 के अभिलेख से स्पष्ट होता है कि गुर्जर प्रतिहारों के शासन में यहाँ की जैन स्थापत्य और मूर्ति कला को पर्याप्त समृद्धि प्राप्त हुयी थी । चन्देल काल में इस जनपद में सर्वाधिक मंदिर व मूर्तियाँ निर्मित हुए थे । बुन्देलों के समय में भी कई मंदिर बने हैं । मंदिर और मूर्ति निर्माण का यह क्रम अनवरत रूप से विक्रम की 19वीं शती तक चलता रहा । मंदिर और मूर्तियों के निर्माण की प्रक्रिया अविच्छिन्न रूप से इतने दीर्घ काल तक भारत के गिने चुने स्थानों में ही मिलती है ।

लगभग 1600 वर्षों की दीर्घ अवधि में निर्मित होते रहने से इन स्मारकों की विन्यास रेखा आदि में समानता नहीं आ सकी । उसका स्थितक्रम भी किसी सरल या सुनियोजित रेखा में नहीं है । इसी प्रकार उनके अंगों और उपांगों की संरचना में भी किसी निश्चित सिद्धान्त का निर्वाह नहीं हो सका है ।

कुछ स्मारक साधुओं और भट्टारकों के निवास और समाधि के रूप में निर्मित हुए थे जिन्हें कालान्तर में मंदिरों का रूप दे दिया गया । इनके उदाहरण हैं देवगढ़ मंदिर सं0 2, 8, 14, 21 और 27 ।

कुछ मंदिर शास्त्रीय विधान के विरुद्ध दक्षिण-मुखा भी हैं इनके उदाहरण हैं देवगढ़ मंदिर सं0 4, 18, 19, 20 , 22, 24, 28 और 31 तथा लघु मंदिर सं0 3 ।

ऐसे स्मारक गिने चुने ही अवशिष्ट हैं जिनका मौलिक तथा सम्पूर्ण रूप अब भी विद्यमान हो । कुछ स्मारक तो पूर्णरूपेण धूमिसात हो गये हैं , केवल कुछ भग्न अधिष्ठान आदि से ही उनके अस्तित्व का अनुमान होता है । चाँदपुर-जहाजपुर , दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोन, और सेरोनजी

आदि स्थानों में तो प्रायः सभी मंदिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है । तमाम जैन मंदिरों के तो खण्डहर ही शेष हैं । सेरोनजी में तो क्षेत्र के आस-पास 2-3 मील के घेरे में प्राचीन मंदिरों के अवशेष के रूप में 42 टीले गिने जा सकते हैं । इसी प्रकार मदनपुर में बैठमढ़ , बाणिजा मढ़ , पञ्चमढ़ , मोदीमढ़ में मंदिरों के खण्डहर मात्र शेष हैं । इस दृष्टि से देवगढ़ की स्थिति ठीक कही जा सकती है। लेकिन यहाँ भी कुछ स्मारक ध्वस्त हुए हैं और कुछ अंशतः ध्वस्त हुए हैं । अंशतः ध्वस्त हुए मंदिर के रूप में मंदिर सं0 3 उल्लेखनीय है जिसके दो तलों में से एक ही अवशिष्ट है ।

इन मंदिरों के जीर्णोद्धार के कार्य भी हुए हैं । लेकिन अधिकतर देवगढ़ में ही ऐसे कार्य हुए हैं । प्रारम्भ में सेरोनजी, मदनपुर में जीर्णोद्धार कर्ताओं ने स्मारकों की मौलिकता को सुरक्षित रखने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था लेकिन वर्तमान में हुए जीर्णोद्धार के काम में इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया जिससे उसकी मौलिकता पर असर पड़ा है । भविष्य में यहाँ की जैन प्रबन्ध समिति को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये जिससे इन स्मारकों की मौलिकता सुरक्षित रहे ।

जनपद ललितपुर के जैन मंदिर क्षेत्रों के गर्भ में पर्याप्त सामग्री के दबे रहने के प्रमाण प्रायः मिलते हैं । जैसे सेरोनजी में मंदिरों के परकोटे के बाहर दांयी ओर 1961 में खुदाई हुयी थी । फलस्वरूप वेदी निकली , अनेक स्तंभ, मूर्तियाँ और धर्मचक्र निकले । अनुमान है कि यहाँ कोई विशाल मंदिर रहा होगा । इसी प्रकार से देवगढ़ में जैन प्राचीर की नींव खोदते समय ईंटों की प्राचीन भित्तियाँ और अनेक प्रतिमायें प्राप्त हुयी थीं । वस्तुतः सभी जैन मंदिर क्षेत्रों में अब तक उत्खनन कार्य नहीं किया गया है । अतः केन्द्रीय तथा राज्य शासनों को यहाँ वैज्ञानिक उत्खनन कराने की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे पुरातत्व संबंधी तमाम महत्वपूर्ण सांस्कृतिक रहस्यों को सुलझाया जा सके और मानवता अपनी अद्भुत सांस्कृतिक धरोहर से परिचित हो सके ।

शैली की दृष्टि से जनपद ललितपुर के जैन मंदिर "नागर शैली" के अन्तर्गत आते हैं । मंदिर वास्तु की दृष्टि से जनपद के मंदिरों में शास्त्रीय विधान

का पूर्ण निर्वाह न होने पर भी सर्वतोभद्र , पूर्णभद्र , षोडशभद्र, पंचायतन आदि शैलियों का परिपूर्ण निदर्शन उपलब्ध होता है । इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से बुंदेल काल तक मंदिर वास्तु का जो विकास हुआ उसका स्पष्ट प्रभावांकन यहां के मंदिर वास्तु में परिलक्षित होता है ।

जैन मंदिरों के सम्मुख विशाल स्तंभ बनवाने की प्रथा विशेषतः दिगम्बर जैन समाज में रही है । जैन परम्परा में स्तंभों को मान स्तंभ का रूप देकर मंदिरों के सामने निर्मित किया जाता रहा है । मथुरा के अनन्तर सर्वाधिक प्राचीन मान स्तंभ कदाचित देवगढ़ में ही उपलब्ध हुए हैं । सूक्ष्म सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि यहां मान स्तंभ जैसे कुछ स्मारक स्थानान्तरित भी किये गये हैं ।

जनपद ललितपुर की जैन कला में तीर्थंकरों ,देव-देवियों ,विद्याधरों, साधु-साध्वियों और श्रावक-श्राविकाओं की मूर्तियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं । अन्य मूर्तियों की अपेक्षा तीर्थंकरों की मूर्तियां कई गुनी अधिक हैं । मुख्य रूप से आदिनाथ [ऋषभनाथ] , पार्श्वनाथ , नेमिनाथ , शान्तिनाथ और महावीर की ही मूर्तियां अधिक हैं । कुछ मूर्तियों पर लांछन अंकित नहीं हैं । कुछ मूर्तियों पर उत्कीर्ण लांछन शास्त्रीय मान्यताओं के विरुद्ध प्रतीत होते हैं । जैसे जटाधारी [illegible] मूर्तियों के साथ बन्दर, शंख, कमलावलि तथा कमलावलियुक्त मूर्तियों के साथ बकरा , और अम्बिका यक्षी एवं आदिनाथ अभिलिखित होने पर भी सिंह लांछन उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं । कुछ को छोड़ कर प्रायः सभी मूर्तियां शिलापट्टों पर उत्कीर्ण की गयी हैं । भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में यहां की मूर्तियों का योगदान अद्वितीय है । जनपद में उपलब्ध 2 इंच से लेकर 18 फी. तक की विशालकाय तीर्थंकर मूर्तियों के अतिरिक्त 24 यक्षियों ,विद्या-धरों एवं उपासकों की मूर्तियों के निदर्शन भारतीय कला में अत्यन्त विरल हैं ।

जनपद की जैन कला में निदर्शित युग्म और मण्डलियों तथा विभिन्न प्रतीकों के शिल्पांकन भारतीय कला में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं ।

प्रारंभ में यहां के स्थपतियों तथा शिल्पियों ने अध्यात्म प्रधान मूर्तियां निर्मित की लेकिन कालांतर में भट्टारकों के प्रभाव की वृद्धि के साथ

यह प्रवृत्ति क्षीण होती गयी और उत्तरोत्तर भौतिक उपलब्धियों पर बल दिया जाने लगा फलस्वरूप कला में निखार और विविधता तो अवश्य आयी ,परन्तु उसमें प्राणतत्व का ह्रास होता गया । सात्विकता और मौलिकता गुप्तोत्तर काल में क्षीण से क्षीणतर होती गयी । भट्टारकों ने जैन कला को कितना ही समृद्ध बनाया हो पर उन्होंने जैन साहित्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया ।

यहाँ के कला प्रेरकों और कलाकारों का झुकाव गुणवत्ता की अपेक्षा परिमाण की ओर अधिक रहा है । यही कारण है कि यहाँ सहस्त्रों मूर्तियाँ गढ़ी गयीं पर कलागत विलक्षणता की दृष्टि से गिनी-चुनी मूर्तियों का ही उल्लेख किया जा सकता है ।

जनपद ललितपुर में इतने अधिक वास्तु तथा शिल्प पुरातत्व सामग्री होने के बावजूद भी पर्यटन की दृष्टि से इसका विकास अभी नहीं के बराबर ही हो सका है । केवल देवगढ़ ही थोड़ा-बहुत पर्यटन की दृष्टि से विकसित हो सका है । जनपद के जैन मंदिर स्थलों में पर्यटन के विकास की सम्भाव्यता तो है लेकिन अभी तक इसके विकास के लिए प्रयत्न नहीं किये गये हैं । अतः जनपद में पर्यटन के विकास के लिये आवश्यक तत्वों को विकसित करने की अति आवश्यकता है ।

यदि इस जनपद के जैन मंदिर क्षेत्रों और उनके आस पास के रमणीक प्राकृतिक स्थलों तथा धर्म स्थलों के विस्तृत परिवेश को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया जा सके तो यह तथाकथित पिछड़ा क्षेत्र पर्यटकों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र अर्थात "पर्यटकों का स्वर्ग" बन सकता है ।

=========

परिशिष्ट – 1

क्रमांक 1 –

राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित शिलाफलक देवगढ़ से प्राप्त अभिलेख का 32 वाँ अनुच्छेद –

32. दीपे उपमें सोमः स श्रीयाद्दोषिनिर्भरः ।।3 प्रातः कालीयरागभल-दलितान्तमोरेणुरियादपदम्बुरुपदगोत्स्ना सिकय मालतक्मा........ [illegible] वंशध्यान्द्रीयश्रुवाक्षांक सकलकुलये साधुतां ज्ञोभिसाधोः ।।4 अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे हाटकुधांगजाः बभ्रू – 32

क्रमांक 2 देवगढ़ की जैन धर्मशाला में सुरक्षित अभिलेख वि० सं० 1493

संवत् 1493 शाके 1388 वर्षे वैशाख बदी 5 गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकः श्रीप्रभाचन्द्रदेवः तच्छिष्यः वादवादीन्द्रभट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवः तच्छिष्य/ श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेव-स्तत्पौदारपादान्वये अष्टशाखे आहारदान दानेश्वरः श्रीसिंघई लक्ष्मणः तस्य भार्या अक्षश्रीः तस्या कुक्षावुत्पन्नः सिंघई अर्जुनस्तस्य भार्या हेमा स [त्र] तः जातः ओमराजः तत्भार्या श्रियुसिम्भि संघाधिपतिरर्जुनस्ततपुत्रः संघाधिपतिः सिंघई गुनराजः तस्य भार्या गुणश्रीः सुवान्धवसंघस्ततपुत्रभार्या पदमश्रीः तत्पुत्रः संघई रामदेवः तत्भार्या कामश्रीः तत्पुत्रः सिंघई पतुर्भतः तत्भार्या रत्नश्रीः रत्नुराजः तस्य पुत्रः भ्युराजप भ्यूश्रीः तस्य भार्या सधनपतिः तत्पुत्र श्राता हेतुः श्री शान्तिनाथ चैत्यालये सकलका-प्रवीणः पद्मस्तस्य भार्या पूर्णश्रीः तस्याः पुत्रः पंडितनयनसिंहस्तेन प्रतिष्ठितं संघाधिपतिः सिंघई पुत्रकः तेनर्मक्षयनिमित्तो नेदेकारिते नित्यं प्रणमन्ति । सूत्रधारः पैलति पुत्र कर्मचन्द्रः सधनपतिः तत्पुत्रः जिनः तस्य पुत्र संघेन साता सूत्रधारः । येन कृतमिदं नित्यं प्रणमन्तीति ।

क्रमांक 3 –

विक्रम संवत् 1693, मंदिर सेंध्या सात में चरणपादुकाओं पर उत्कीर्ण अभिलेख ।

ओम नमः सिद्धेभ्यः गुरुपूज्यपाद........ज्ञानदर्शनचारित्र मोक्ष मार्ग-

श्रीललितकीर्ति भट्टारक-वंश देवलोक शान्तिनाथ सं :1693 फाल्गुन सुदी 8 विक्रमादित्य शाके शालवाहन तल्यांनगरी पति महाराजाधिराज देवीसिंह तस्य पद्मनी सुजानकुमारी दुहिता राणितं सुरिंग दीक्षिते ललितकीर्तें सं0 1695 पौष सुदी 2 वर्तमान दिगम्बरी दीक्षा 6।। मोधाम्पो श्रीतागरे देवजाति देवकरनाटकी अठारा लिखा गोलपुरब गोपालगढ़ ।

क्रमांक 4 -

विक्रम सं0 919 ,गुर्जर प्रतिहार शासक भोजदेव के समय जा. मं0 सं0 12 के अर्धमण्डप के दक्षिणा-पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख ।

{ओम्} परम भट्टारक । महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भो
जदेव महीवर्द्धमान -कल्याण विजय राज्ये
तत्प्रदत्त पंच महाशब्द महासामंत श्री विष्णु
र म परिभुज्य या {नि} लुअच्छगिरि श्री शान्त्यायत पतन
{त} निधे श्री कमल देवाचार्य शिष्येण श्री देवेन कारा
पितं इदं स्तम्भं ।। संवत् 919 अस्व{श्व} युज शुक्ल
पक्ष चतुर्दश्यां बृहस्पतिदिनेन उत्तरभाद्रप
दा नक्षत्रे इदं स्तम्भं समाप्तामिति ।। 00
गणोकेन गोस्टीका भूतेन इदम् स्तम्भम् घटितम् इति
शक कालाब्द सप्तसतनी चतुराशित्याधिकानि 784

क्रमांक 5 -

विक्रम संवत् ।।54, राजघाटी में चन्देल शासक कीर्तिवर्मा के मन्त्री द्वारा उत्कीर्ण कराया गया अभिलेख ।

1. ॐ । नमः शिवाय । चान्देलवंशकुमुदेन्दु विशाल कीर्तिः, ख्यातो बभूव नृप संघनताङ्घ्रिपद्मः ।
2. विद्याधरो नरपतिः कमला-निवासे, जातस्ततो विजयपाल नृपो नृपेन्द्रः ।। {1} तस्माद् धर्म्मपरस्तीमा ...
3. न् कीर्त्तिवर्म्म नृपोऽभवत् । यस्य कीर्तिसुधाशुभ्रे त्रैलोक्ये सौधतामगात् ।। {2} अगदं नूतनं विष्णुमाविर्भूतमवाप्य...
4. यत् । नृपाब्धिसततमाकृष्टा श्री रत्नैर्धममार्गवत् ।। {3}

राजोद्दमत्यगत चन्द्रनिभस्य यस्य नूनं युधिष्ठिर यदा शिवराम च .....

5. न्द्रः । स्तो प्रसन्नगुणरत्ननिधो निविष्टा, यत्ताद् गुण प्रकर रत्नमये शरीरे ।। [4] तदीयामात्य -मन्त्रीन्द्रो रम्यगापूर्व विनिर्ग -

6. तः । वत्सराजेति विख्यातः श्रीमान् महीधरात्मजः ।। [5] ख्यातो यमव किल मन्त्रिपदेकमन्त्रै वाचस्पति स्त .....

7. दिह मन्त्रगुणे अमात्यान् ।। यो यं समस्तमपि मण्डलमाशु क्षीरोदधि कीर्तिगिरि-दुर्गमिदं व्यधत्त । [6] ।

8. श्रीवत्सराज घाट्टो यं नूनं तेनात्र कारितः । ब्रह्माण्डमुज्ज्वलां कीर्तिमारोहयितु -मात्मनः । सम्वत् ।।54 चैत्रवदि 2 बुधौ ।

\-\-\-\-\-\-\-\-\-\-

परिशिष्ट - 2

श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी ,ललितपुर द्वारा परिवर्तित देवगढ़ मंदिरों के वर्तमान नये क्रमांक निम्न हैं :

वर्तमान नये क्रमांक		पुराने क्रमांक [शोध प्रबंध में प्रयुक
मंदिर संख्या - 1	[नेमिनाथ जिनालय]	मंदिर सं0 - 2
मंदिर संख्या - 2	[जिन पंच परमेष्ठी जिनालय]	मंदिर सं0 - 4
मंदिर संख्या - 3	[सहस्त्रकूट चैत्यालय]	मंदिर सं0 - 5
मंदिर संख्या - 4	[कुन्थुनाथ जिनालय]	मंदिर सं0 - 21
मंदिर संख्या - 5	[पार्श्वनाथ जिनालय]	मंदिर सं0 - 22
मंदिर संख्या - 6	[पंच बालयति जिनालय]	मंदिर सं0 - 18
मंदिर संख्या - 7	[सुमतिनाथ जिनालय]	मंदिर सं0 - 25
मंदिर संख्या - 8	[नवतीर्थी जिनालय]	मंदिर सं0 - 26
मंदिर संख्या - 9	[धर्मनाथ जिनालय]	लघु मं0सं0 - 8
मंदिर संख्या -10	[जिन चतुःतीर्थी जिनालय]	लघु मं0सं0 - 9
मंदिर संख्या -11	[मल्लिनाथ जिनालय]	लघु मं0सं0 - 27
मंदिर संख्या -12	[लघु पंच तीर्थ जिनालय]	
मंदिर संख्या -13	[शान्तिनाथ लघु जिनालय]	मं0सं0 - 28
मंदिर संख्या -14	[अनन्तनाथ जिनालय]	मं0सं0 - 29
मंदिर संख्या -15	[लघु त्रिमूर्ति जिनालय]	मं0सं0 - 30
मंदिर संख्या -16	[बाहुबली ऋषभनाथ, भरत भगवान जिनालय]	मं0सं0 - 31
मंदिर संख्या -17	[ऐलक निशंकनाथ की -त्रिमूर्ति वाला जिनालय]	मं0सं0 - 17
मंदिर संख्या -18	[भूतनाथ चौबीसी जिनालय]	मं9सं9 - 19
मंदिर संख्या -19	[भविष्य काल चौबीसी] जिनालय]	मं0सं0 - 20
मंदिर संख्या -20		लघु मं0सं0 7
मंदिर संख्या -21		मं0सं0 - 23
मंदिर संख्या -22	[अनुपम जिनालय]	मं0सं0 - 24

वर्तमान नये क्रमांक		पुराने क्रमांक [शोध प्रबंध में प्रयुक्त]
मंदिर संख्या - 23	[बड़ा पार्श्वनाथ जिनालय]	मं० सं० - 16
मंदिर संख्या - 24	[सम्भवनाथ जिनालय]	मं० सं० - 15
मंदिर संख्या - 25		लघु मं०सं० - 5
मंदिर संख्या - 26	[मुनि राज जिनालय]	लघु मं०सं० - 6
मंदिर संख्या - 27	[पद्म प्रभुनाथ जिनालय]	लघु मं०सं० - 1
मंदिर संख्या - 28	[जिन वासुपूज्यनाथ जिनालय]	लघु मं० सं० - 2
मंदिर संख्या - 29	[नेमिनाथ जिनालय]	मं० सं० - 11
मंदिर संख्या - 30	[शान्तिनाथ बड़ा जिनालय]	मं० सं० - 12
मंदिर संख्या - 31		लघु मं० सं० - 4
मंदिर संख्या - 32	[आदिनाथ जिनालय]	मं० सं० - 13
मंदिर संख्या - 33	[अजितनाथ जिनालय]	मं० सं० - 14
मंदिर संख्या - 34	[पार्श्वनाथ जिनालय]	मं० सं० - 7
मंदिर संख्या - 35	[प्रभुआदिनाथ जिनालय]	मं० सं० - 8
मंदिर संख्या - 36	×	
मंदिर संख्या - 37	[आदिनाथ जिनालय]	मं० सं० - 9
मंदिर संख्या - 38	[महावीर स्वामी जिनालय]	मं० सं० - 6
मंदिर संख्या - 39	[[illegible]नाथ जिनालय]	मं० सं० - 10
मंदिर संख्या - 40	[वर्तमान चौबीसी मंदिर]	मं० सं० - 3
मंदिर संख्या - 41		मं० सं० - 1

=======

सहायक ग्रन्थ सूची

(1) अमर सिंह : अमर कोश, सम्पादक पं० हरगोविन्द शास्त्री, बनारस, 1957ई०

(2) आशाधर : प्रतिष्ठासारोद्धार , संपादक पं० मनोहर लाल शास्त्री, बम्बई, 1974ई०

(3) कालिदास : कुमार सम्भव, संपादक शिवराम शास्त्री पाण्डेय, काशी, 1961ई०

(4) जिनप्रभसूरि: विविध तीर्थकल्प, सम्पादक मुनि जिनविजय, कलकत्ता, 1934ई०

(5) ठक्कुर फेरू : वास्तुसार प्रकरण, संपादक- पं० भगवानदास जैन, जयपुर सिटी, 1936

(6) डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : प्रतिमा विज्ञान, लखनऊ, सं०2013 .

(7) भुवनदेव आचार्य : अपराजित पृच्छा , सम्पादक-पोपटभाई अम्बाशंकर मनकड़, बड़ौदा , 1950 ई० .

(8) भोज : समरांगण सूत्रधार, खण्ड एक, संपादक-टी० गणपति शास्त्री , बड़ौदा, 1924ई

(9) यतिवृषभ आचार्य : तिलोयपण्णत्ति, सम्पादक-आ०ने० उपाध्ये तथा डा०हीरालाल जैन , शोलापुर , 1943ई० .

(10) वराह मिहिर: बृहत संहिता , बंगलौर , 1947ई०

(11) डा० उमाकान्त प्रेमानन्दशाह: स्टडीज़ इन जैन आर्ट, बनारस 5, 1955ई०.

(12) डा०उर्मिला अग्रवाल :खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिग्निफिकेन्स, दिल्ली, 1964ई

(13) स्लवक : कैटलागआफ ब्राउन्स आफ एन्शियेन्ट इंडियाज़ इन दि ब्रिटिश म्युज़ियम, लन्दन , 1936ई० .

(14) पं०कल्याणकुमार जैन शशि: देवगढ़ काव्य, ललितपुर 1939ई० .

(15) डा० कृष्णदत्त बाजपेयी: उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास, आगरा, 1959ई०

(16) डा०कृष्णदत्त बाजपेयी उत्तर प्रदेश की ऐतिहासिक विभूति, लखनऊ , 1957ई०

(17) डा० कृष्ण दत्त बाजपेयी :भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान, इलाहाबाद, 1967ई० .

(18) डा० कृष्णदत्त बाजपेयी : युग-युगों में उत्तर प्रदेश , इलाहाबाद , 1954ई०

(19) गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी सं० 1990 .

(20) प्रेमसागर : अतिशय क्षेत्र देवगढ़ पूजा , ललितपुर वी०नि०सं० 2454 .

(21) बी०एन०लूनिया :प्राचीन भारतीय संस्कृति , आगरा-3, 1966 ई०

(22) बी०सी० भट्टाचार्य : जैन आईकानोग्राफी , लाहौर ,1939ई०

(23) श्रीमती माधुरी देसाई : श्री गुप्ता टेम्पिल एट देवगढ़ , बम्बई 1958ई०

(24) विशम्भरदास गार्गीय : देवगढ़ के जैन मंदिर , ललितपुर, 1922 .

[25] ओ०सी० गंगोली तथा ए० गोस्वामी : दि आर्ट आफ दि चन्देलाज , कलकत्ता , 1957 ई०

[26] अमलानन्द घोष (सम्पादक) : जैन कला एवं स्थापत्य, तीन भाग, नई दिल्ली, 1975 ई०

{27} लुइस फ्रेड्रिक : इण्डियन टेम्पल्स एण्ड स्कल्पचर, लन्दन, 1959 ई०

{28} शीतल प्रसाद : संयुक्त प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक, इलाहाबाद, 1932 ई०

{29} डा० सत्यनारायण दुबे : प्राचीन भारत का इतिहास, आगरा-3, 1967 ई०

{30} डा० स्टैला क्रेमरिश : दि हिन्दू टेम्पल्स, जिल्द दो, कलकत्ता, 1946 ई०

{31} हरि प्रसाद "हरि" : देवगढ़, ललितपुर, 1954 ई०

{32} डा० हंसराज धीरजभाई संकालिया : जैन आइकोनोग्राफी ए वाल्युम आफ इण्डियन इरानियन स्टडीज, बम्बई.

{33} डा० हीरा लाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, 1962 ई०.

{34} अबुल फजल : आइने अकबरी : अनुवाद- एच०एस०जैरेट और सरकार भाग-2, कलकत्ता, 1949 ई०.

{35} केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी, 1974 ई०.

{36} एस०डी० त्रिवेदी : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश भाग-1 और 3, लखनऊ, 1957 ई० - 1959 ई०

{37} एस०ए०ए० रिजवी : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश भाग-1 और 3, लखनऊ, 1957 ई०, 1959 ई०.

{38} सच्चिदानन्द भट्टाचार्य : भारतीय इतिहास कोष

{39} डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय : चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रयाग, 1968.

{40} डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, दिल्ली, 1983 ई०

{41} आर०के० दीक्षित : चन्देलाज आफ जेजाकभुक्ति, नई दिल्ली, 1977 ई०

{42} हेमचन्द्रराय : डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया भाग-2.

{43} आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : भारत का इतिहास, आगरा, 1955.

{44} एन०एस० बोस : हिस्ट्री आफ चन्देलाज, कलकत्ता, 1956 ई०.

{45} सर वुल्जे हेग : कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग-3, द्वितीय संस्करण, दिल्ली 1965 ई०.

{46} अनु० मेंहदी हसन : इब्नबतूता का रेहला, बड़ौदा, 1953 ई०

{47} आगा मेंहदी हसन : दी राइज एण्ड फाल आफ मोहम्मद बिन तुगलक.

{48} एस०ए०ए० रिजवी : उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग 1 और 2, अलीगढ़, 1958 ई०, 1959 ई०.

{49} भगवान दास श्रीवास्तव, चन्देलों का इतिहास, दिल्ली, 1982.

(50) रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत , इलाहाबाद, 1958ई0

(51) इलियट तथा डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया , कलकत्ता ,1933 ई0 .

(52) समसुद्दौला शाहनवाज खान : दि मासिर-उल-उमरा भाग 1 और 2 ,
अनु0 वाई0एच0 [illegible], कलकत्ता 1941ई0 , 1952ई0

(53) अनुवादक ए0 रोजर्स एवं एच0 बेवरिज तुजुके जहांगीरी भाग-1 , लन्दन, 1909ई0

(54) लक्ष्मण सिंह गौड़ : ओरछा का इतिहास .

(55) बी0पी0 सक्सेना : हिस्ट्री आफ शाहजहाँ आफ दिल्ली, इलाहाबाद, 1948ई0

(56) राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली : बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक
मूल्यांकन , भाग -1 , बाँदा, 1989ई0

(57) गोविन्द सखाराम सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास खण्ड 2, आगरा,
1961.

(58) सी0के0 श्रीनिवासन: बाजीराव फर्स्ट द ग्रेट पेशवा, बम्बई, 1962 .

(59) इण्डिया : दी रिवोल्ट आफ सेन्ट्रल इण्डिया (1857-59), शिमला, 1908.

(60) एस0पी0 राय चौधरी : सोर्सेस आफ इण्डिया , आई0सी0एच0 आर0,
नई दिल्ली, 1963 .

(61) दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास भाग-1,
वाराणसी ,सं0 1985 .

(62) इलियट तथा डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन
हिस्टोरियन , भाग-1 ,पेरिस , 1861ई0 .

(63) ए0 एस0 आल्टेकर : दि राष्ट्रकूट्स एण्ड देयर टाइम्स, पूना, 1934 .

(64) अलबरूनी : किताबुल हिन्द अनुवादक ई0सी0 सचाउ भाग-1,
लन्दन , 1914.

(65) कल्हण : राजतरंगिणी स्टीन द्वारा संपादित अनुदित, बाम्बे, 1852ई0.

(66) बलभद्र जैन - संकलन-संपादक : भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ , प्रथम भाग ,
बम्बई , 1974ई0 .

(67) डा0 भाग चन्द्र जैन : देवगढ़ की जैन कला एक सांस्कृतिक अध्ययन, नई दिल्ली,
1974ई0 .

(68) ए0 एस0 आल्टेकर: दी पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन,
बनारस , 1938 .

(69) बी0एन0 लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, आगरा, 1966ई0

(70) सत्यकेतु विद्यालंकार : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, मसूरी, 1956ई0

(71) आर0वी0 काणे : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग - 3 .

(72) शीतल प्रसाद : वृहत् जैन शब्दार्णव - द्वितीय खण्ड, सूरत 2460 वि0नि0सं0

(73) आचार्य वसुनन्दि: वसुनन्दि श्रावकाचार्य , काशी , 1952 .

(74) डा0 एस0डी0 पाठक ,झांसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, दिल्ली , 1987 ई0

(75) डा0 मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी : जैन प्रतिमा विज्ञान , वाराणसी, 1981ई0

(76) ए0के0 कुमार स्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन आर्ट , लिपजिग, 1926ई0 .

(77) ओ0सी0 टण्डन : जैन श्राइन्स इन इण्डिया, भारत सरकार प्रकाशन , 1986 ई0

(78) शिवनारायण सिंह राणा: भारत भूमि का इतिहास, वाराणसी, 1988ई0

(79) जिनसेन : महापुराण (आदिपुराण) भाग-1,2 , काशी, 1951ई0, 1954ई0

(80) बलदेव उपाध्याय : पुराण विमर्श , बनारस, 1965ई0

(81) सैयद मुजफ्फर अली : ज्योग्रफी आफ दि पुराणाज ,नई दिल्ली, 1966ई0 .

(82) हेनरिच जिम्मर : दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया, जिल्द-1, न्यूयार्क, 1954ई0

(83) नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास , बम्बई, 1956ई0

(84) डा0 विद्याधर जोहरापुरकर : भट्टारक सम्प्रदाय, शोलापुर .

(85) सर जान मार्शल : दि मोनुमेन्ट्स आफ सांची, जिल्द-1 .

(86) भारतीय विद्या भवन : दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज , जिल्द-4, बम्बई, 1960ई0

(87) उत्तम चन्द्र राकेश शास्त्री: देवगढ़ दर्शन, ललितपुर, 1975ई0

(88) क्लाउस ब्रुन : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़ (स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर, एडिटेड फार दि इन्स्टीट्यूट आफ साउथ एशियन आर्कियोलोजी, यूनिवर्सिटी आफ आम्सटर्डम बाई जे0ई0 वान लोहुजन डे -लीउव, वोलुम-1) लिडेन, 1969ई0

(89) महर्षि वेदव्यास : अग्निपुराण ,आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा संपादित, वाराणसी, 1966ई0 ।

(90) वेदव्यास : गरुण पुराण ,डा0 रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित , वाराणसी, 1864ई0

(91) मुनि कान्ति सागर : खण्डहरों का वैभव , काशी, 1959 ई0 .

(92) बलराम श्रीवास्तव : रूपमण्डन, बनारस सं0 2021 .

(93) डा0 श्रीमती पंकजलता श्रीवास्तव : हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान,लखनऊ,

(94) हीरा लाल सिद्धान्त शास्त्री : जैन धर्मामृत , काशी, 1960ई० .

(95) देवसेन सूरि : दर्शन सार , पं० नाथूराम प्रेमी द्वारा संपादित, बम्बई वि०सं० 1974

(96) श्रुति सागर सूरि : षट् प्राभृत (आचार्य कुन्दकुन्दके अष्ट पाहुड पर संस्कृत टीका , बम्बई वि०सं० 1977 .

(97) योगीन्द्र देव : परमात्म प्रकाश , ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका , बम्बई , सं०1978.

(98) एस०डी० त्रिवेदी : स्कल्पचर्स इन दि झाँसी म्यूजियम , झाँसी, 1983ई०

(99) डा० एस०ए०ए० रिज़वी : मुगलकालीन भारत भाग-1, 2 , अलीगढ़ 1956ई०, 1957ई० .

(100) डा० विशुद्धानन्द पाठक मिश्र : गुर्जर प्रतिहार एण्ड देयर टाइम्स, दिल्ली, 1961ई०

(101) विन्सेन्ट ए० स्मिथ : ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, बम्बई तृतीय संस्करण .

(102) अनिता साहू : मदनपुर (जिला-ललितपुर) की मूर्ति कला का अध्ययन (सागर वि०वि० की एम०फिल० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध) .

(103) चन्दना जैन : सिरोन खुर्द से प्राप्त मूर्तिकला का अध्ययन (सागर वि०वि० की पी०एच-डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध).

(104) महेन्द्र कुमार वर्मा : चाँदपुर-दूधई की चन्देली कला और संस्कृति (कानपुर वि०वि० की पी०एच-डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध).

(105) एम०एम० जोशी : ललितपुर जिले का सामाजिक -आर्थिक इतिहास, 1866-1947ई० (बु०वि०वि०, झाँसी की पी-एच०डी० उपाधि हेतु स्वीकृत शोधप्रबंध).

(106)

आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स :

(106) ए० कनिंघम : आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द 10, 21.

[106अ] ए० कनिंघम: आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट; टूर्स इन बुन्देलखण्ड ऐण्ड मालवा इन 1874-75 ऐण्ड 76-77, जिल्द 10, कलकत्ता, 1880 ई०

(107) डा० ए० फ्यूहरर: आर्क्योलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट , दी मानुमेन्टल एन्टिक्विटीज एण्ड इंस्क्रिप्शन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध , 1891ई० ।

(108) पी० सी० मुकर्जी: रिपोर्ट आन दि एन्टीक्विटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर , जिल्द 1, 1891ई० ।

(क्रमशः)

§109§ वी०ए० स्मिथ : दी जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टिक्विटीज़ आफ मथुरा, आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज़, जिल्द 20, इलाहाबाद, 1901ई० .

§110§ एनुअल रिपोर्ट आफ दी आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1903-4ई०

§111§ एच० हरग्रीव्ज़ : एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, 1915ई० .

§112§ एच० हरग्रीव्ज़ : आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट फार 1916ई० .

§113§ सर जॉन मार्शल : आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया : एनुअल रिपोर्ट, 1914-15 भाग-1 कलकत्ता, 1916ई० ।

§114§ दयाराम साहनी : एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट आफ दी सुपरिटेण्डेण्ट हिन्दू एण्ड मुस्लिम मानुमेन्ट्स, नार्दर्न सर्किल, भाग 2, लाहौर, 1918ई०।

§115§ डा० डी०बी० स्पूनर: आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया: एनुअल रिपोर्ट, 1917-18, भाग-1, कलकत्ता, 1920ई० ।

§116§ दयाराम साहनी : आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट, 1920, लाहौर 1921ई० ।

§117§ सर जॉन मार्शल : आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया : एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट 1919-20, कलकत्ता 1922ई० ।

§118§ पं० माधवस्वरूप वत्स: आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया संख्या 70, दी गुप्ता टेम्पल देवगढ़, दिल्ली, 1952ई० ।

गजेटियर्स :

§119§ दी इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्द 11, 1908ई०।

§120§ ई०टी० एटकिन्सन - स्टैटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउन्ट आफ दि एन०डब्लू प्राविन्सेज़ आफ इण्डिया, भाग-1 §बुन्देलखण्ड§, इलाहाबाद, 1874ई०

§121§ डी०एल० ड्रेक ब्रोकमैन - झाँसी, ए गजेटियर, इलाहाबाद, 1909 .

§122§ ई० बी० जोशी - उत्तर प्रदेश, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, झाँसी, लखनऊ, 1965 ई० .

§123§ सी० ई० लुआर्ड - ईस्टर्न स्टेट्स §बुन्देलखण्ड§ गजेटियर्स, लखनऊ, 1907ई०

§124§ सी०ई० ड्रुआर्ड : डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ युनाइटेड प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध §सप्लीमेन्टरी स्टेटिस्टिक्स§ भाग 20 ,इलाहाबाद, 1924ई० .

§ राजकीय प्रकाशन ,रजिस्टर, रिपोर्टस§

§125§ इपीग्राफी इण्डिया भाग -1

§126§ इपीग्रैफिया इण्डिका खण्ड-4

§127§ प्रगति के पथ पर अग्रसर ,ललितपुर, 1986, जिला सूचना विभाग,ललितपुर .

§128§ अनुक्रमणिका 1989, जिला सूचना विभाग,ललितपुर .

§129§ पर्यटन उद्योग नीति ,1991, पर्यटन विभाग,लखनऊ .

§130§ पर्यटन विभाग,उत्तर प्रदेश, 1990-91 के कार्य कलाप,उ०प्र० शासन,लखनऊ .

§131§ श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिन बिम्ब पूजा §संक्षिप्त क्षेत्र परिचय सहित § ,मुद्रक : शक्ति प्रेस ,ललितपुर, 1991.

§132§1990-91, 1991-92 ,उ०प्र० वार्षिकी ,निर्देशक ,सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ .

§133§ अर्थ एवं संख्याधिकारी , ललितपुर के कार्यालय की आख्या तालिका सं० 1, "जनपद एक दृष्टि में" , 1993 .

§134§ फाइल -झांसी मण्डल जिला योजना ,1990-91 ,कार्यालय,क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, झांसी मण्डल, होटल वीरांगना,झांसी §अप्रकाशित§

§135§ फाइल ,झांसी मण्डल जिला योजना 1991-92,कार्यालय,क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, झांसी मण्डल,होटल वीरांगना ,झांसी .[अप्रकाशित]

§136§ जे० डेविडसन : रिपोर्ट आन दि सेटिलमेन्ट आफ ललितपुर ,नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज , इलाहाबाद, 1869 .

§137§ जे० फ्रैंकलिन : मेमायर्स आन बुन्देलखण्ड, 1825 .

§138§ डब्लू०एच०एल० इम्पे तथा जे०एस० मेस्टन : रिपोर्ट आन दि सेकण्ड सेटिलमेन्ट आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट§इन्क्लूडिंग ललितपुर सब डिवीजन§ नार्थ वेस्ट प्राविंस, इलाहाबाद ,1892ई० .

§139§ एच०एस० होरे : फायनल रिपोर्ट आन दि रिवीजन आफ सेटिलमेन्ट इन ललितपुर , इलाहाबाद ,1896 .

§140§ एच0डब्लू0 पिम : फायनल सेटिलमेन्ट रिपोर्ट आन दि रिवीजन आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट §इन्क्लुडिंग ललितपुर सब-डिवीजन§ इलाहाबाद, 1907.

पत्र- पत्रिकायें

§141§ अनेकान्त, §142§ अहिंसावाणी, §143§ कलकत्ता रिव्यू, §144§ कल्पना, §145§ जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, §146§ जैन मित्र, §147§जैन रिव्यू, §148§ जैन संदेश, §149§ जैन सिद्धान्त भास्कर, §150§ जैन हितैषी, §151§ धर्मयुग, §152§ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका . §153§ बुलेटिन आफ एन्शियेन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड आर्क्यौलाजी ,सागर विश्वविद्यालय ,§154§बुलेटिन आफ दि डेक्कन कालेज, रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना . §155§ मध्य प्रदेश सन्देश ,§156§ विश्वेश्वरानन्द भारत-भारती, होशियारपुर ,§157§ वीर ,§158§वीर वाणी, §159§ शिक्षा, §160§ सागर विश्वविद्यालय पुरातत्व पत्रिका ,§161§सन्मति संदेश, §162§ त्रिपथगा ,§163§ उ0प्र0§पुरातत्व विशेषांक§ , §164§ बुन्देलखण्ड परिषद पत्रिका, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, §165§ बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, 1975, §166§ भास्कर समाचार पत्र , §167§ जनप्रिय, साप्ताहिक ,ललितपुर ।

==========

जनपद ललितपुर
जैन मन्दिरों की स्थिति
उ०
जैन मन्दिर
झाँसी
उ० प्र०
शिवपुरी
म० प्र०
पावागिरि
बेतवा नदी
जामिनी नदी
सेरोन जी
टीकमगढ़
म० प्र०
बानपुर
ललितपुर
गुना
म० प्र०
छतरपुर
म० प्र०
देवगढ़
चाँदपुर
दुधई
सिरौन
गिरार
सागर
म० प्र०
मदनपुर
धसान नदी
5 0 5 10 15 20
कि० मी०

देवगढ़-दुर्ग के दिगम्बर जैन मन्दिर

विन्यास रूपरेखा

जैन मन्दिर प्राचीर
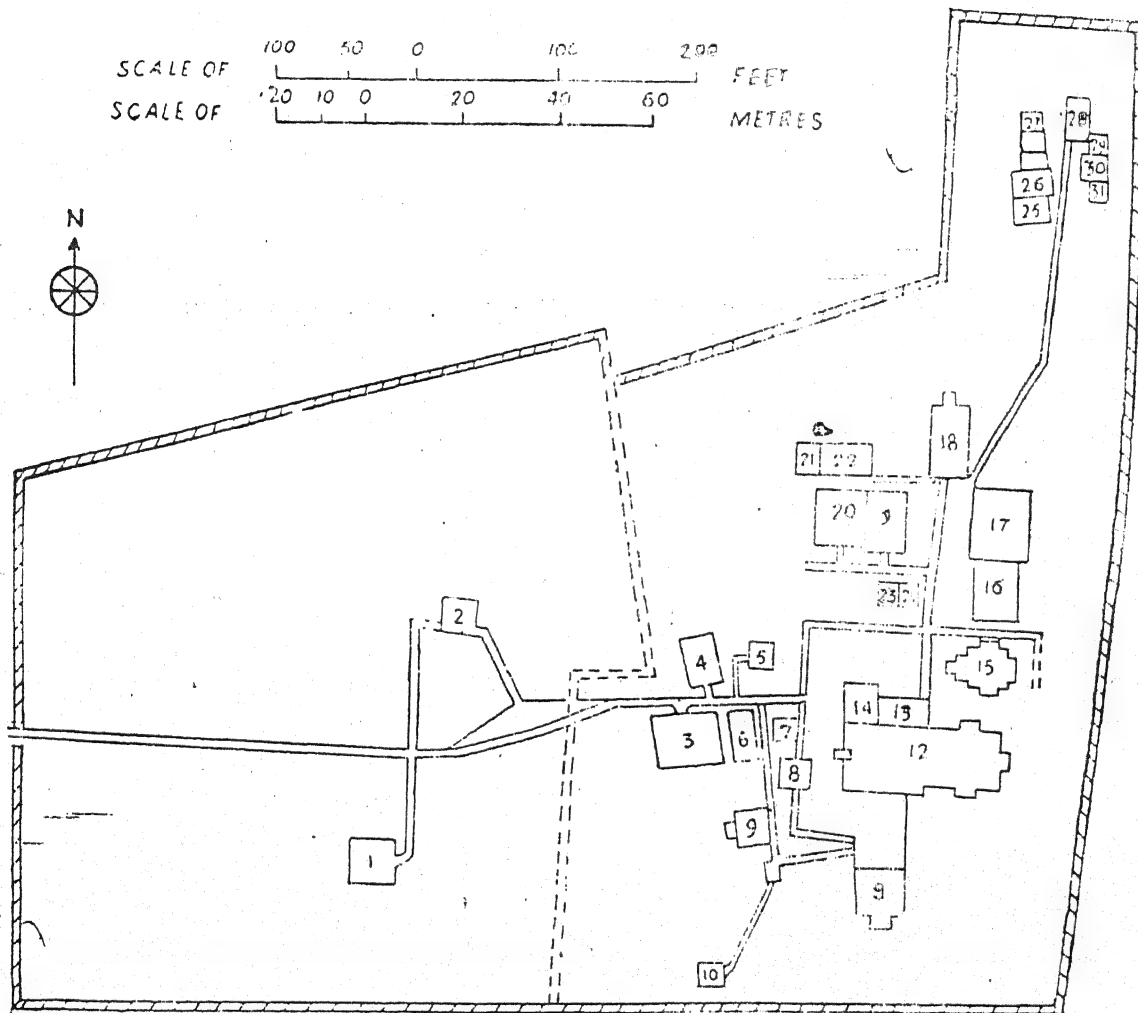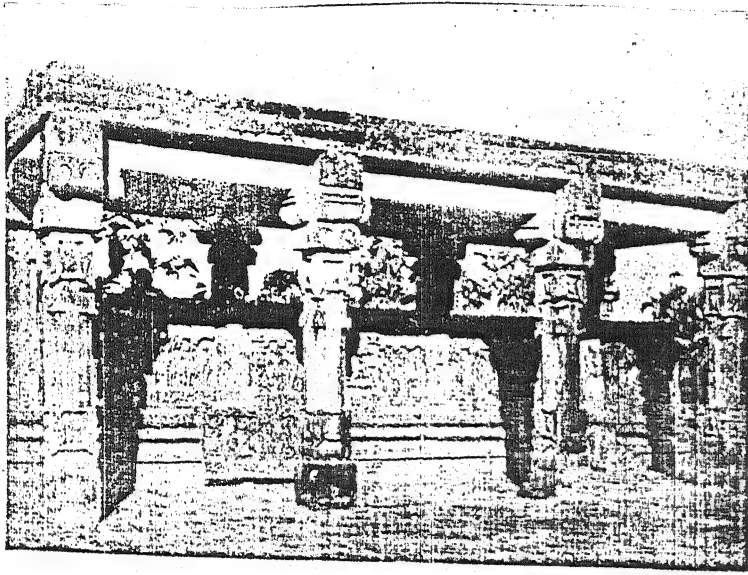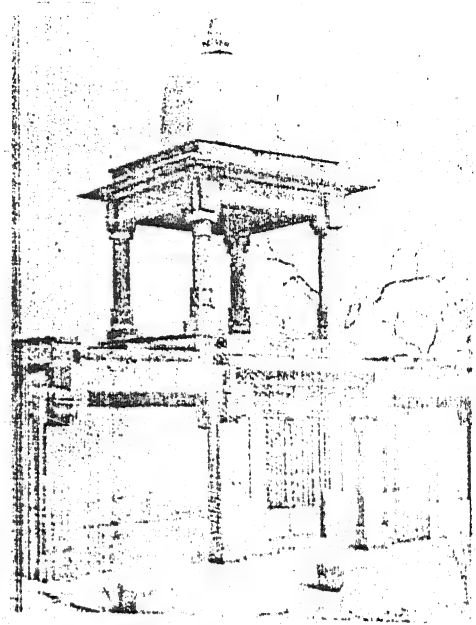
देवगढ़ –

1- जैन मंदिर संख्या एक

2- जैन मंदिर संख्या दो
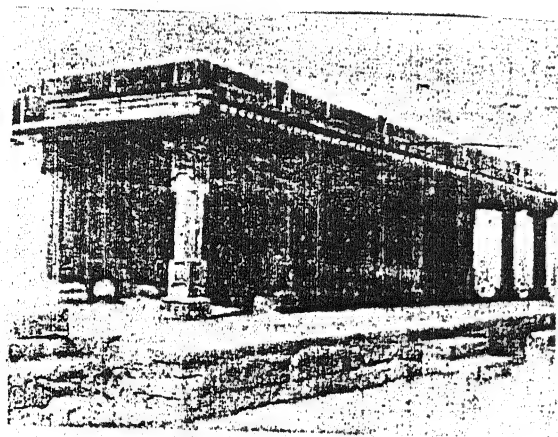
3- जैन मंदिर संख्या तीन
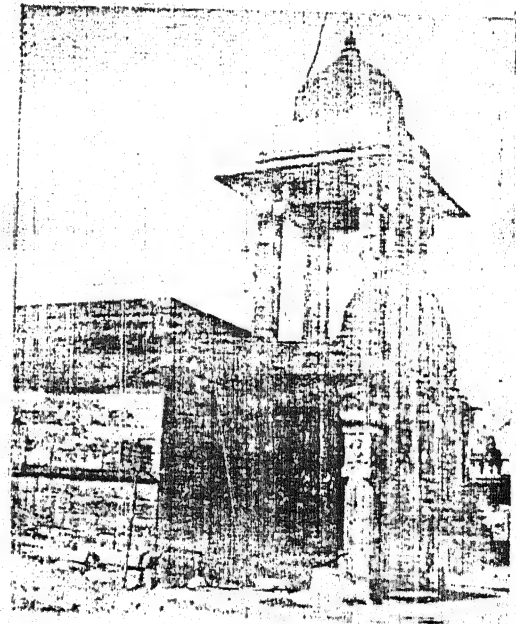
4- जैन मंदिर संख्या चार

देवगढ़ –
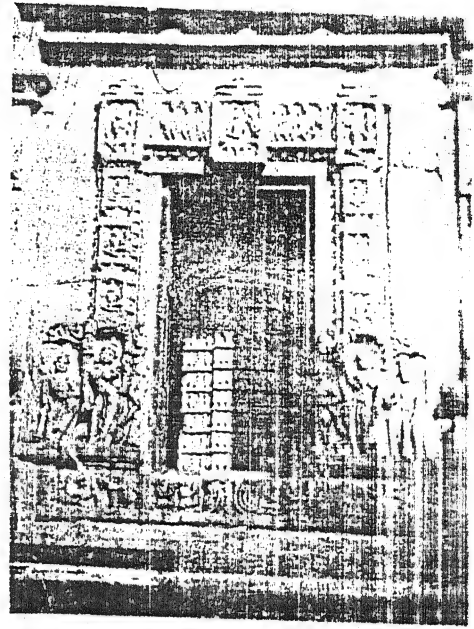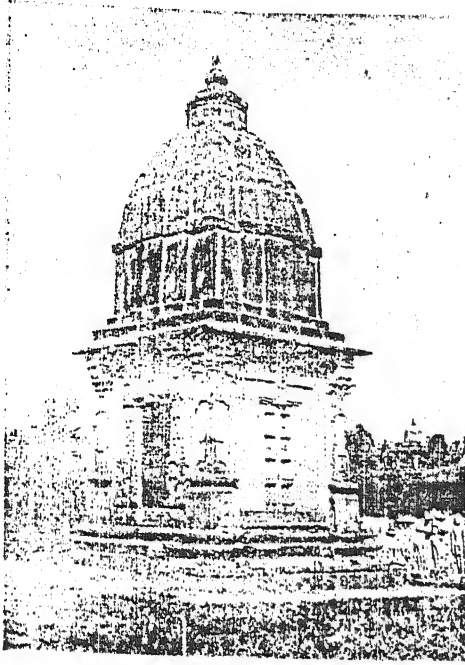
5- जैन मंदिर संख्या पांच
सहस्त्रकूट चैत्यालय

6- जैन मंदिर संख्या पांच का पूर्वी द्वार
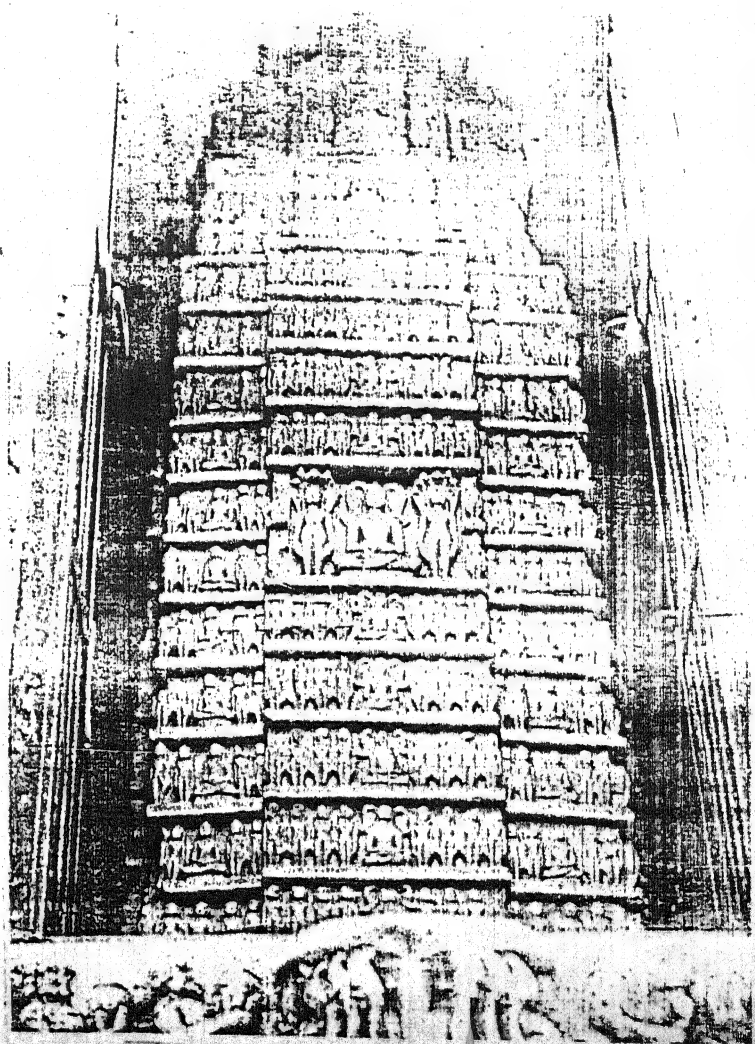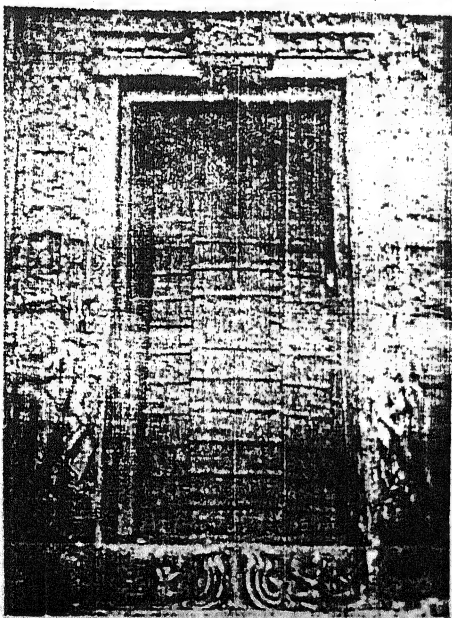
7- जैन मंदिर संख्या पांच का पश्चिमी द्वार

8- सहस्त्रकूट स्तम्भ (मंदिर संख्या पांच)

देवगढ़ -

9- जैन मंदिर संख्या छह

10- कमल [मंदिर सं0 सात के भीतर छत के ऊपरी भाग में आलिखित]

11- जैन मंदिर संख्या सात

12- चरणपादुकाएं [मंदिर सं0 सात]
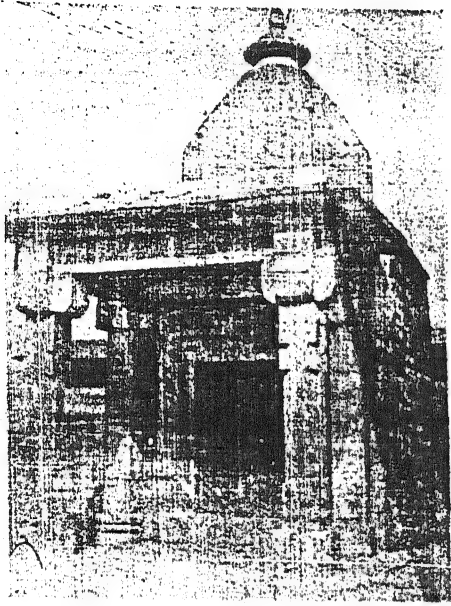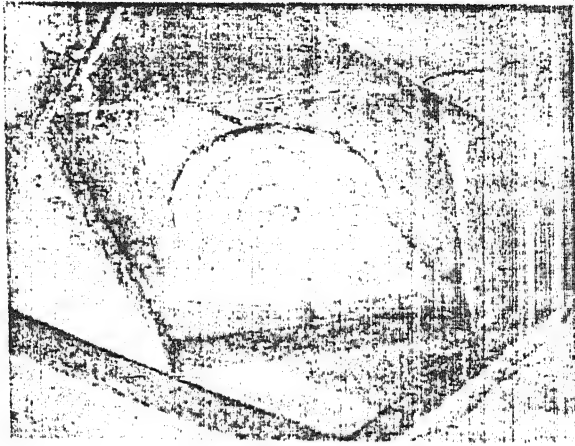
देवगढ़ -

9- जैन मंदिर संख्या छह
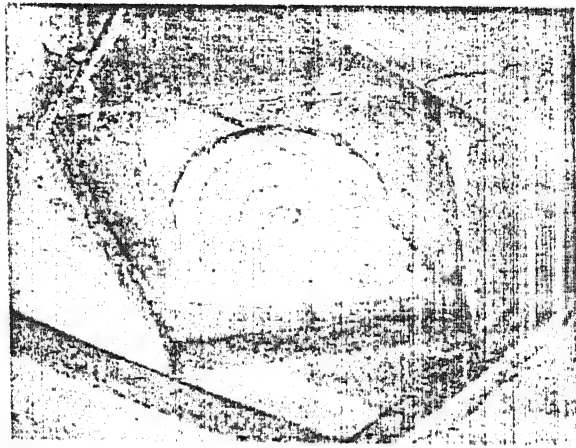
10- कमल [मंदिर सं० सात के भीतर छत के ऊपरी भाग में आलिखित]
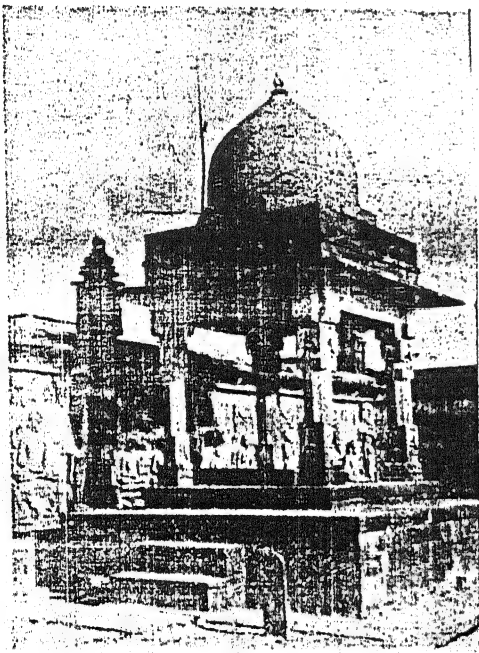
11- जैन मंदिर संख्या सात
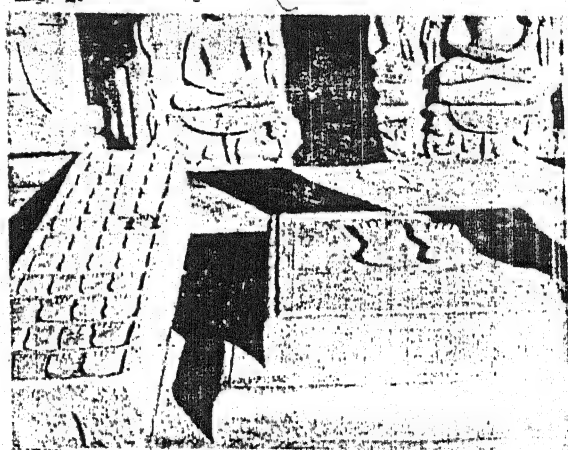
12- चरणपादुकाएं [मंदिर सं० सात]
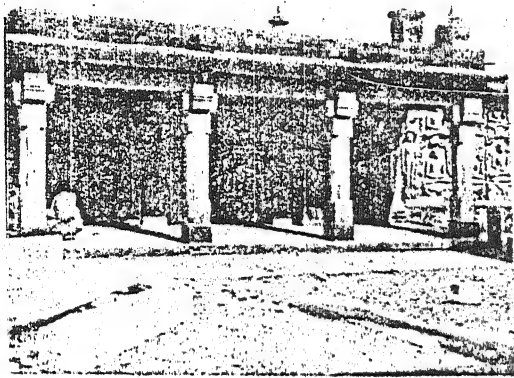
देवगढ़ –

13- जैन मंदिर सं० आठ
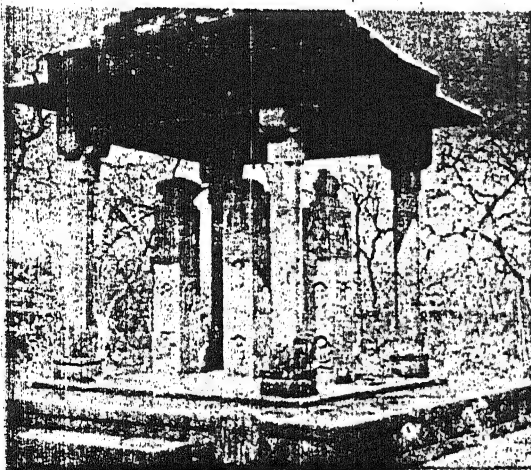
14- जैन मंदिर सं० दस

15- जैन मंदिर सं० 10 में साधु और साध्वी

देवगढ़ –

16- जैन मंदिर सं0 11

17- जैन मंदिर सं0 12 का अर्धमण्डप
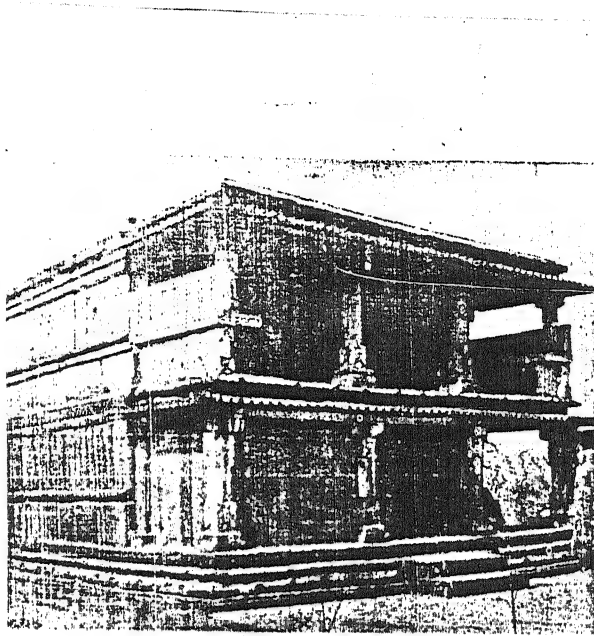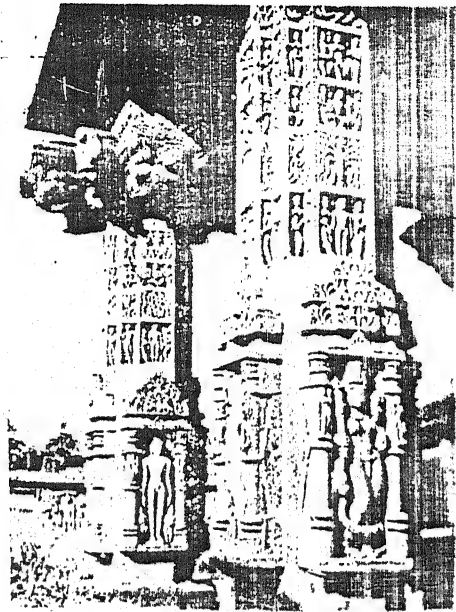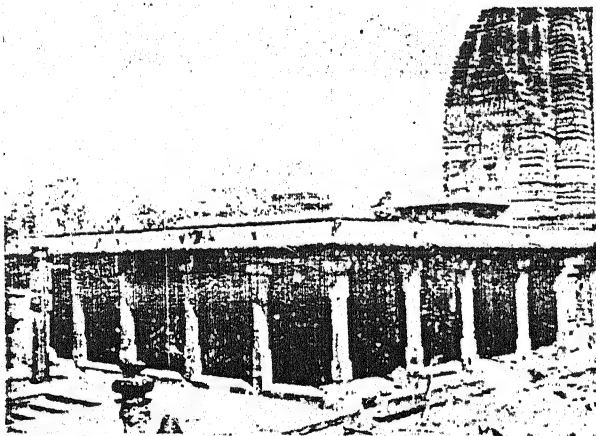
18- जैन मंदिर सं0 12 का महामण्डप

19- जैन मंदिर सं0 12 के गर्भगृह का प्रवेश-द्वार।

देवगढ़ –
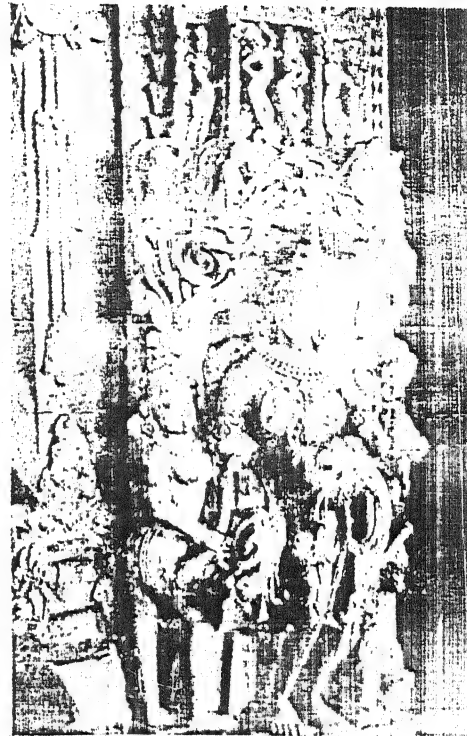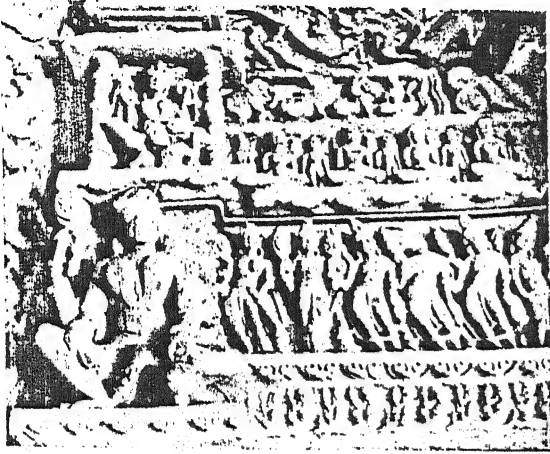
20- लक्ष्मी, नवग्रह, सोलह स्वप्न, विद्याधर आदि, मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर ।

21- [illegible] (कच्छपारूढा): मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के दायें पक्ष पर ।
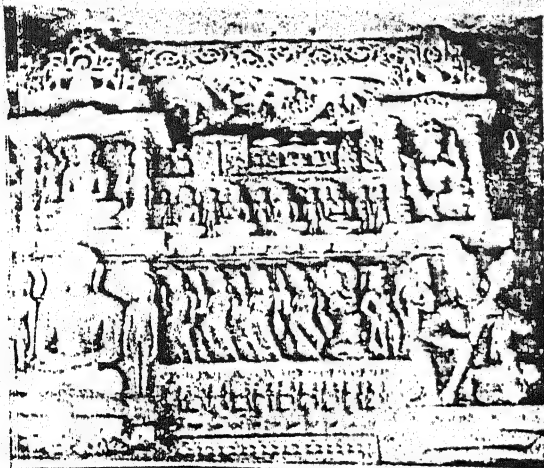
22- तीर्थंकर मूर्तियां, विद्याधर, सरस्वती, नवग्रह, सोलह स्वप्न आदि, मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेशद्वार के सिरदल पर ।
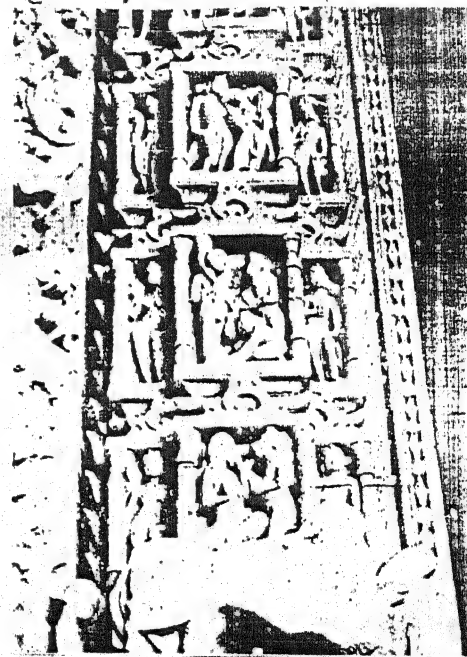
23- पौराणिक कथाएं – मुनि द्वारा शूकर को सम्बोधन , नवधा भक्ति तथा युग्म: मंदिर सं० 12 के गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के दायें पक्ष पर
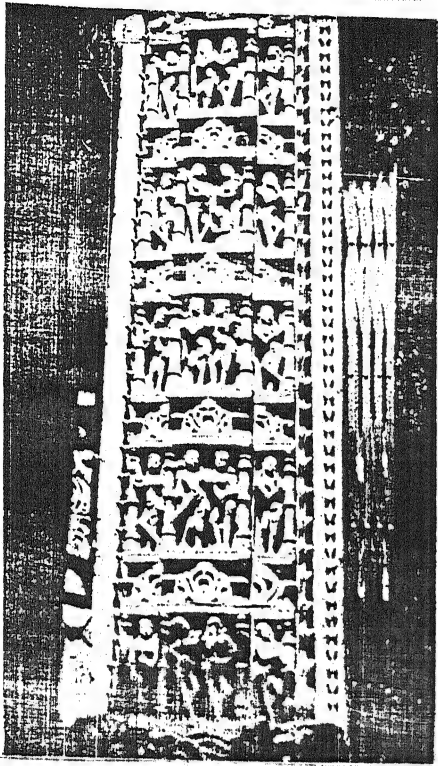
प्रेमालिंगित युग्म तथा नवधा भक्ति (आहार ग्रहण करते हुए मुनि) मंदिर सं0 12 के प्रदक्षिणा -पथ के प्रवेश द्वार के दायें पक्ष पर ।

25- देवगढ़ का विशाल और भव्य जैन मंदिर (सं0 12.

26- जैन मंदिर सं0 12 का कलापूर्ण शिखर

27- जैन मंदिर सं0 15
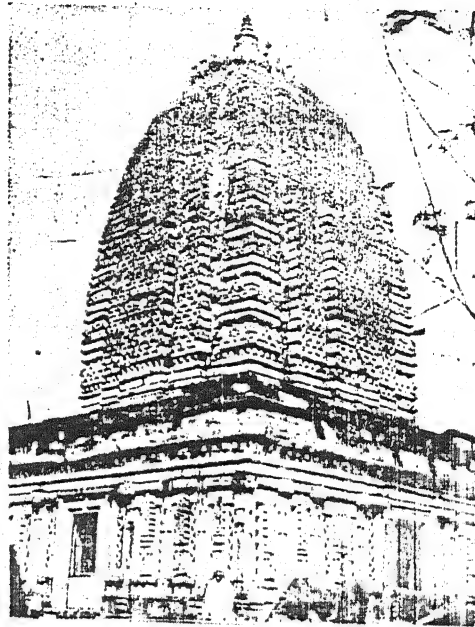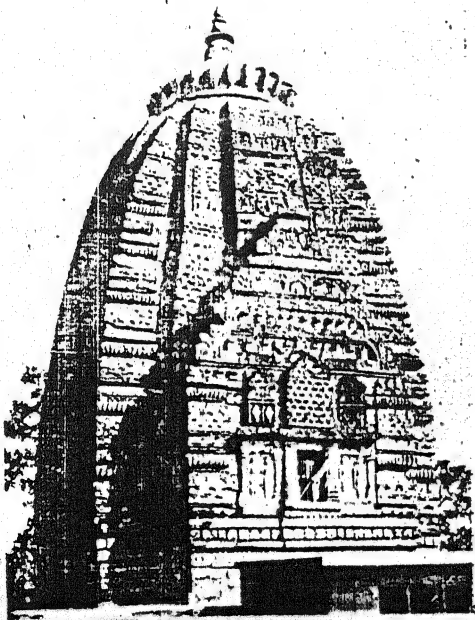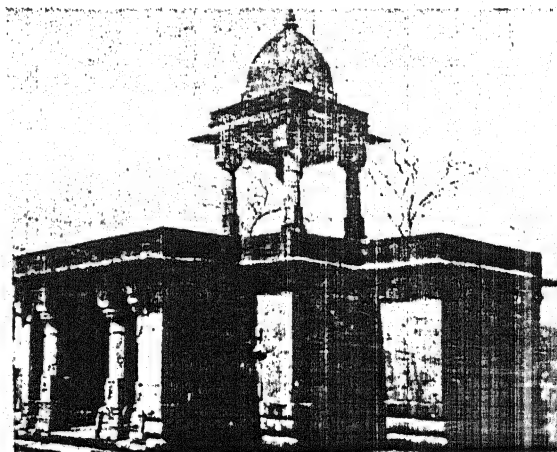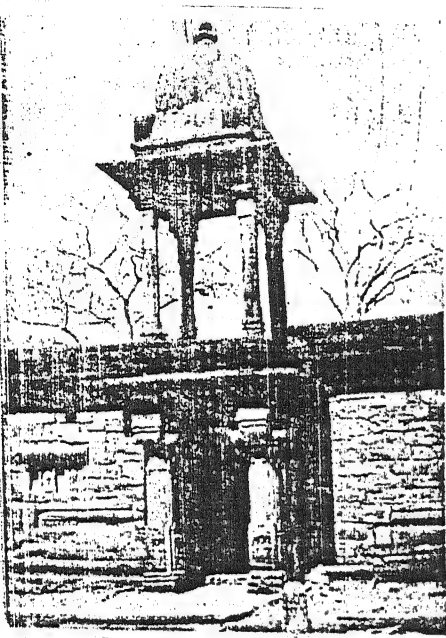
देवगढ़ -

28- जैन मंदिर संख्या 16
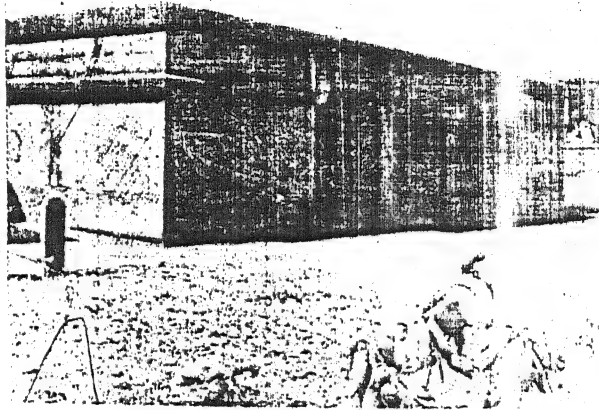
29- जैन मंदिर सं0 21
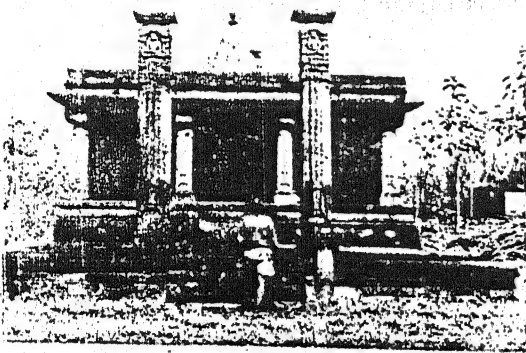
30- जैन मंदिर सं0 18
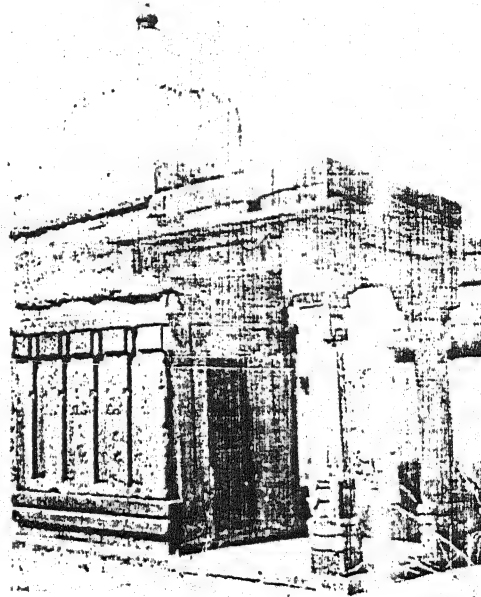
31- जैन मंदिर सं0 22
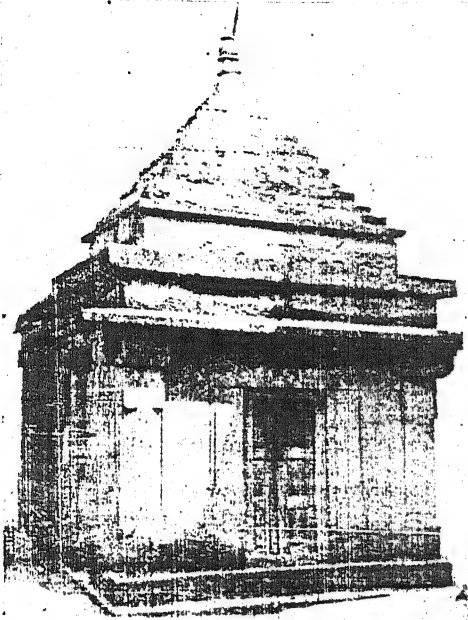
देवगढ़ –

32- जैन मंदिर सं० 27
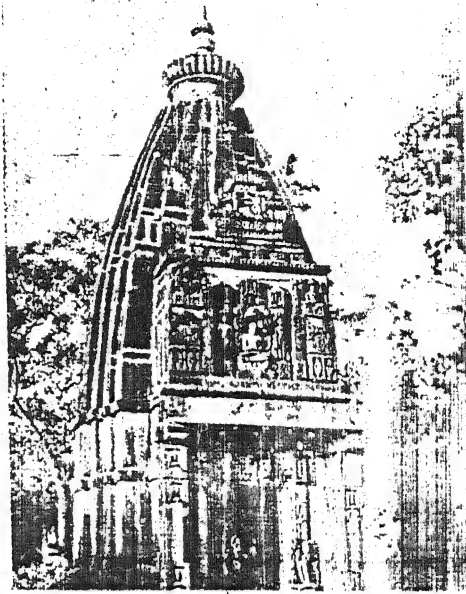
33- जैन मंदिर सं० 28
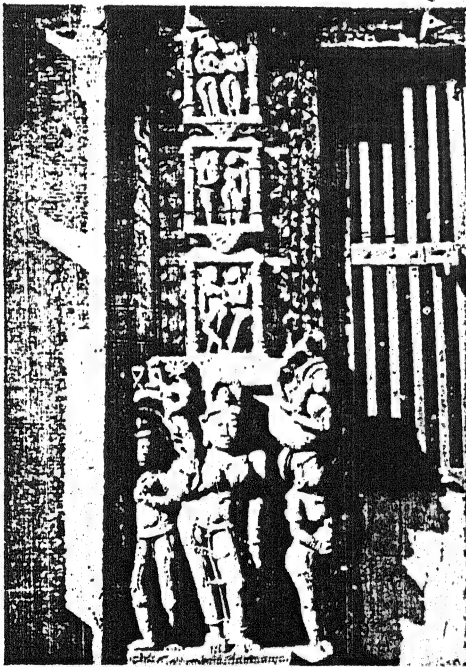
34- यमुना, नागी एवं युग्मः मंदिर सं० 28 के प्रवेश-द्वार के दायें पक्ष पर ।
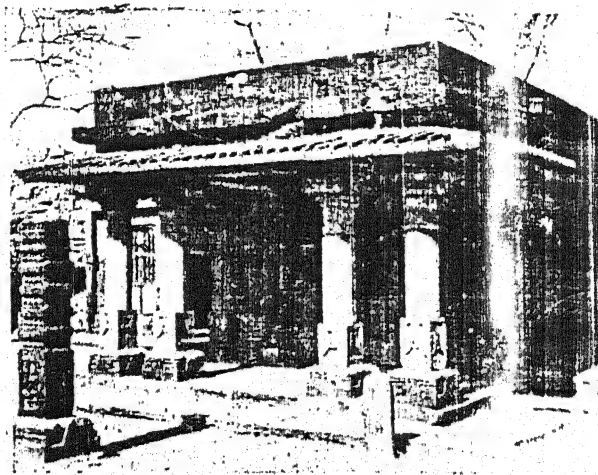
35- जैन मंदिर सं० 30

देवगढ़ -
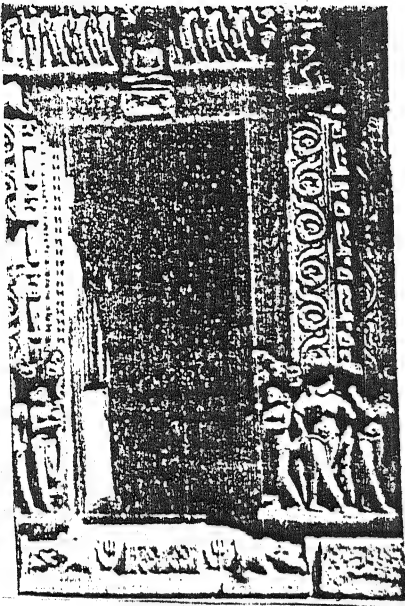
36- जैन मंदिर सं0 31 का प्रवेश-द्वार
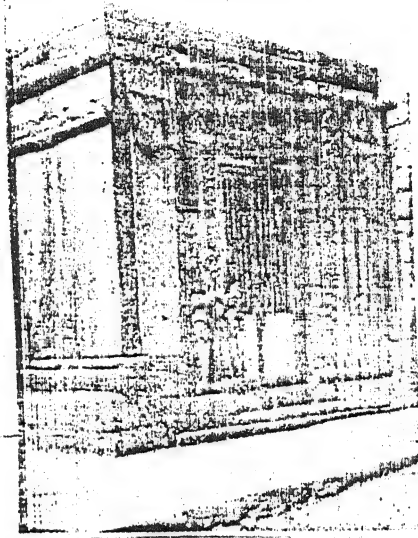
37- जैन मंदिर सं0 31
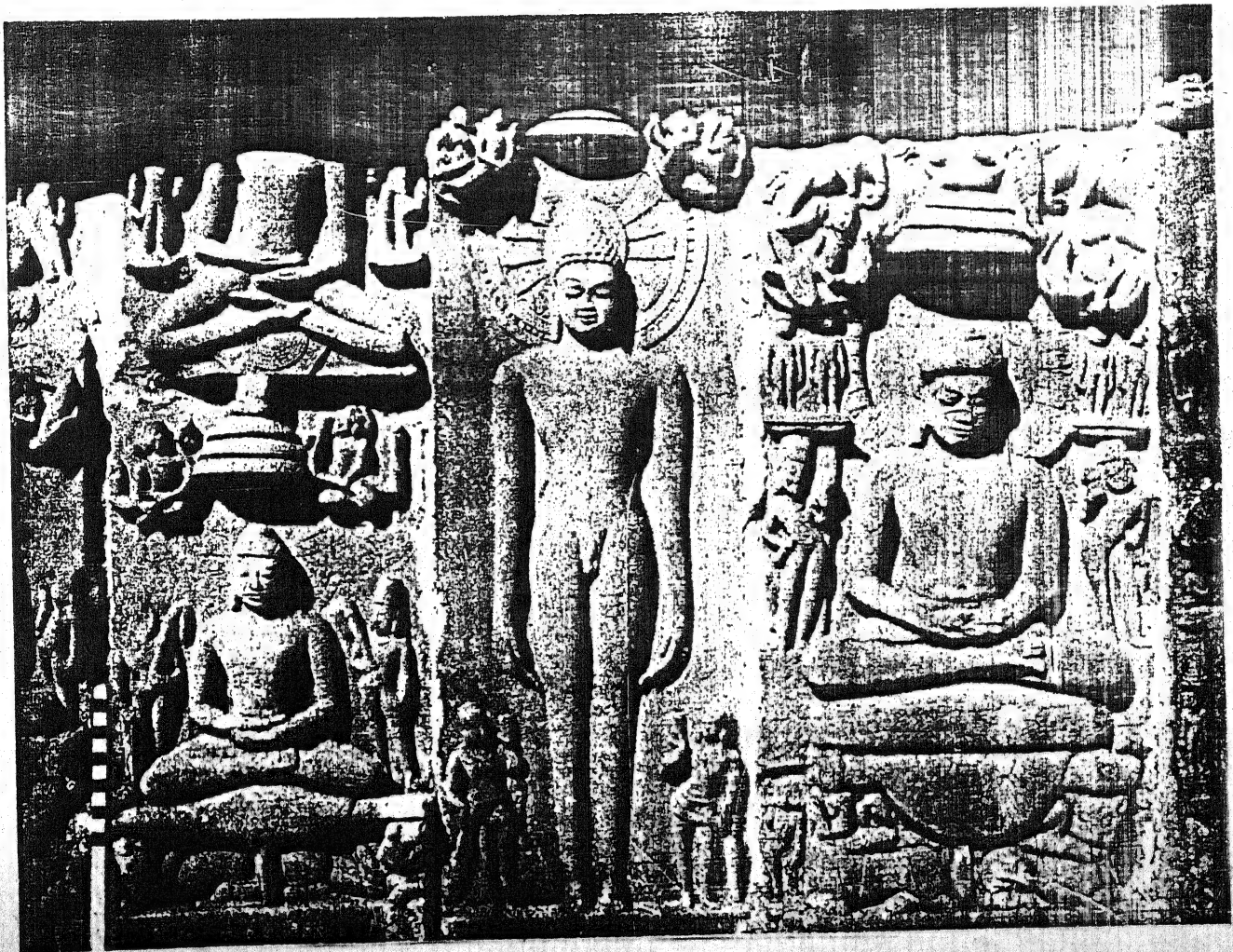
38- देवगढ़ मंदिर सं0 12 की भीतरी भित्ति में जैन मूर्तियाँ .

देवगढ़ -
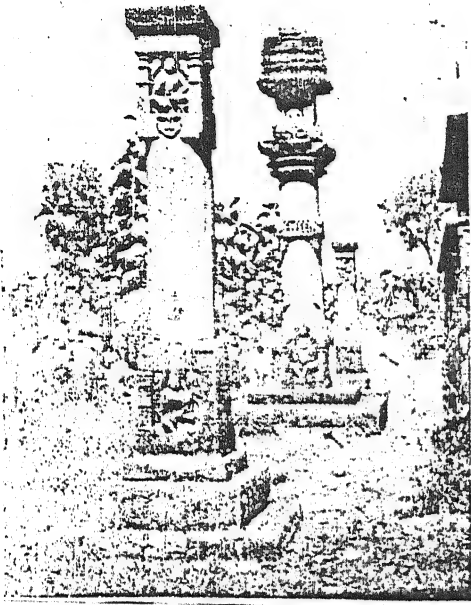
39- मानस्तम्भ क्रमांक 4 , 3, 2 (मंदिर सं0 1 के पीछे स्थित) ।
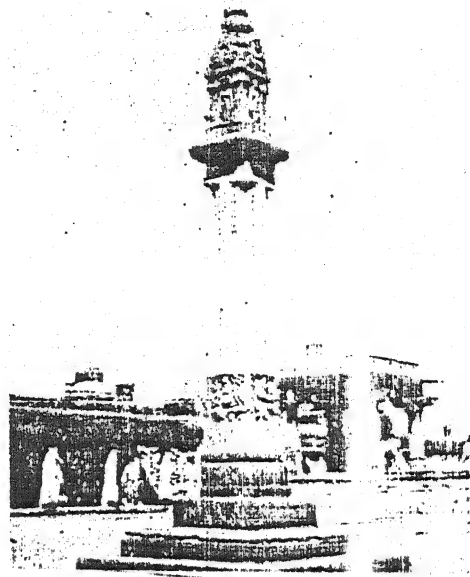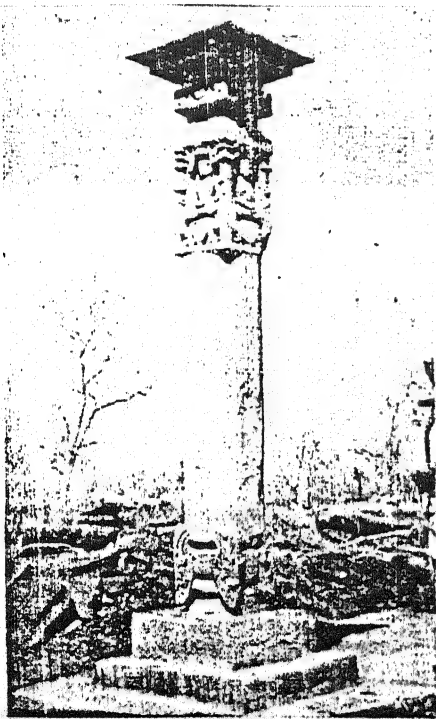
40- मानस्तम्भ क्रमांक 11

41- मानस्तम्भ क्रमांक 5
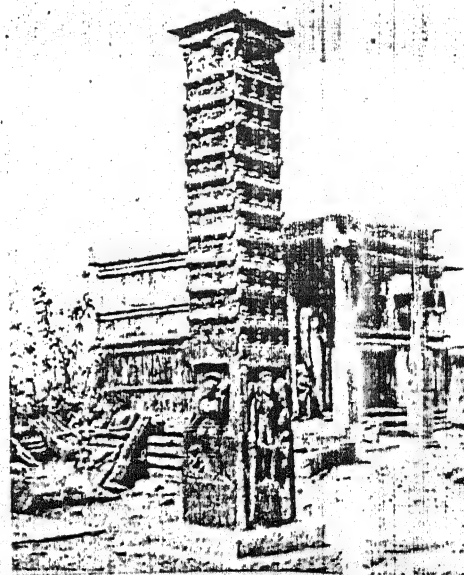
42- मानस्तम्भ क्रमांक 12: 176 मूर्तियाँ उत्कीर्ण .

देवगढ़ -
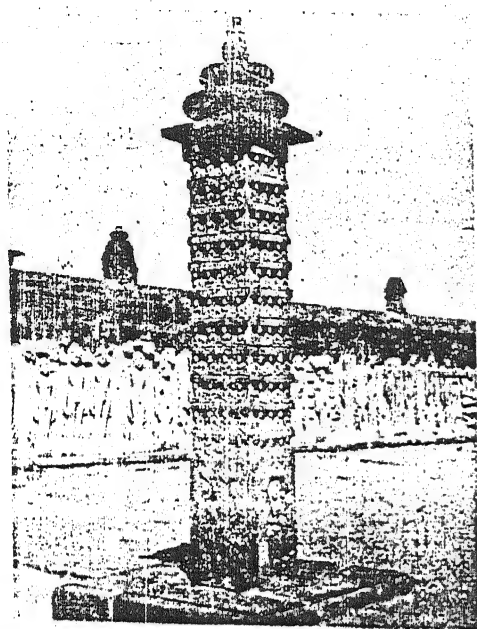
43- मानस्तम्भ क्रमांक 13: 176 मूर्तियाँ उत्कीर्ण.

44- अठारह भाषा और लिपि वाला अभिलेख
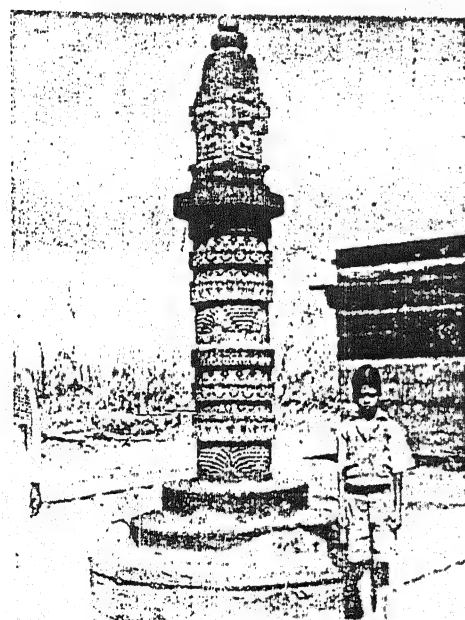
45- मानस्तम्भ क्रमांक 17
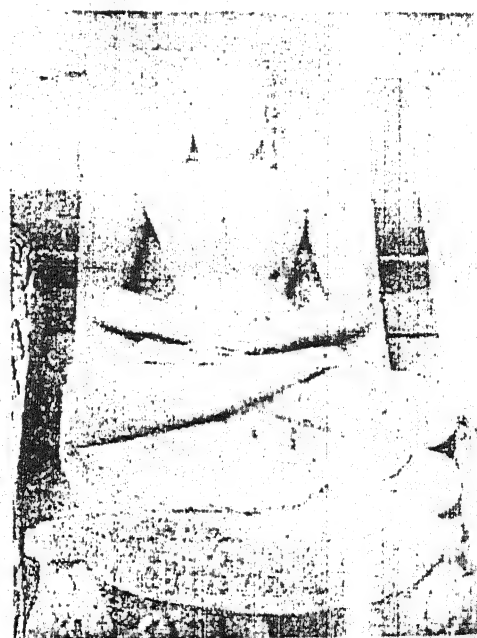
46- प्राचीनतम तीर्थंकर मूर्ति मंदिर नं० 12
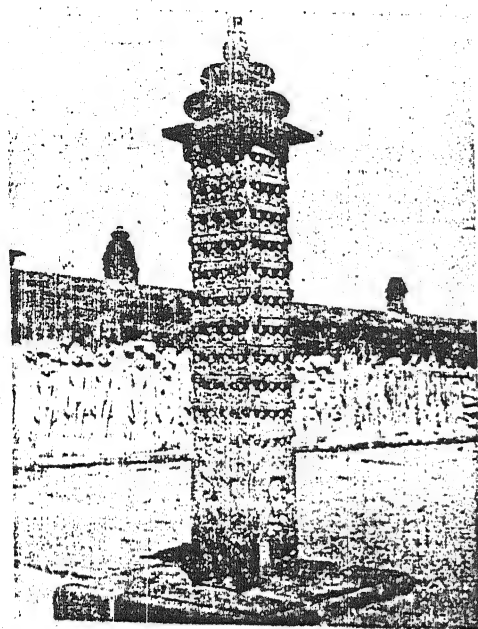
देवगढ़ –

43- मानस्तम्भ क्रमांक 13: 176 मूर्तियाँ उत्कीर्ण.

44- अज्ञात भाषा और लिपि वाला अभिलेख
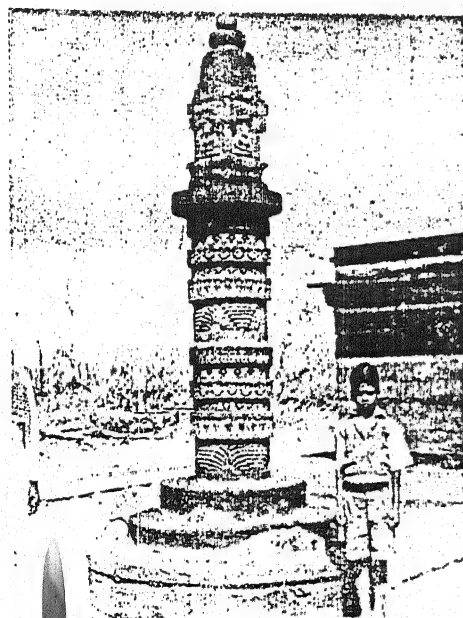
- मानस्तम्भ क्रमांक 17
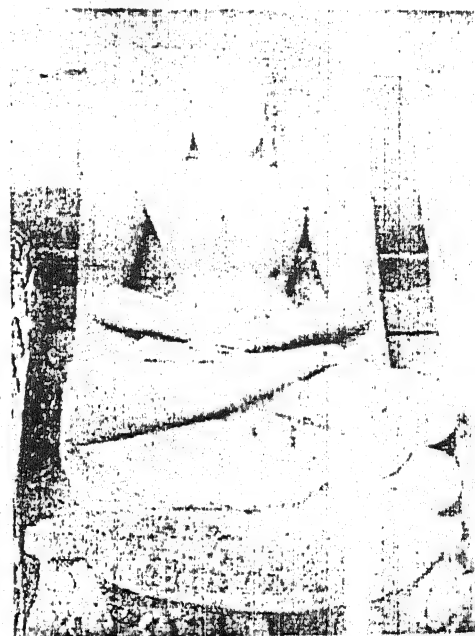
46- प्राचीनतम तीर्थंकर मूर्ति
मंदिर नं० 12

देवगढ़ -

47- विशालतम तीर्थंकर मूर्ति : (शान्तिनाथ के नाम से प्रसिद्ध) मंदिर सं0 12
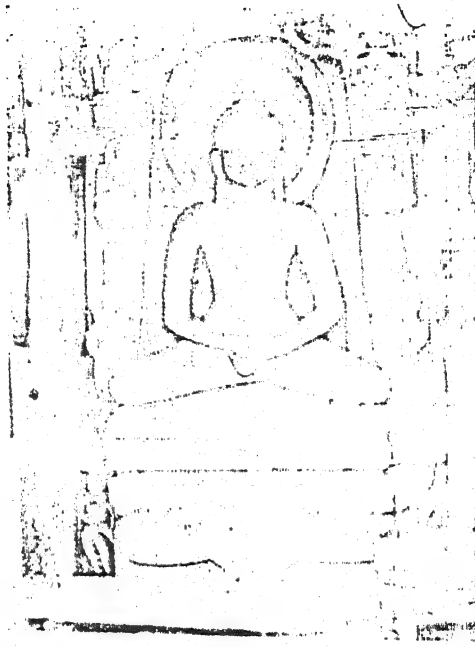
48- पद्मासन तीर्थंकर : मंदिर सं0 छह.

49- पद्मासन तीर्थंकर : मंदिर सं0 15

50- नेमिनाथ : मंदिर सं0 15

देवगढ़ -

51- पार्श्वनाथ : दोनों बगलों में सर्प का अंकन- मंदिर सं० 6
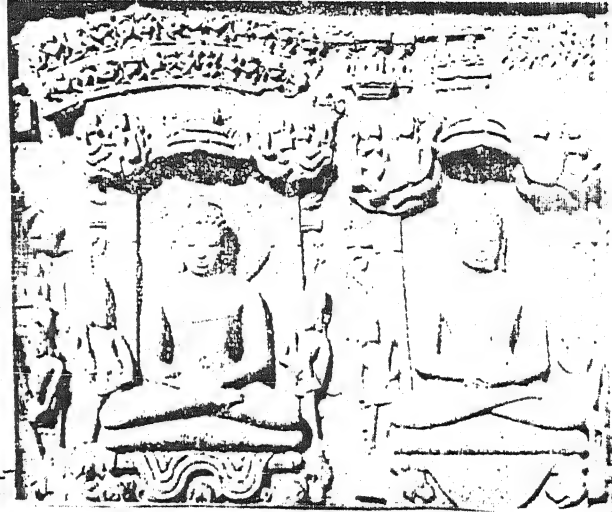
52- संगीत मण्डली , नृत्यमण्डली तथा पद्मासन तीर्थंकर : जैन चहारदीवारी ।

53- सुमतिनाथ : चकवा के चिन्ह सहित (जैन चहारदीवारी)

54- अभिनन्दननाथ : मंदिर सं० 9

देवगढ़ -

55- आदिनाथ : मंदिर सं0 2

56- तीर्थंकर : [1] लम्बी और सुसज्जित केश राशियुक्त तथा [2] नवग्रह अंकित [मंदिर सं0 13]
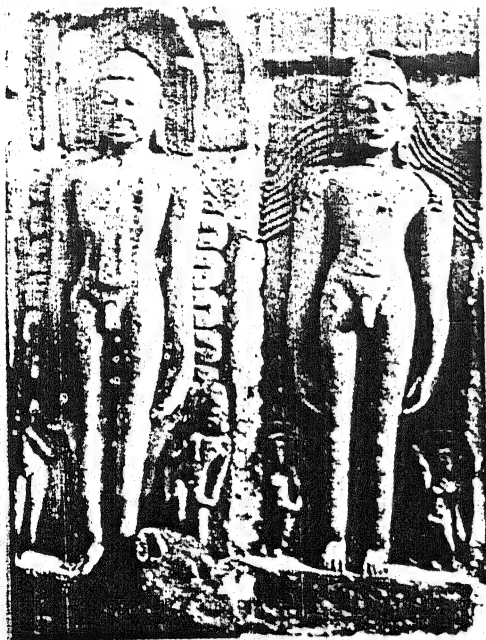
57- तीर्थंकर : 1, तकिया के रूप में फणावलि तथा 2. सुसज्जित केशराशि [जैन चहारदीवारी]

58- पार्श्वनाथ : तकिया के रूप में फणावलि : मंदिर सं0 12

देवगढ़ –

59- पार्श्वनाथ : सर्प के आसन पर आसीन: मंदिर सं० 25

60- तीर्थंकर [जिन चहारदीवारी] तथा तीर्थसेवक बइयाजी ।

61- तीर्थंकर : चीनी मुखाकृति तथा केशराशि: मंदिर सं० 12

62- ऋषभनाथ [जैन धर्मशाला]

देवगढ़ —

63- तीर्थंकर, पाठशाला दृश्य एवं चतुर्विंशति पट्ट: मंदिर सं० 4
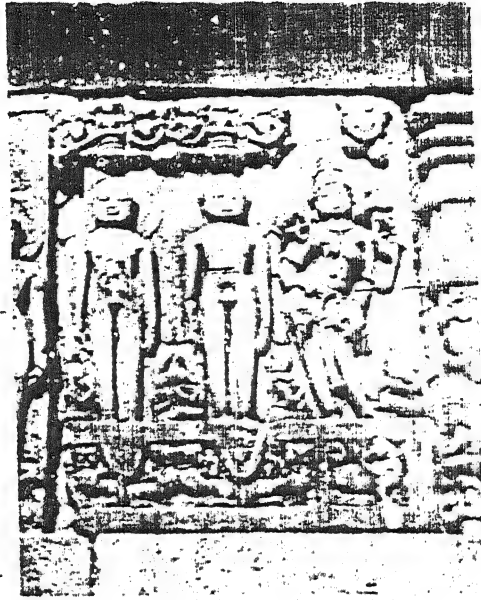
64- तीर्थंकर तथा खड्गी सरस्वती : मंदिर सं० 1
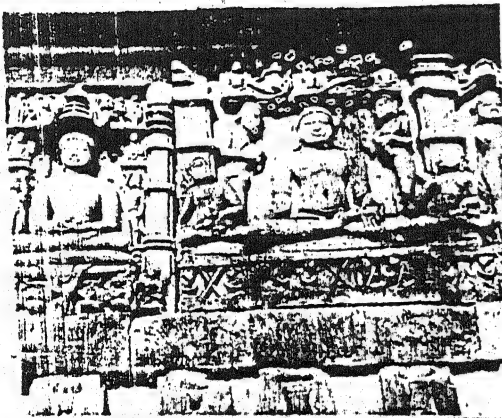
65- तीर्थंकर तथा पाठशाला-दृश्य : मंदिर सं० 1

66- पाठशाला दृश्य : मंदिर सं० 1
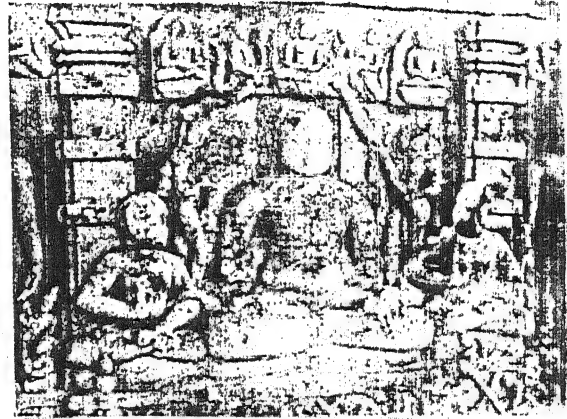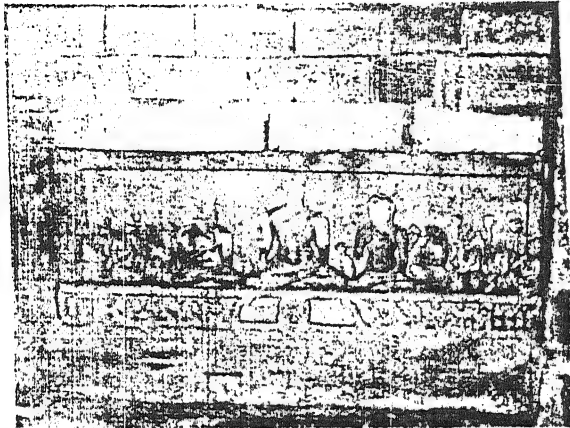
देवगढ़ -

67- पाठशाला दृश्य : मंदिर सं० 4

68- आचार्य, जिनके पीछे एक ओर श्राविका छत्र लिये खड़ी है तथा दूसरी ओर अंजलिबद्ध भक्त (झोली लटकाये हुए) अंकित है। पाठशाला दृश्य: मंदिर सं० 1.
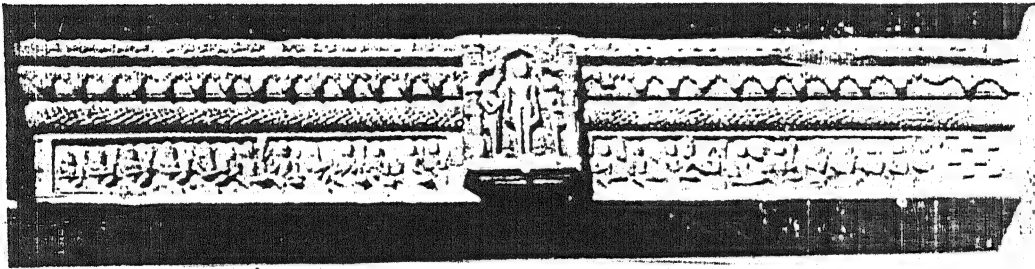
69- पाठशाला दृश्य : द्वितीय कोट का प्रवेशद्वार

70- पाठशाला दृश्य तथा तीर्थंकर : मंदिर सं० 12 के सामने पड़ा हुआ, किसी द्वार का सिरदल ५.

देवगढ़ –

71- उपाध्याय [दिगम्बर जैन चैत्यालय]
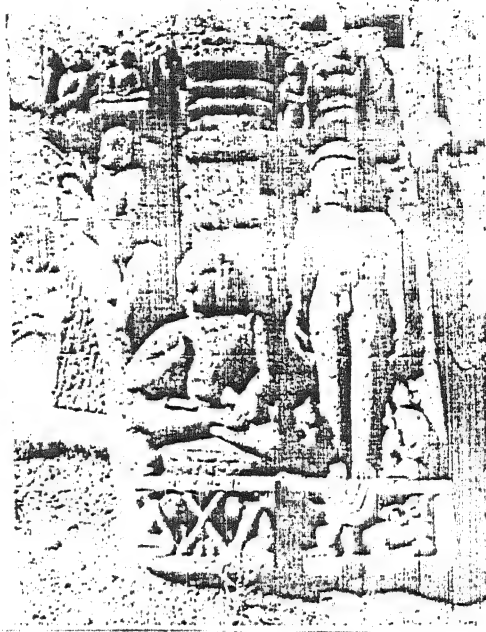
72- उपाध्याय : मंदिर-सं० एक के निकट ध्वस्त अधिष्ठान पर ।

73- उपाध्याय [जैन धर्मशाला]

74- बाहुबलि [जैन धर्मशाला]

देवगढ़ -

75- बाहुबलि [मंदिर सं० 11]
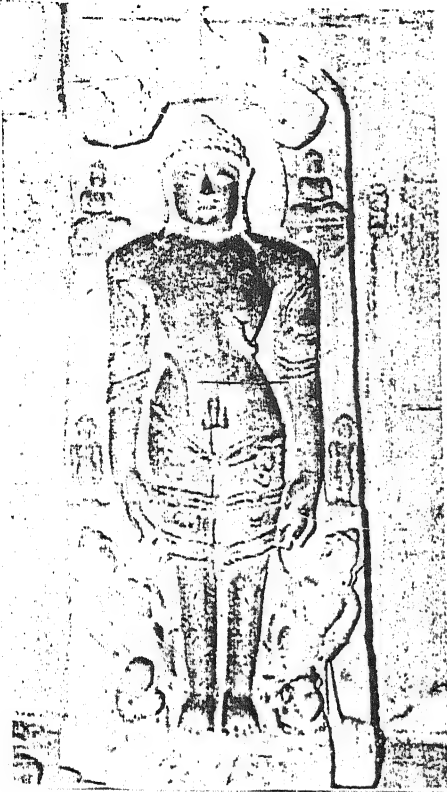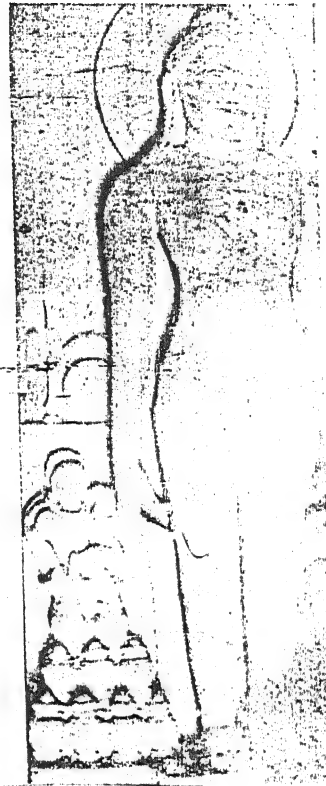
76- भरत चक्रवर्ती : जैन धर्मशाला

77- बाहुबलि [मंदिर सं० 2]

78- मुनिविहार, उपदेश एवं प्रेमालिंगित युग्म: मंदिर सं० 12 के सामने पड़े हुए ध्वंसावशेष

देवगढ़ —

79- सरस्वती : मंदिर सं० 19

80- सरस्वती : मंदिर सं० 19
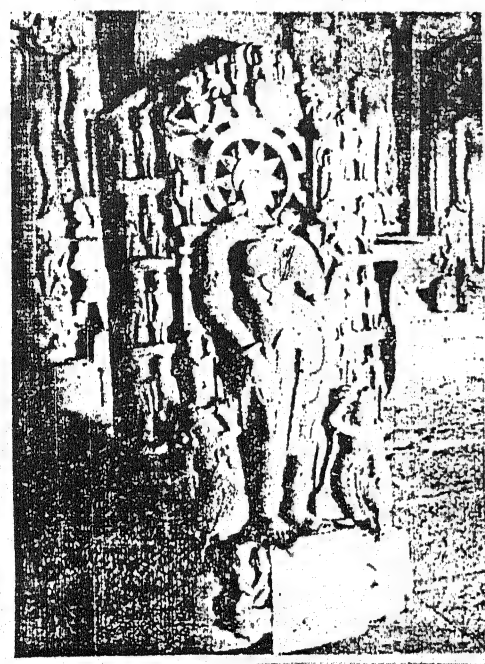
81- मानसी देवी : मंदिर सं० 19

82- गोमुखयक्ष : मंदिर सं० 12

देवगढ़ -

83- चक्रेश्वरी : विंशतिभुजी [जैन धर्मशाला]

84- चक्रेश्वरी : विंशतिभुजी [जैन धर्मशाला]
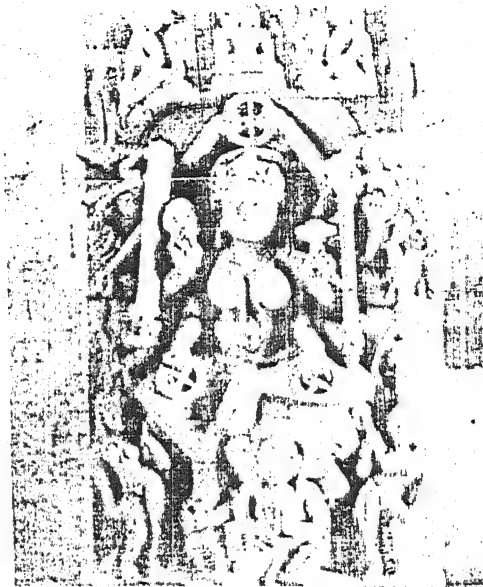
85- सुलोचना यक्षी [मंदिर सं० 12]
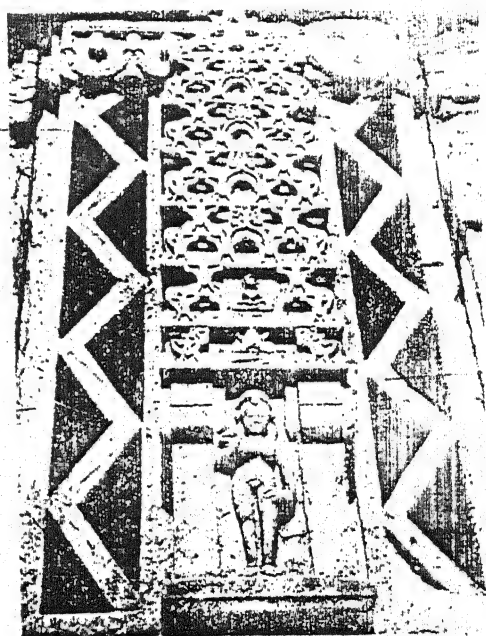
86- सुमालिनी यक्षी [मंदिर सं० 12]

देवगढ़ -

87- धरणेन्द्र-पद्मावती [मंदिर सं0 24]

88- संगीत मण्डली, नृत्य मण्डली, धरणेन्द्र-पद्मावती एवं अम्बिका [जैन चहारदीवारी]

89- धरणेन्द्र-पद्मावती :जैन चहारदीवारी।
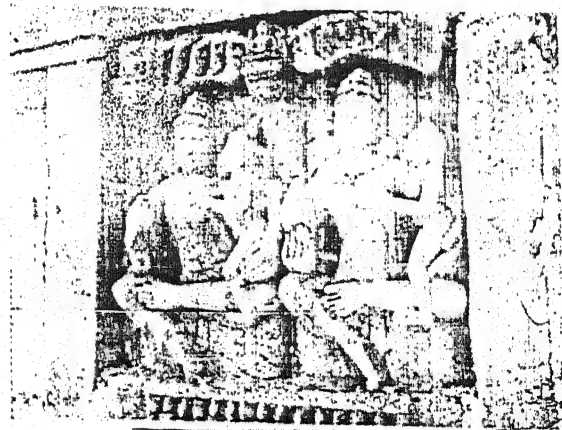
90- धरणेन्द्र-पद्मावती

देवगढ़ —

91- चक्रेश्वरी : दशभुजी (मानस्तम्भ क्र0 11)

92-- क्षेत्रपाल (मानस्तम्भ क्रमांक 3)
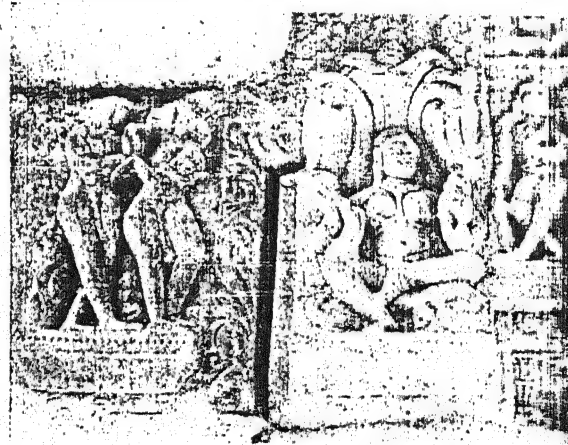
93- देवी : द्वादशभुजी (मानस्तम्भ क्र0 11)

94- स्नेही दम्पति (मंदिर सं0 4)

95- पिटता हुआ पुरुष और लगाती हुई नारी : मंदिर सं0 4

96- दर्पणधारिणी शुचिस्मिता : मंदिर सं0 11

97- दर्पण के सहारे ललाटिका ठीक करती हुई सुन्दरी ‹मंदिर सं0 18›

98- संगीत मण्डली और गोमुख यक्ष मंदिर सं0 12 का अर्धमण्डप

देवगढ़ -
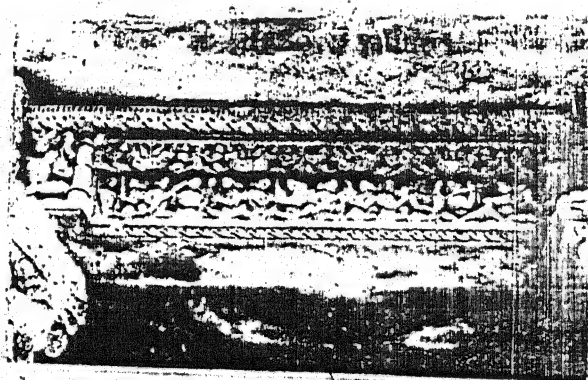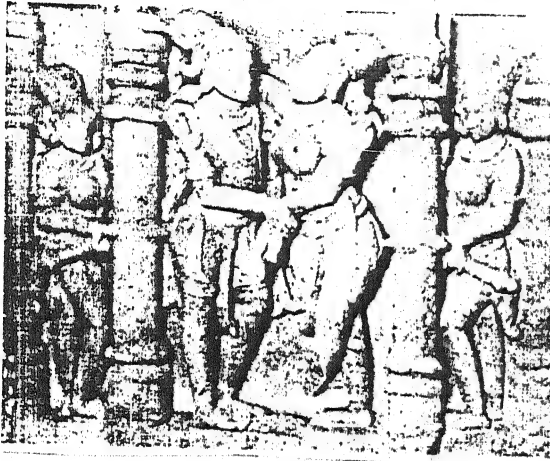
99- युग्म : स्नेहालिंगन (जैन धर्मशाला)

100- स्नेहालिंगन , दाढ़ी आदि (जैन चहारदीवारी)

101- सम्भोगरत एवं स्नेहालिंगित युग्म (मंदिर सं0 11)

102- वैभवसम्पन्न किन्तु विनम्र उपासक (जैन चहारदीवारी) ।

चाँदपुर -
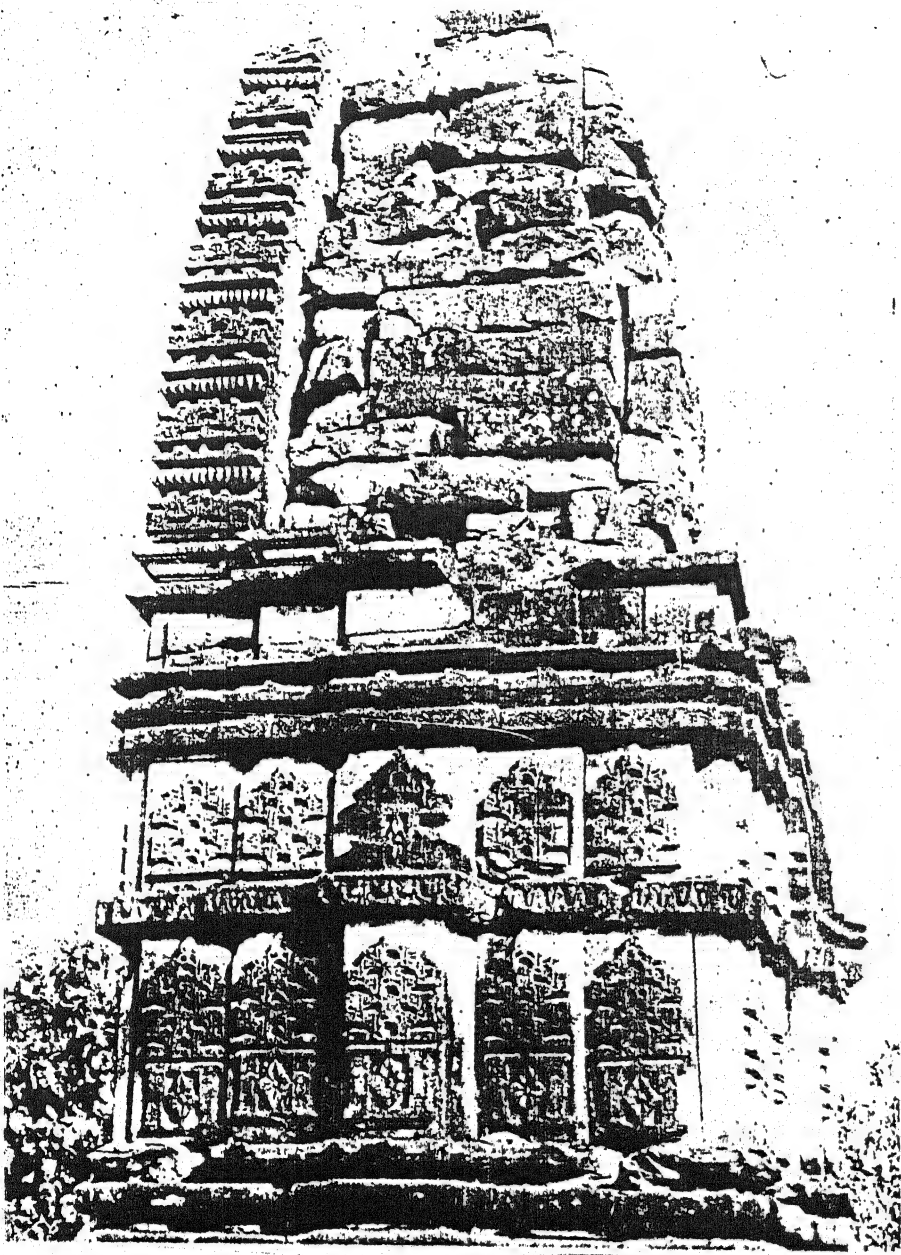
103- चांदपुर क्षेत्र पर स्थित प्राचीन जैन मंदिर

चाँदपुर –
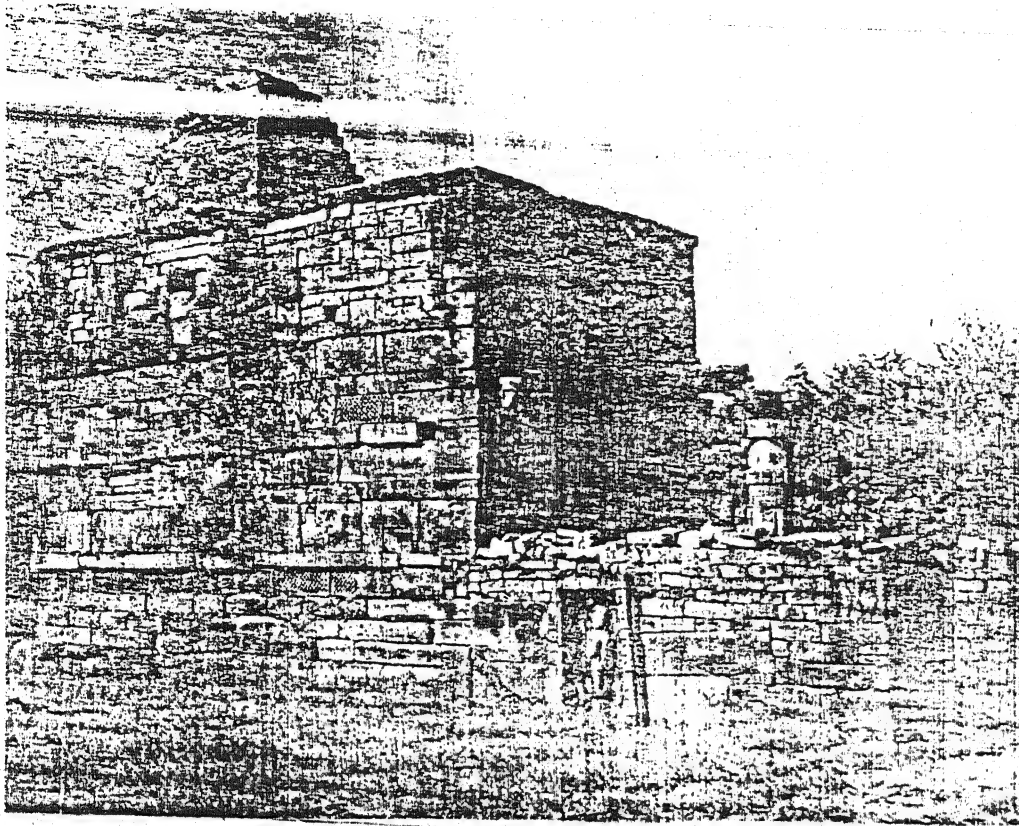
१०४– चाँदपुर मंदिर– दक्षिणी ओर से
सामान्य दृश्य .
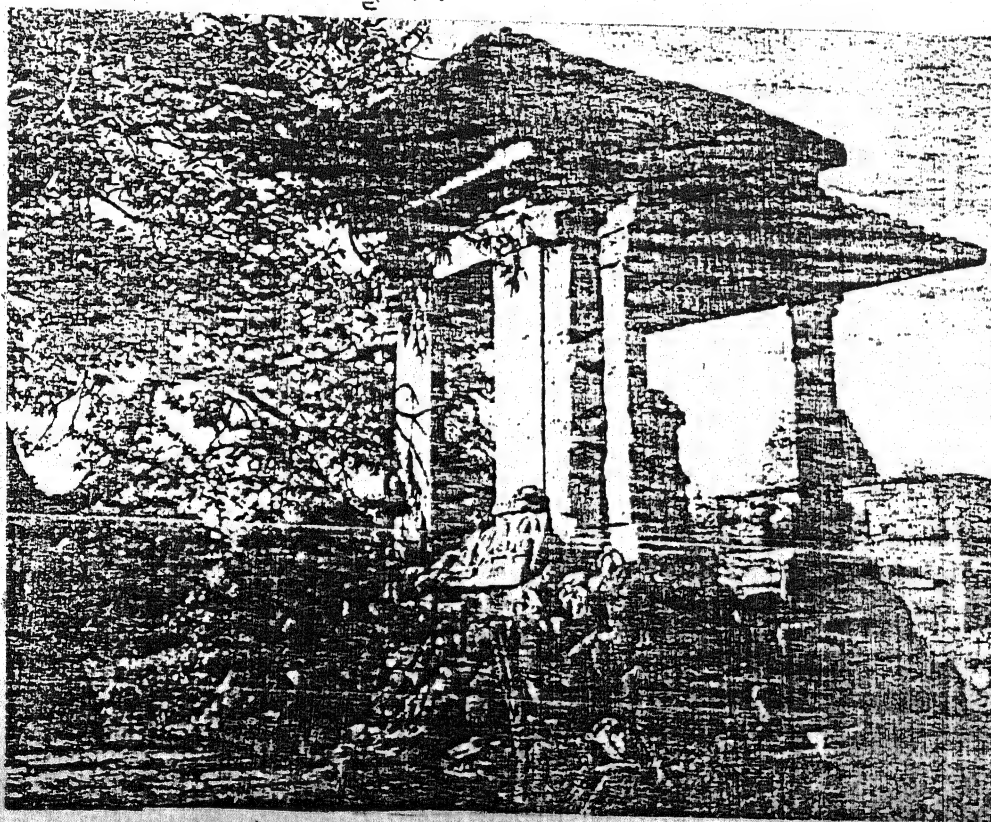
१०५– चाँदपुर मंदिर –मढ़िया का पिछला हिस्सा

चाँदपुर -

106- चाँदपुर क्षेत्र - कुछ खण्डित मूर्तियां
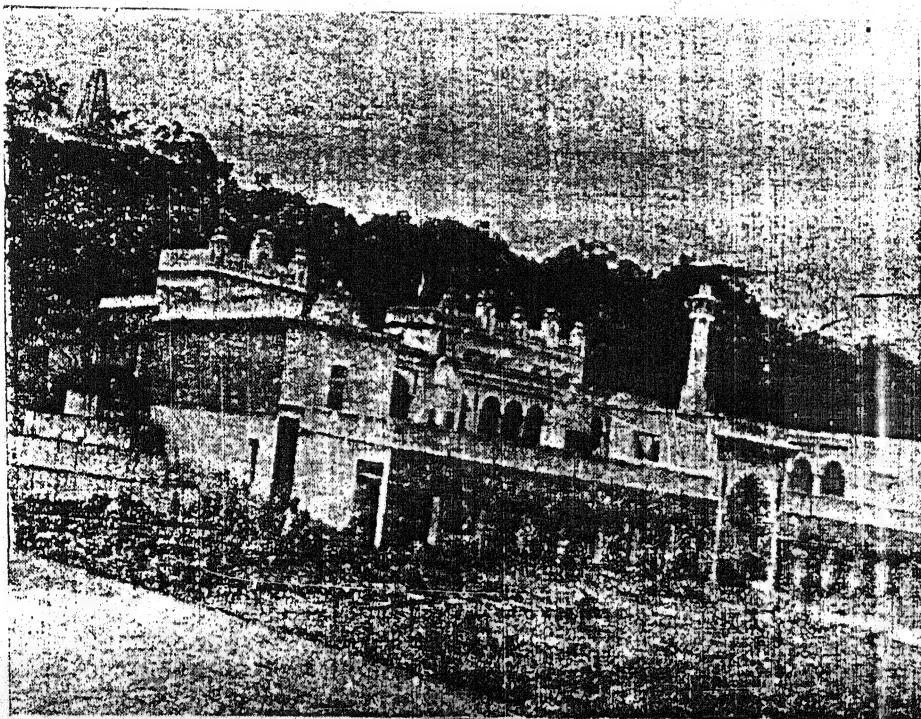
पावागिरि -

107- पावागिरि के जैन मंदिर

दुधई –

108- दुधई क्षेत्र - जैन मंदिर

दुधई -
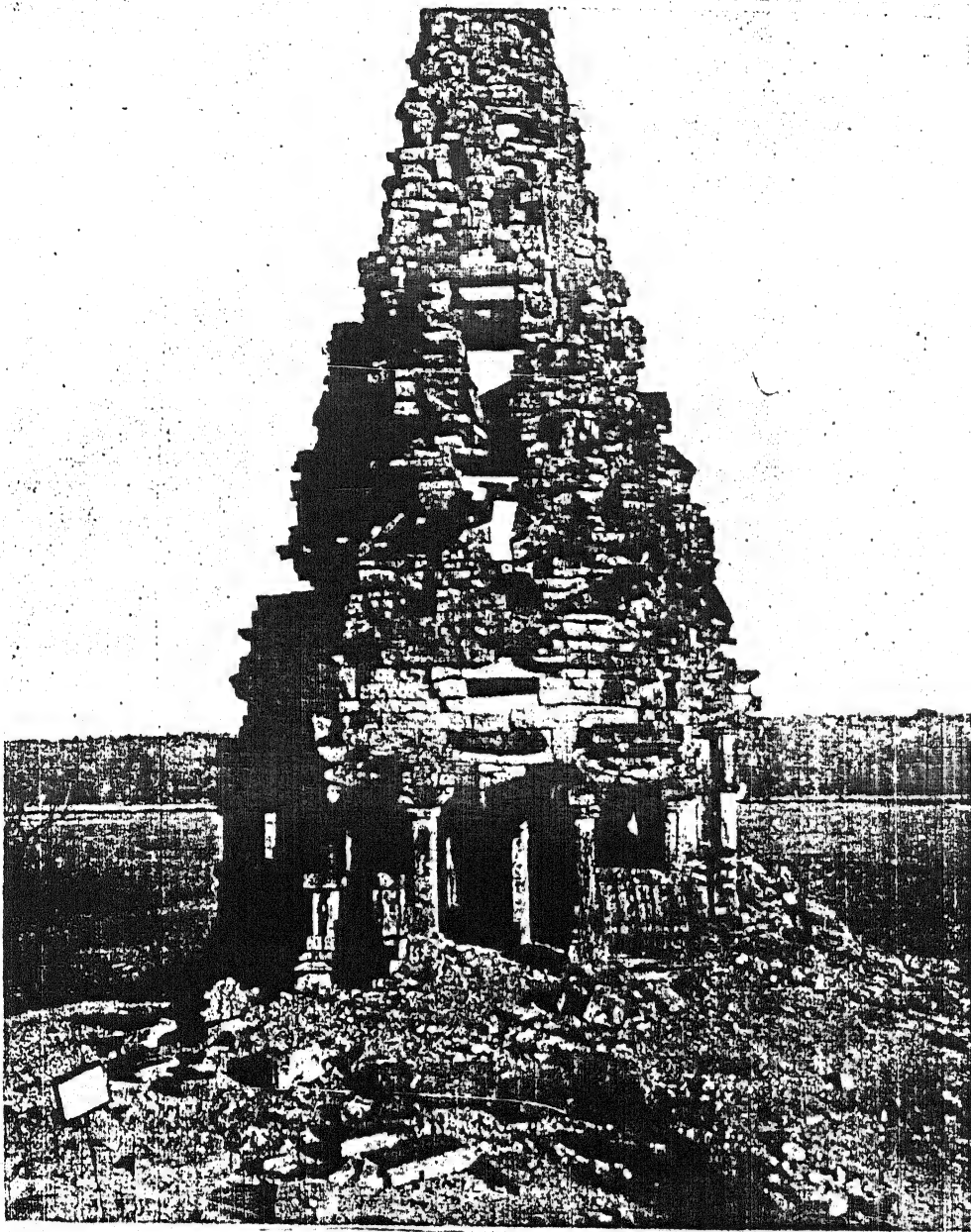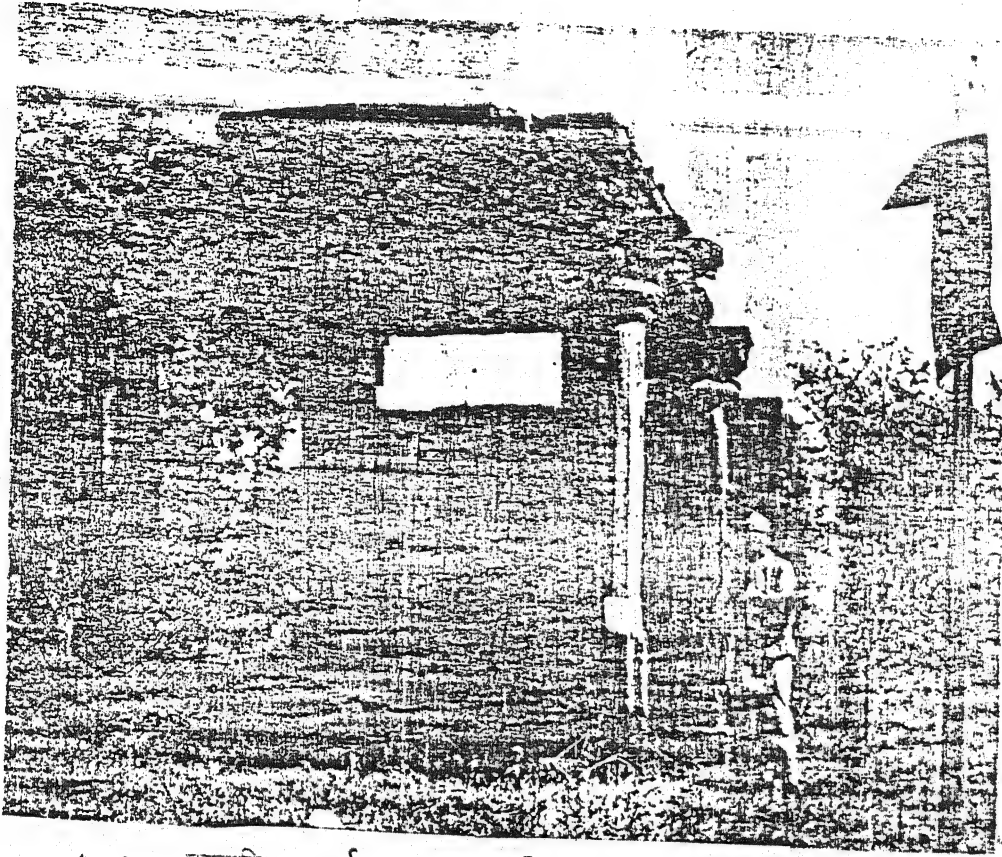
109- प्राचीन दुधई ग्राम- शान्तिनाथ मंदिर का दक्षिणी-पश्चिमी भाग .
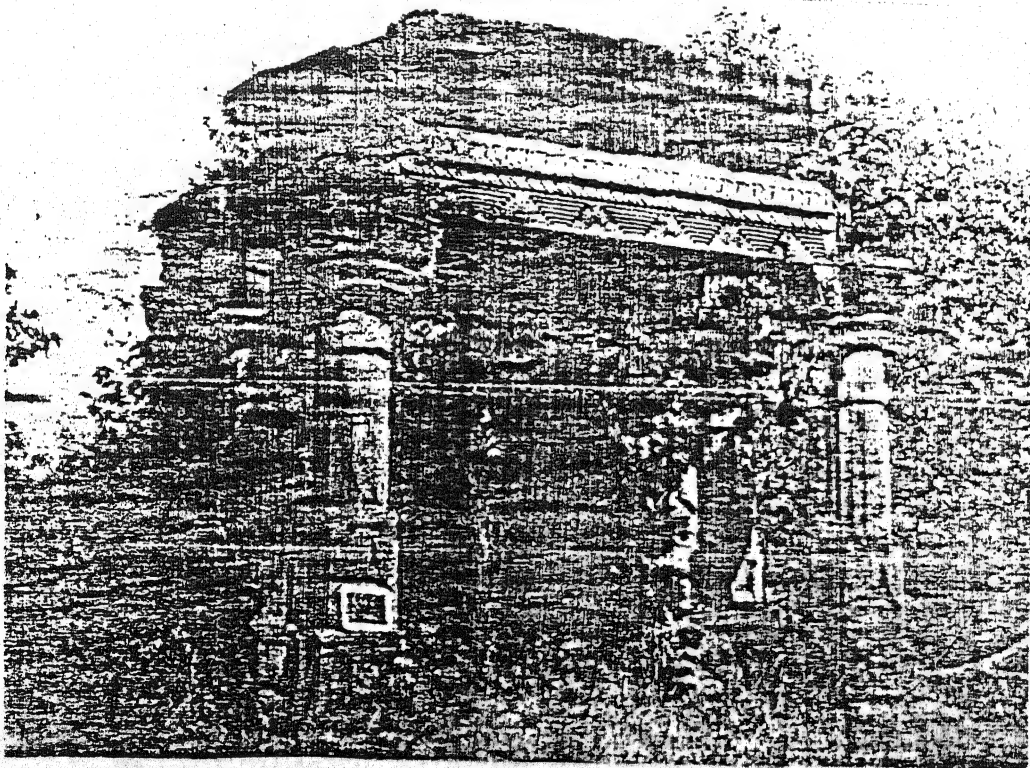
110- प्राचीन दुधई ग्राम -शान्तिनाथ मंदिर उत्तर के भग्न मंदिरों का दृश्य .
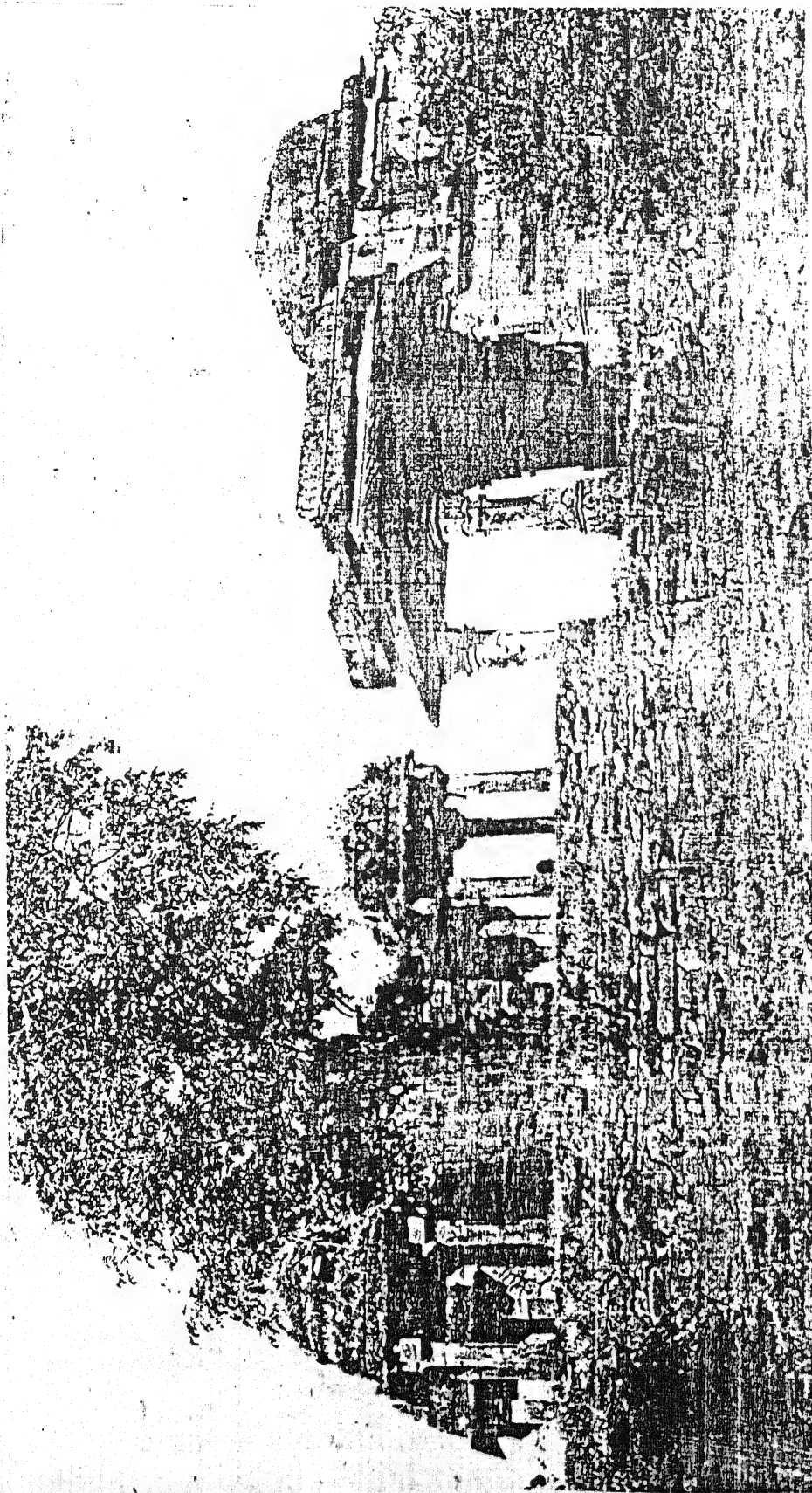
111 — मदनपुर पंचमढ़ी और चम्पोमढ़ दोनों का सामान्य दृश्य.

112- मदनपुर - दक्षिणी ओर से चम्पोमढ का दृश्य.
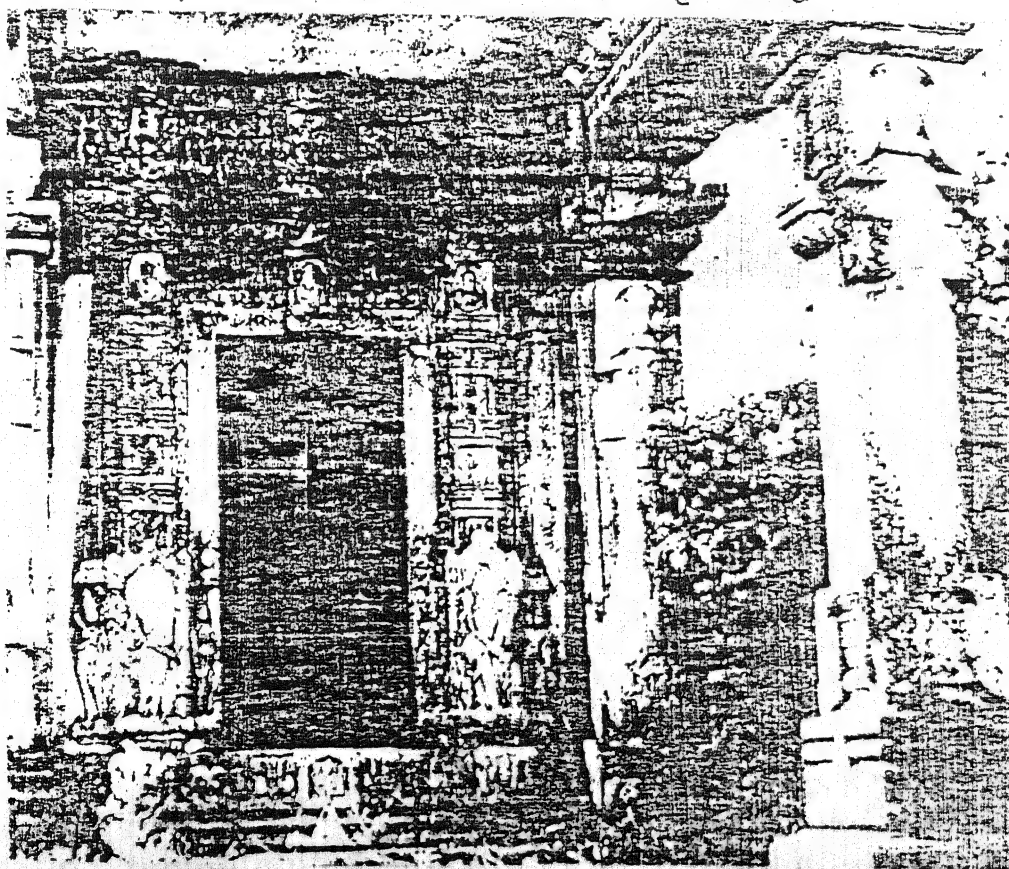
113- मदनपुर- चम्पोमढ द्वार की चौखट और
और भीतरी हिस्सा .
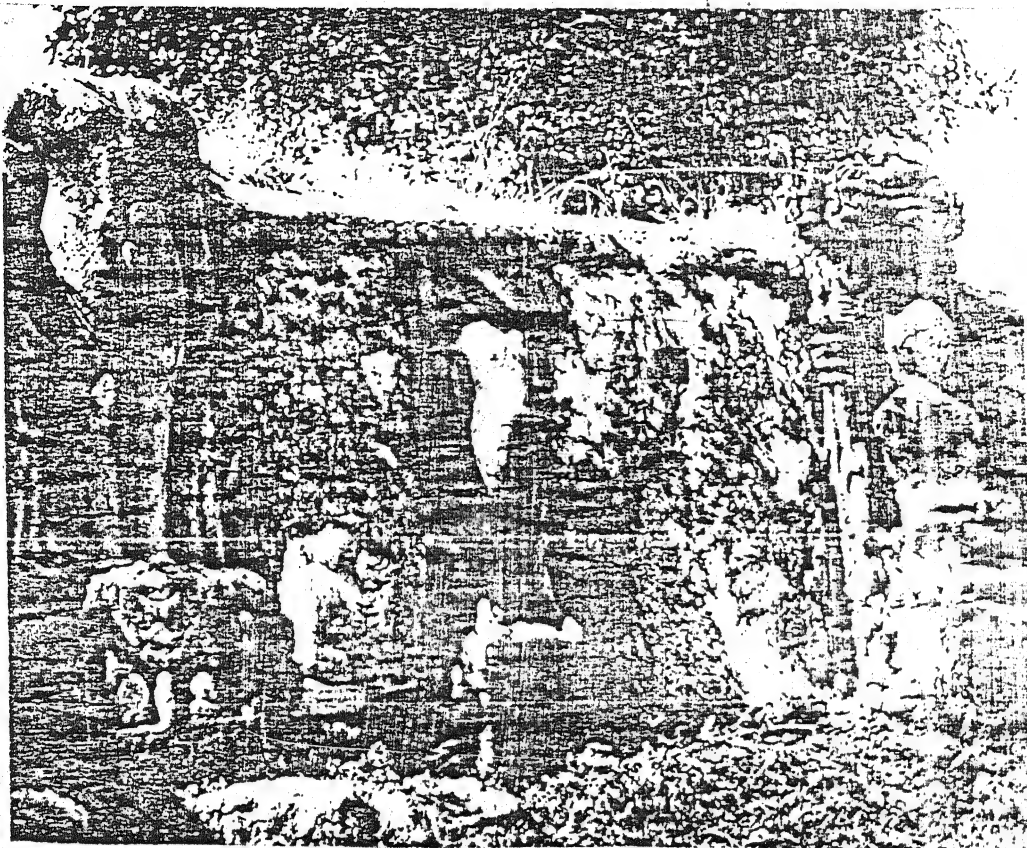
बानपुर -

114- बानपुर - सहस्त्रकूट चैत्यालय का पूर्वी हिस्सा।
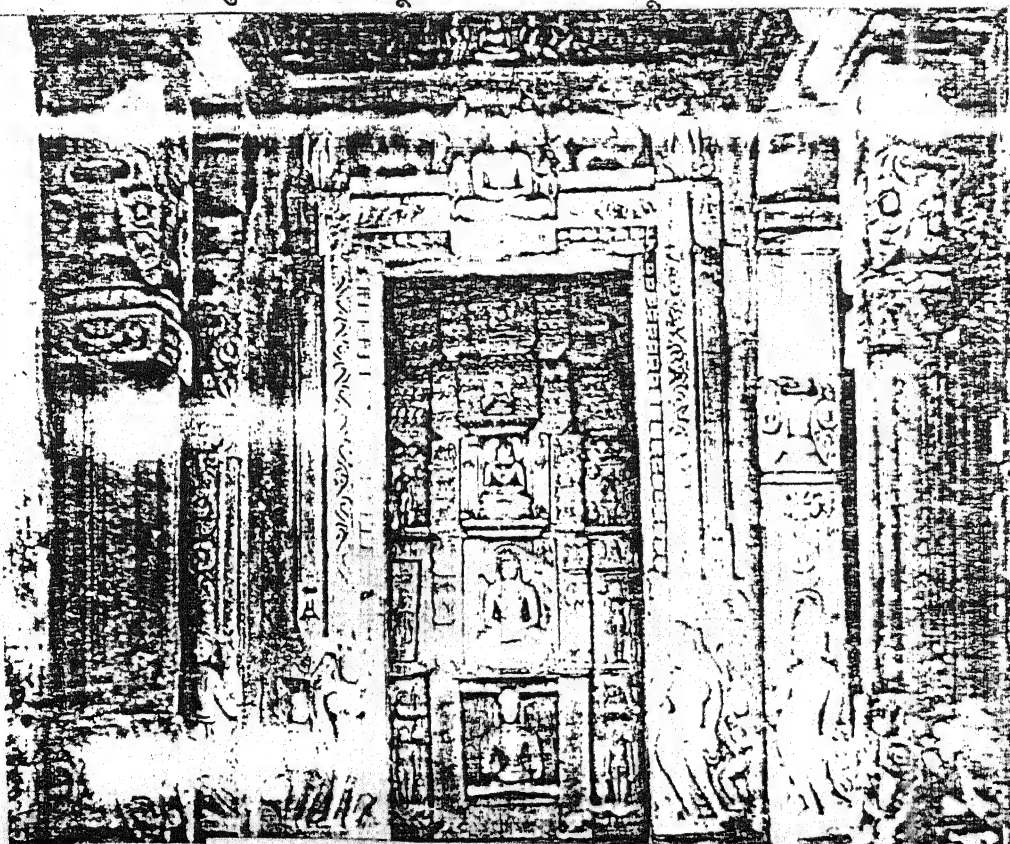
115- बानपुर - सहस्त्रकूट चैत्यालय का पश्चिमी भाग [हिस्सा]।
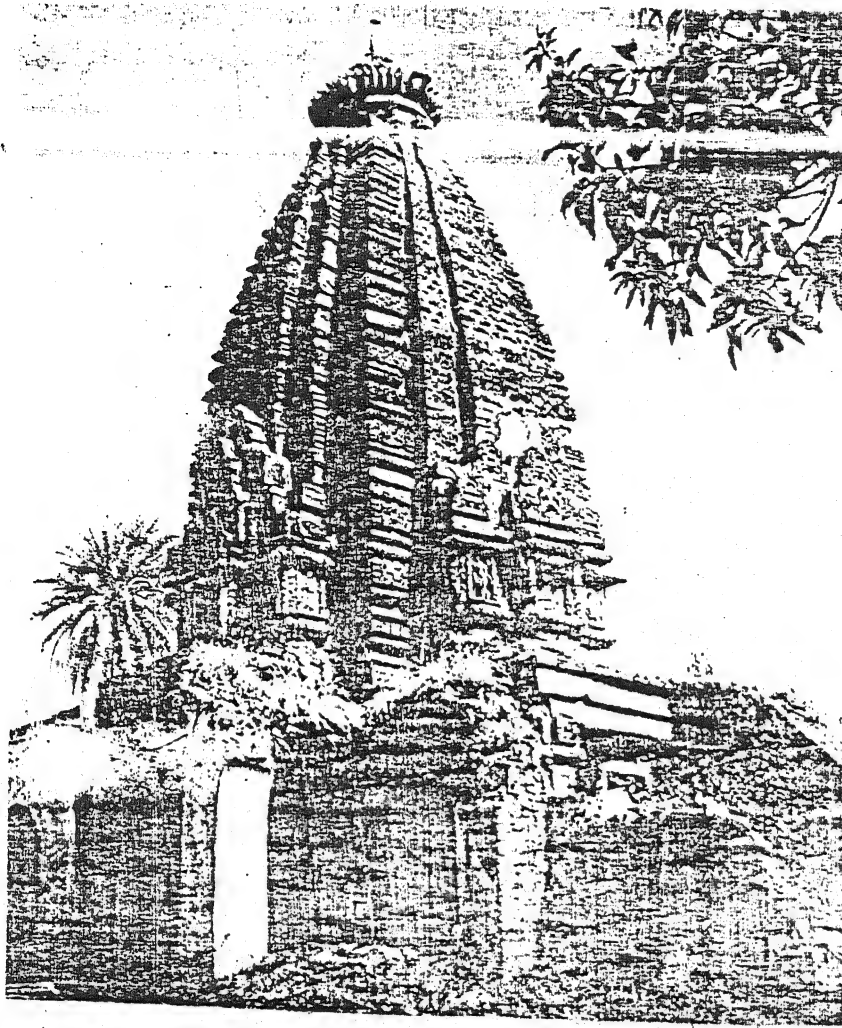
116- बानपुर -सहस्त्रकूट चैत्यालय के दक्षिणी हिस्से का दृश्य ।
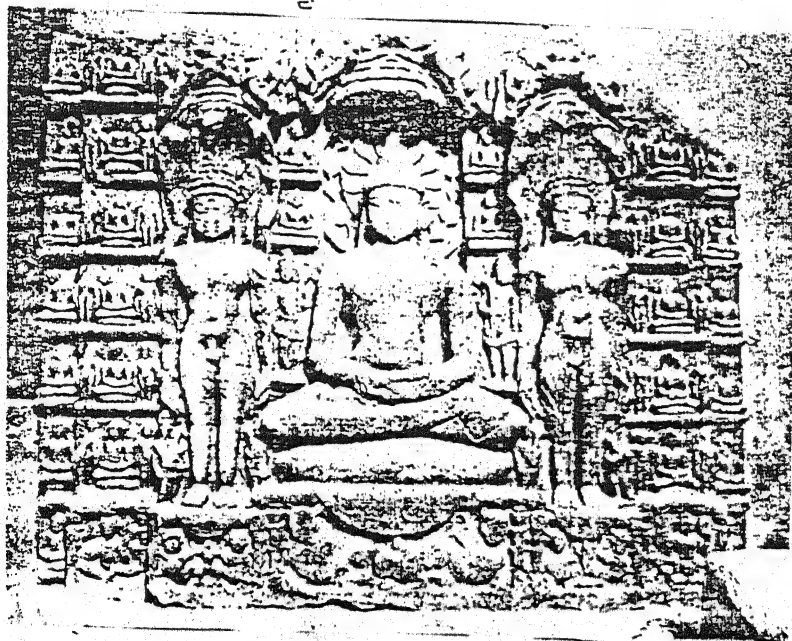
117- बानपुर - एक शिलाफलक जिस पर 56 कलात्मक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं ।
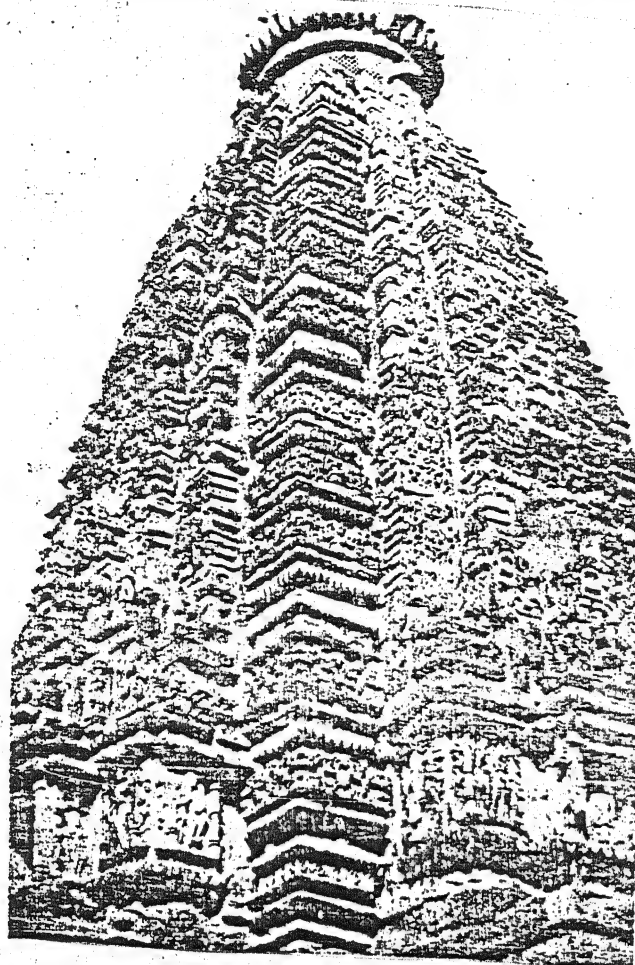
118- बानपुर - सहस्त्रकूट चैत्यालय का शिखर
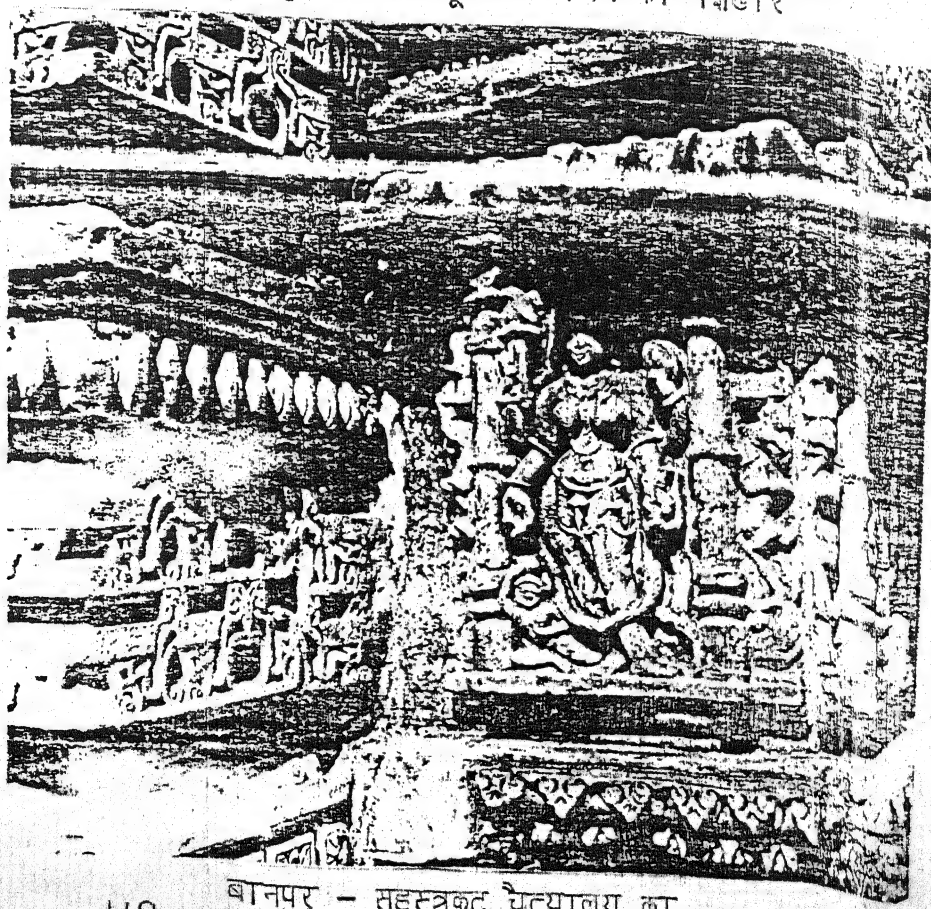
119- बानपुर - सहस्त्रकूट चैत्यालय का
दक्षिण-पूर्वी ऊपर का हिस्सा .
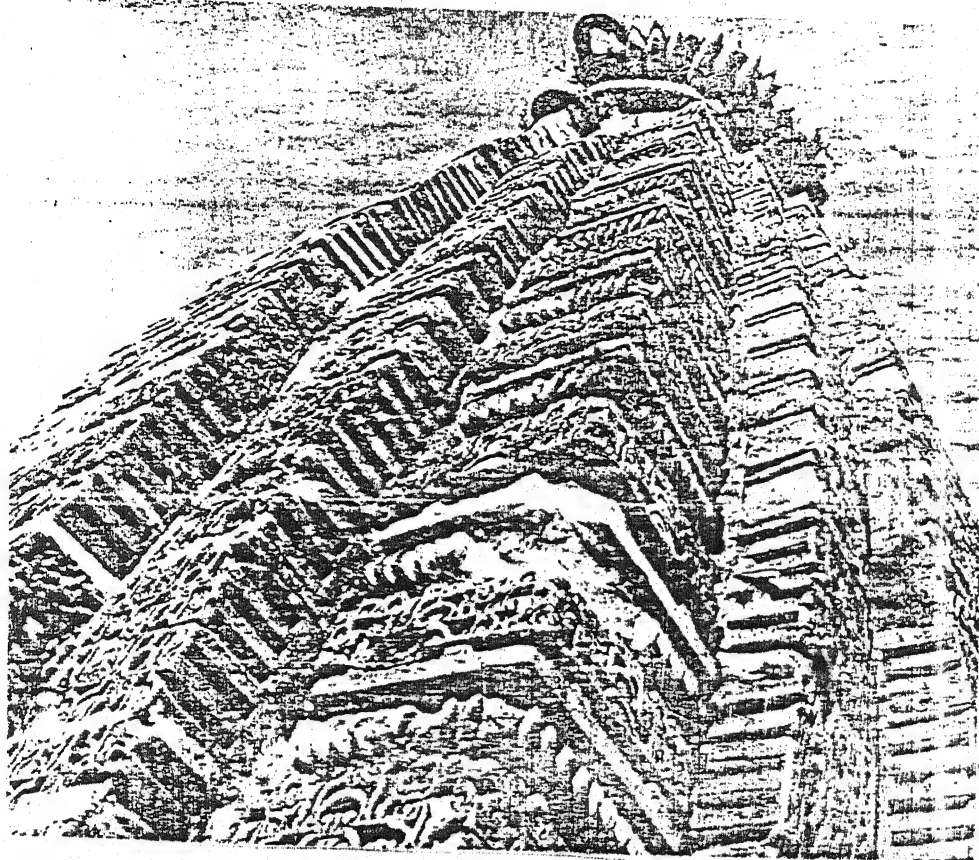
बानपुर -

120- बानपुर -सहस्त्रकूट चैत्यालय का दक्षिण-पूर्व से शिखार का दृश्य .
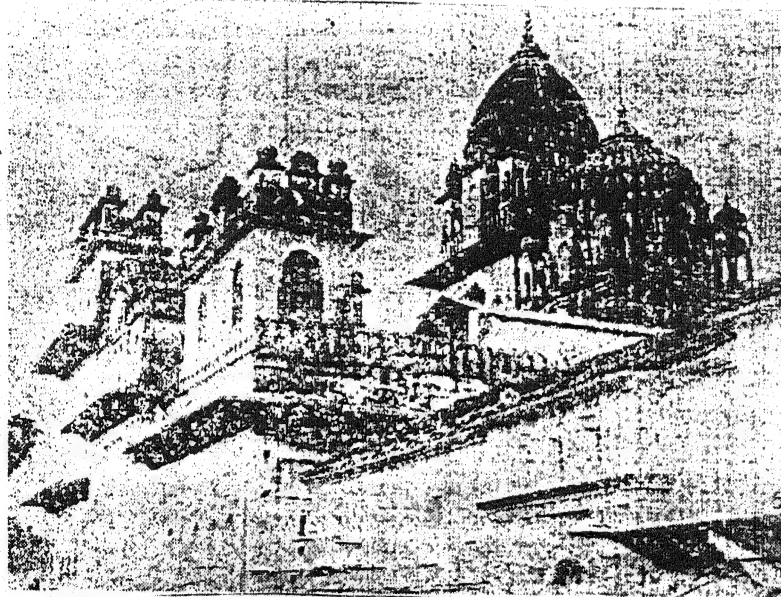
121- बानपुर का बड़ा जैन मंदिर

सिरौन -
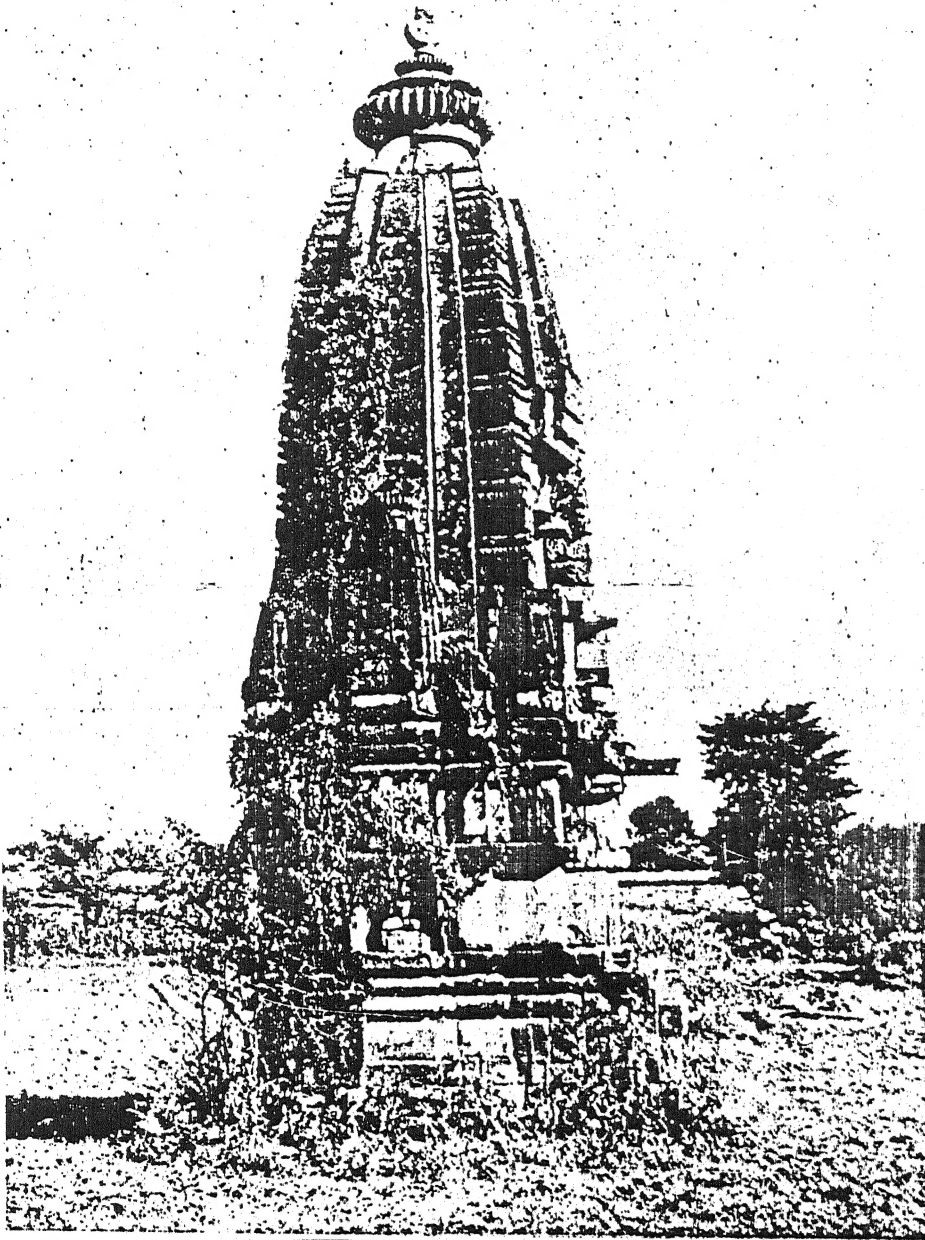
122 - सिरौन - एक भग्न मंदिर
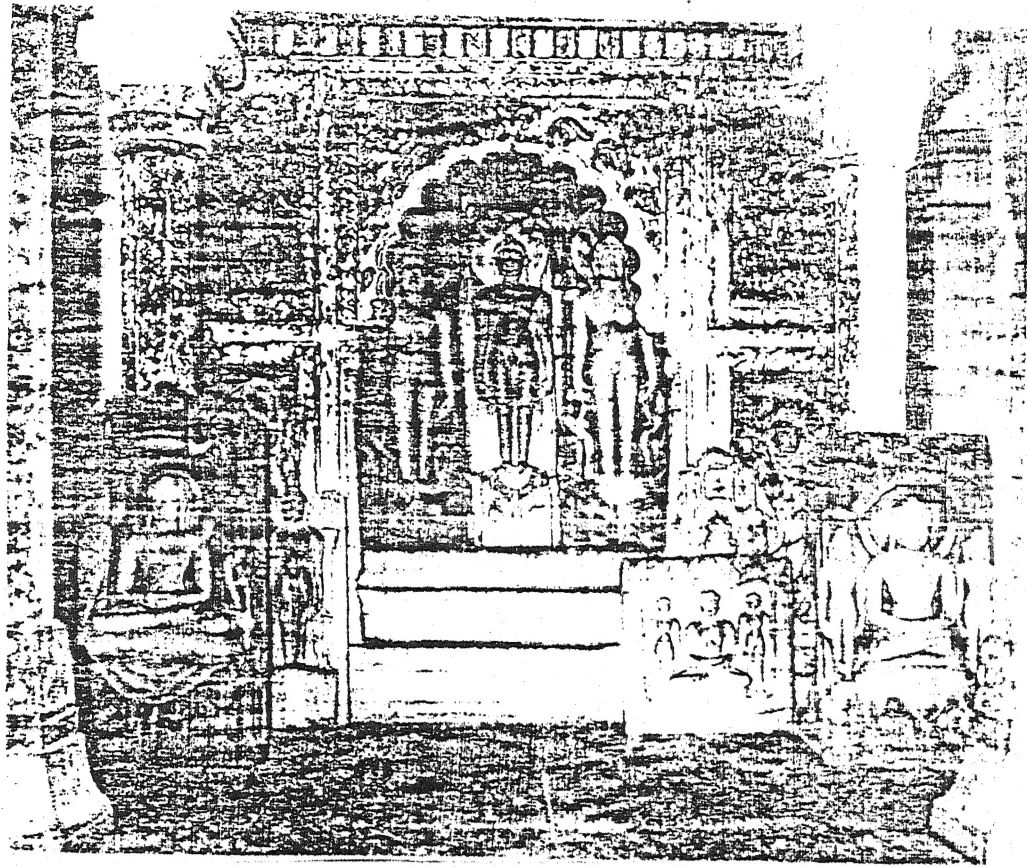
123- सेरोन मंदिर सं0 1 का दृश्य
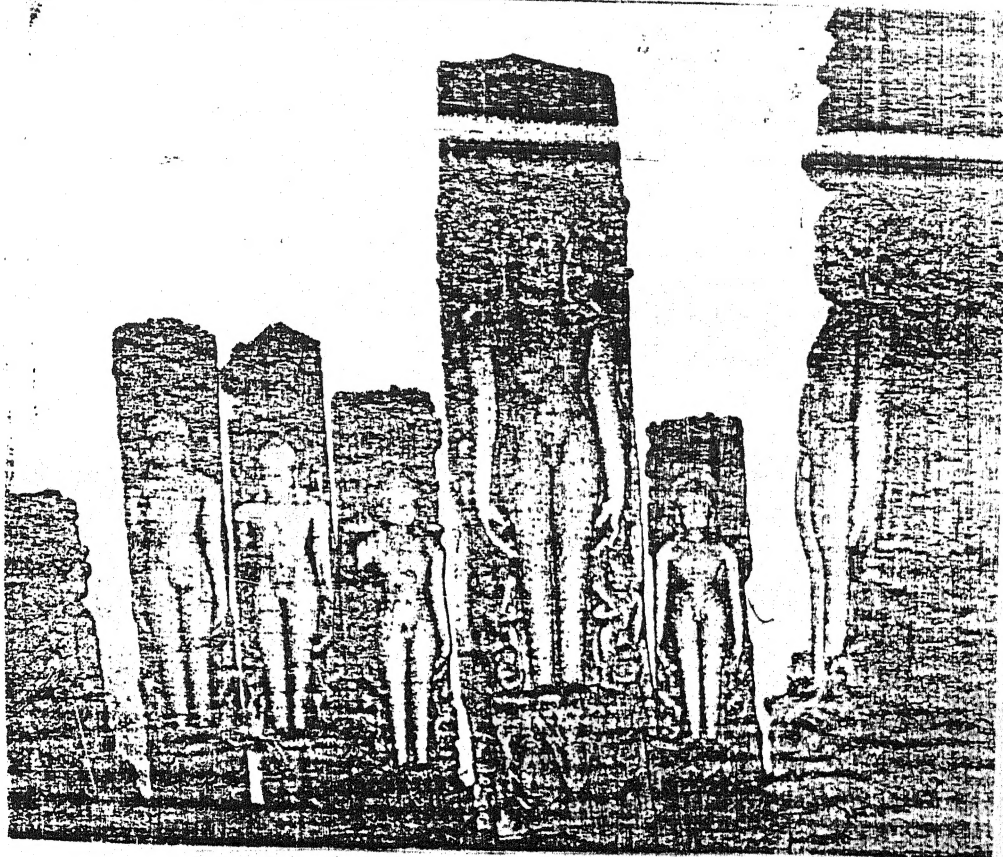
124- सेरोन मंदिर सं0 1 की सात मूर्तियाँ
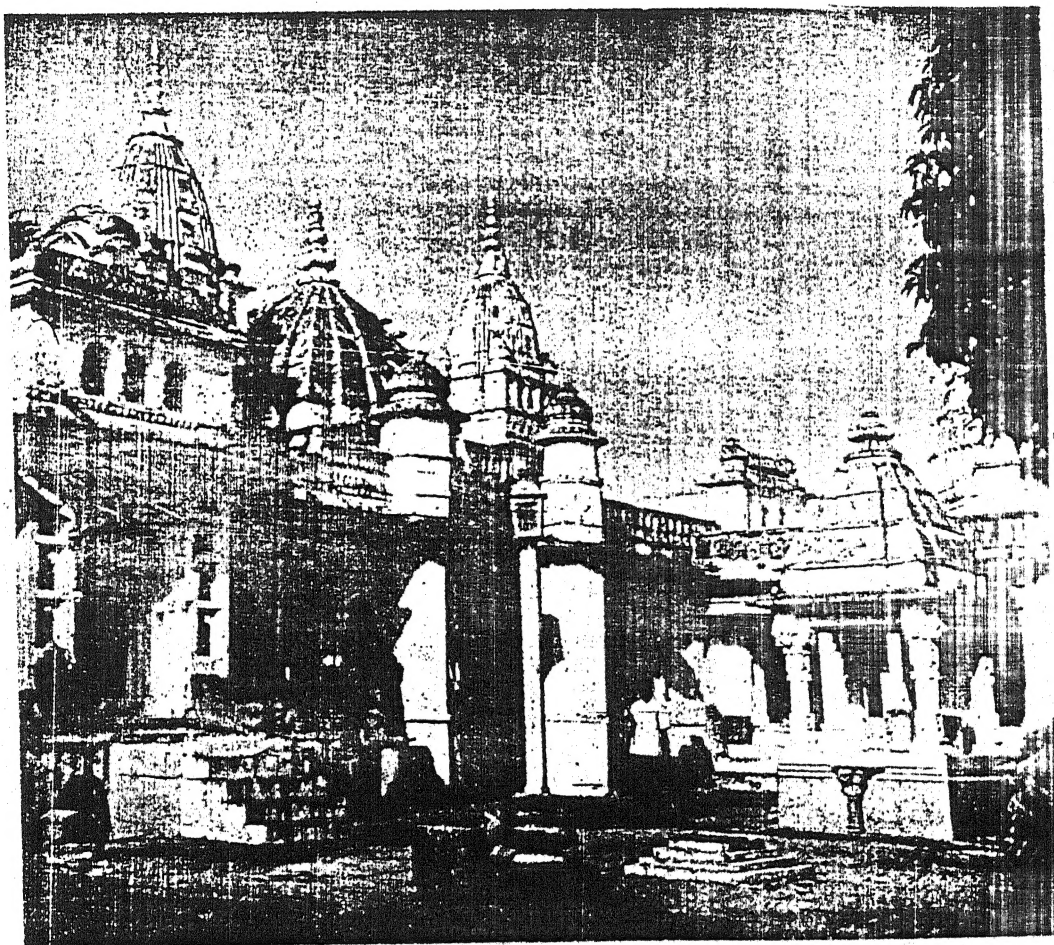
सेरोनजी -

125- सेरोनजी क्षे. के जैन मंदिर
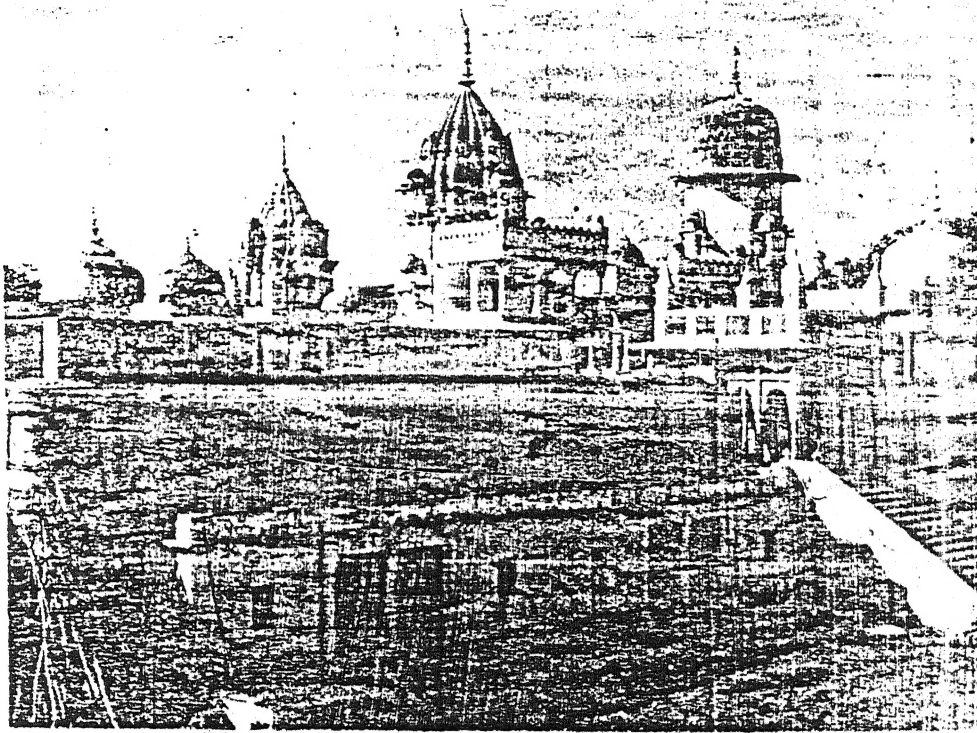
126- पूर्वी किनारे से ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर का दृश्य
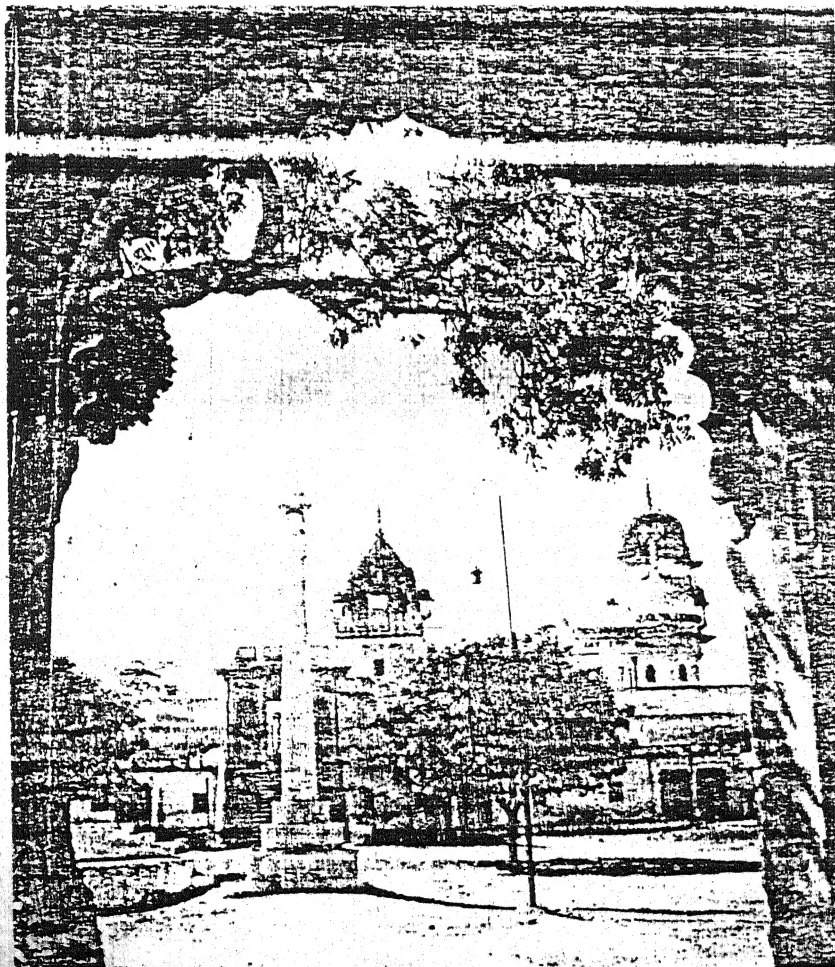
127- सामने के द्वार से ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर का दृश्य